॥ श्री सिद्धचक्राय नमः ॥

श्रीसिद्धचक्र-नवपद-स्वरूप-दर्शन

-: लेखक :-
पूज्याचार्य श्रीमद् विजय सुशीलसूरिजी म.

श्रीतिलक दीक्षी

卐 श्रीनेमि – लावण्य – दक्ष – सुशील ग्रन्थमाला रत्न ६७वां 卐

ॐ ह्रीँ श्रीँ

श्रीसिद्धचक्राय नमो नमः

श्रीसिद्धचक्र-नवपद

卐 स्वरूप दर्शन 卐

— लेखक —

शासनसम्राट् – सूरिचक्रचक्रवर्त्ति – तपोगच्छाधिपति - महाप्रभावशाली– भारतीयभव्यविभूति–ब्रह्मतेजोमूर्त्ति–श्रीकदम्बगिरिप्रमुखानेकतीर्थोद्धारक-परमपूज्याचार्यमहाराजाधिराज ***श्रीमद् विजयनेमि सूरीश्वरजी म. सा.*** के पट्टालंकार – साहित्यसम्राट् – व्याकरणवाचस्पति – शास्त्र-विशारद–कविरत्न–बालब्रह्मचारी–परमपूज्याचार्यप्रवर ***श्रीमद् विजय लावण्यसूरीश्वरजी म. सा.*** के पट्टधर–धर्मप्रभावक–कविदिवाकर– शास्त्रविशारद– व्याकरणरत्न– बालब्रह्मचारी– परमपूज्याचार्यवर्य ***श्रीमद् विजयदक्ष सूरीश्वरजी म. सा.*** के पट्टधर – पूज्यपाद आचार्यदेव ***श्रीमद् विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा.***

卐 प्रकाशक 卐

*** आचार्यश्री सुशीलसूरि जैन ज्ञानमन्दिर ***

शान्तिनगर-सिरोही, राजस्थान

※ प्रेरक ※		※ सम्पादक ※
जैनधर्मदिवाकर-शासनरत्न-तीर्थप्रभावक – परमपूज्य - आचार्यदेव ***श्रीमद् विजय-सुशीलसूरीश्वरजीम.सा.*** के पट्टधर-शिष्यरत्न ***पूज्य उपाध्यायजी महाराज श्रीविनोदविजयजी गणिवर्य***	卐 卐 卐	राजस्थानदीपक – मरुधर - देशोद्धारक -सूरिमन्त्रसमाराधक – परमपूज्याचार्यदेव ***श्रीमद् विजयसुशीलसूरीश्वरजी म.सा.*** के विद्वान् शिष्यरत्न ***पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तमविजयजी महाराज***

श्री वीर सं. २५११	विक्रम स २०४१	नेमि सं. ३६
प्रतियाँ—१०००	प्रथमावृत्ति	मूल्य—सदुपयोग

— सप्रेम भेंट —

श्रीतखतगढ़ नगर में शास्त्रविशारद–साहित्यरत्न–कविभूषण–पूज्याचार्य देव ***श्रीमद्विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा.*** की शुभ निश्रा में तखतगढ़ निवासी संघवी ***श्री ओटरमलजी भूताजी*** बलदरा वालों की तरफ से ***श्री उपधानतप की आराधना*** के उपलक्ष में माला के मंगल प्रसंग पर उपधानवाही आराधक महानुभावों को

यह ***'श्रीसिद्धचक्र–नवपद स्वरूप दर्शन'*** की

अनुपम पुस्तिका सादर सप्रेम भेंट ।

[विक्रम सं. २०४१ महा सुद ११ शुक्रवार दिनांक १–२–१९८५]

(श्री उपधानतपमाला दिन)

प्रकाशक ;		मुद्रक :
आचार्य श्रीसुशीलसूरि जैन ज्ञानमन्दिर शान्तिनगर–सिरोही राजस्थान (मारवाड़)	卐 卐 卐	हिन्दुस्तान प्रिण्टर्स जोधपुर.

※ द्रव्यसहायक—संघवी श्री ओटरमल भूताजी, तखतगढ़ ※

समर्पण

卐 卐 卐

विश्व के महान् त्यागी-संतपुरुष, भारतदेश की भव्यविभूति, जैनशासन के महान् ज्योतिर्धर-शासनसम्राट्, चिरन्तन युगप्रधानकल्प, प्रख्यात श्रीतपोगच्छाधिपति, सूरिचक्रचक्रवर्त्ति, अखण्ड-विशुद्ध ब्रह्मतेजोमूर्त्ति, सद्चारित्रचूड़ामणि, महान् प्रभावशाली, महाज्ञानी—महाध्यानी—सदा दीर्घदर्शी सिंहगर्जनासम निरुपमव्याख्यान वाचस्पति, सर्व-तन्त्रस्वतन्त्र-वचनसिद्धमहापुरुष, प्राचीन श्रीकदम्ब-गिरि आदि अनेक महान तीर्थोद्धारक, न्याय—व्या-करणादि अनेक ग्रन्थ सर्जक, श्रीवल्लभीपुर नरेशादि प्रतिबोधक, अनेक आत्माओं के परमउपकारक, अनेक भव्य जीवों के परम उद्धारक . . . .

परमपूज्य-परमगुरुदेव-प्रातःस्मरणीय सुगृहीत नामधेय-स्वर्गीय आचार्य महाराजाधिराज श्रीमद् विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज सा. को—मुझ पर किये हुए असीम उपकार की स्मृति रूप में यह 'श्रीसिद्धचक्र—नवपदस्वरूपदर्शन' ग्रन्थरत्न सादर समर्पित करता हुआ अति आनन्दित होता हूँ।

आपका

प्रशिष्य—शिष्य

विजयसुशीलसूरि

»«»«»«»«»«»«»«»«»«»«»«»«»«

卐 सद्गुरु वन्दना 卐

शासन के साम्राज्य में, तपे सूर्य सा तेज,
तीर्थोद्धार किये कई, सोकर सूल की सेज।
धर्मधुरन्धर सद्गुरु, मंगलमय है नाम,
नेमि सूरीश्वर को करूँ, वन्दन आठों याम ॥ १ ॥

साहित्य के सम्राट् हो, शास्त्रविशारद जान,
स्वयं शारदा ने दिया, जैसे गुरु को ज्ञान।
व्याकरणे वाचस्पति, काव्यकला अभिराम,
श्री लावण्यसूरीश्वरा, वन्दन आठों याम ॥ २ ॥

शब्दकोश के शहंशाह, सरिता शास्त्र समान,
कवि दिवाकर ने किया, काव्यशास्त्र का पान।
ग्रन्थों की रचना में राचें, सरस्वती के धाम,
दक्षसूरीश्वर को करूँ, वन्दन आठों याम ॥ ३ ॥

शान्तसुधारस मृदुमनी, राजस्थान के दीप,
मरुधरोद्धारक सत् कवि, तुम साहित्य के सीप।
कविभूषण हो तीर्थप्रभावक, नयना है निष्काम,
सुशील सूरीश्वर को करूँ, वन्दन आठों याम ॥ ४ ॥

*

»«»«»«»«»«»«»«»«»«»«»«»«»«

कोटिशः वन्दन

सम्पूर्ण विश्व में अद्वितीय,
श्री जिनशासन में रहस्यभूत,
परमतत्त्व, परम अर्थ,
परमपवित्र, परमआराध्य,
सर्वदा विजयवन्त,
महामन्त्र स्वरूप,
समस्त ऋद्धि-सिद्धि-समृद्धिप्रदायक,
एवं
सर्वकार्यसाधक, मनोवांछितपूरक,
तथा
सर्वदा वन्दनीय-पूजनीय
ऐसे
श्री सिद्धचक्रभगवन्त को मेरा
सदा कोटिशः वन्दन ।

—विजय सुशीलसूरि

सकल समीहितदायक - महाप्रभावशाली

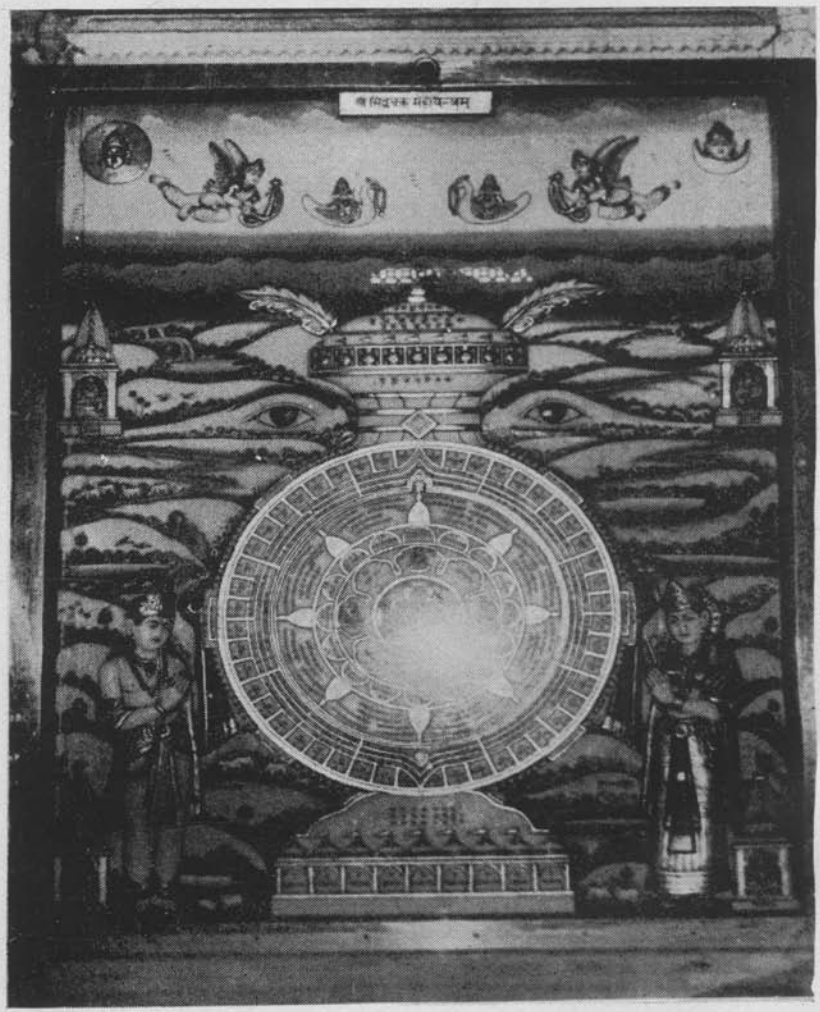

卐 श्री सिद्धचक्र महायन्त्रम् 卐

卐

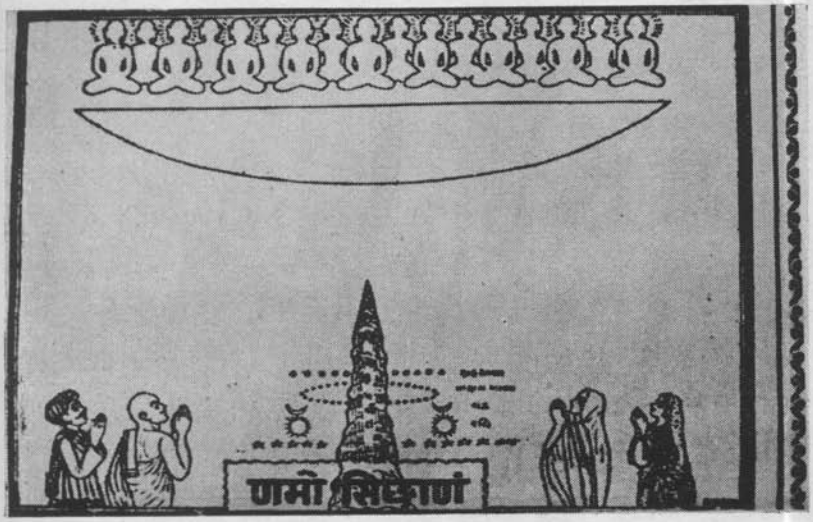

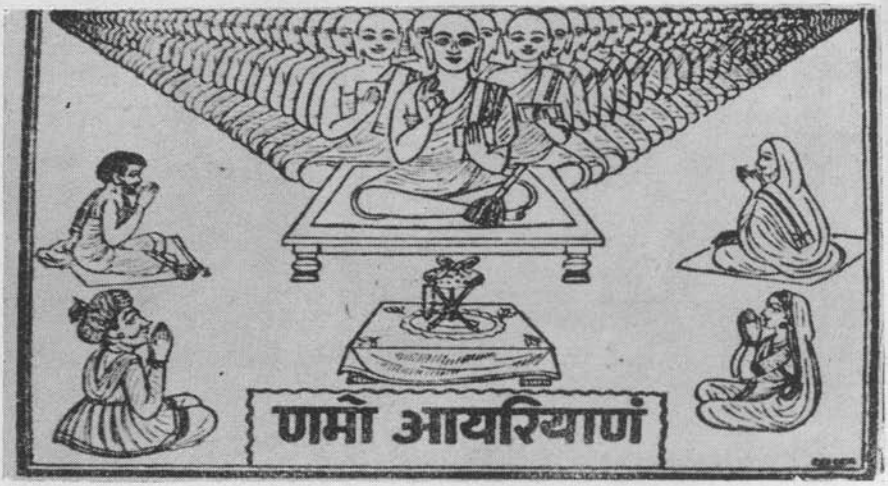

卐

णमो उवज्झायाणं

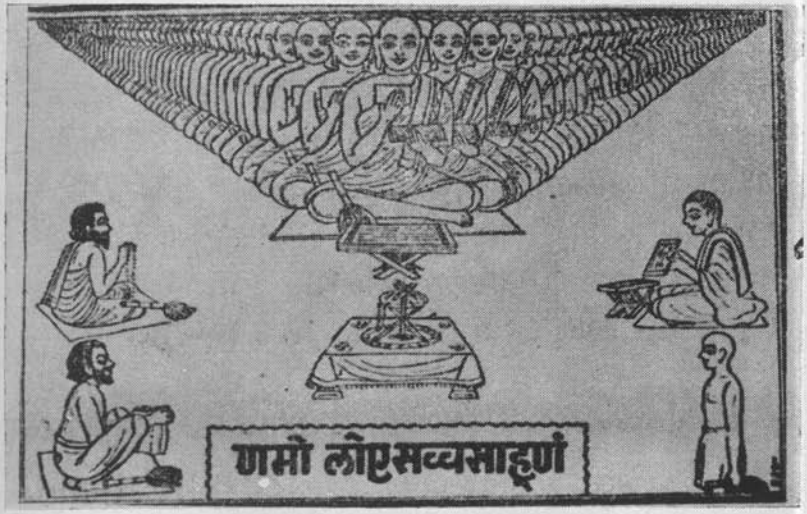

जे विय संकप्पवियप्प,

वज्जिया हुंति निम्मलप्पाणो ।

ते चेव नवइपयाइं,

नवसु पयेसु च ते चेव ।।

अर्थ—जो संकल्प-विकल्प वर्जित निर्मल परिणामी आत्मा है वही ***नवपद*** है और नवपद में भी वही है ।।

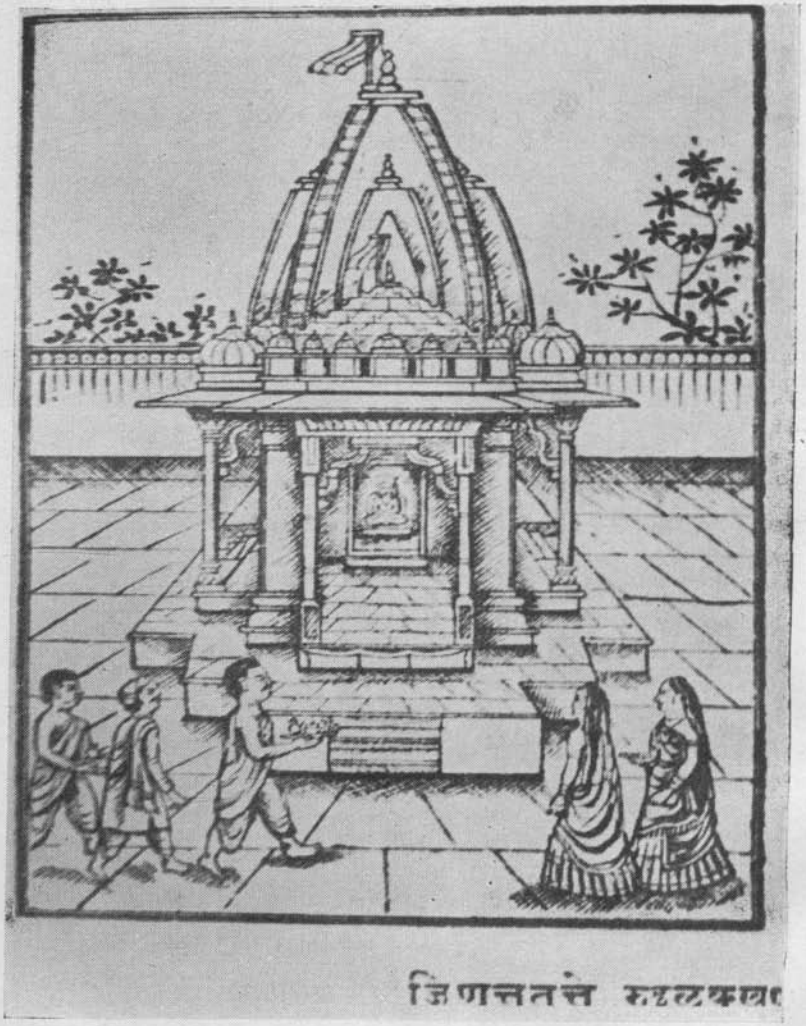

णमो दंसणस्स

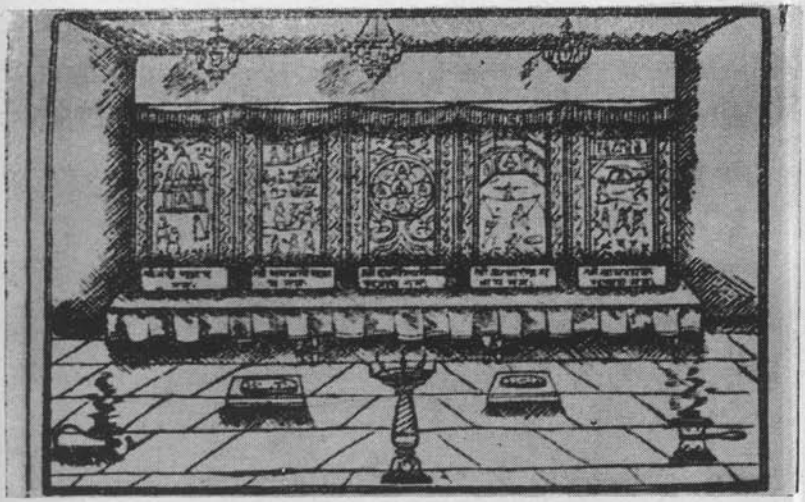

णमो नाणस्स

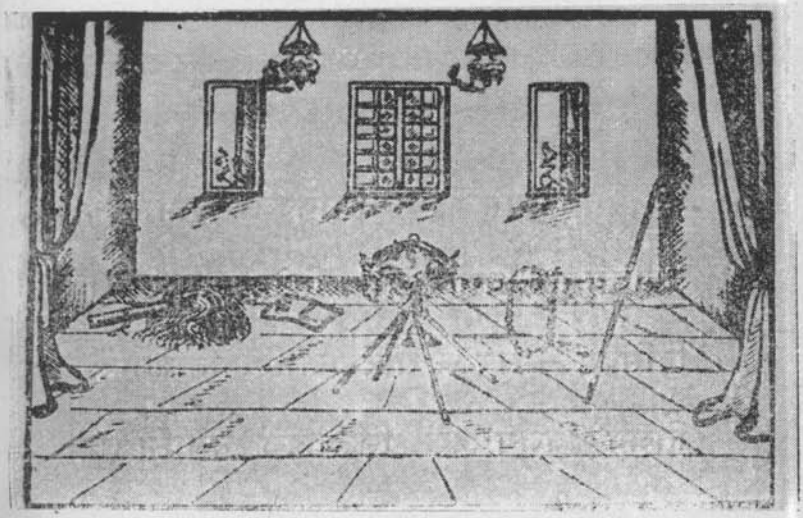

णमो चरित्तस्स

णमो तवस्स

इय नवपयसिद्धं लद्धिविज्जा - समिद्धं,
पयडिय-सर–वग्गं ह्रीँ तिरेहा–समग्गं ।
दिसिवइ – सुर – सारं खोणिपीढावयारं,
तिजय विजयचक्कं सिद्धचक्कं नमामि ।।

भूमिका

श्री सिद्धचक्र - नवपद - स्वरूप दर्शन

जैनधर्मदिवाकर परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी महाराज सा. ने मानव के आध्यात्मिक और नैतिक उत्थान के लिए अनेक सद्ग्रंथों की रचना की है। आधुनिक युग में स्वार्थ और छल-कपट से आक्रान्त मनुष्य को शान्ति चाहिए। शान्ति की खोज में वह अन्तरिक्ष में उड़ रहा है, सागर में गोते लगा रहा है, आकाश में सैर कर रहा है, देश-विदेश में भ्रमण कर रहा है, मनोरंजन के अनेक साधनों का प्रयोग कर रहा है, परन्तु शान्ति आकाश-कुसुम के समान दुर्लभ है। शान्ति कोलाहल से दूर अन्तर-लोक में निवास करती है, उसे प्राप्त करने का उपाय है संत कबीर के शब्दों में--'घूंघट के पट खोलरी, तोए पिया मिलेंगे।'

घूंघट के पट खोलने का अर्थ है—अज्ञान का पर्दा हटा देना। अज्ञान को दूर करने के लिए सर्वज्ञ भगवान की स्याद्वाद-वाणी सर्वश्रेष्ठ है। जिनवर वाणी के उद्घोषक आचार्यदेव हैं।

पूज्यपाद आचार्यदेव श्री सुशील सूरीश्वरजी म० सा० ने 'श्री सिद्धचक्र-नवपद-स्वरूप दर्शन' पुस्तक में सिद्धचक्र-नवपद का सरल शैली में निरूपण किया है, इससे सामान्य जन और विद्वान दोनों का रंजन होता है। पू. आचार्य श्री का रचना-कर्म लोक-मंगल-भावना से अभिषिक्त है, इसलिए इनकी भाषा-शैली सरोवर में खिले कमल के समान मनोहारी है।

इस पुस्तक का उद्देश्य सिद्धचक्र-नवपद का स्वरूप दर्शाना है। किसी भी आराधना-अनुष्ठान का भाव-बोध हो जाने पर, उसमें जो

उल्लास के निर्झर प्रवाहित होते हैं, उसका वर्णन शब्दों द्वारा नहीं हो सकता।

प्रस्तुत पुस्तक में पू. आचार्य श्री ने यह बताया है कि "भव-भ्रमण का अन्त लाने के लिए आत्मा को केवल सद्धर्म की शरण ही अभीष्ट है। जैनधर्म में आत्मा की प्रगति, विकास और आत्मोद्धार के लिए सर्वज्ञ विभु तीर्थंकर परमात्माओं ने प्रतिदिन धर्म करने पर बल दिया है। उसमें अवलम्बन रूप विशिष्ट आराधना के लिए पर्व-तिथियों, अठाइयों, तीर्थंकरों के कल्याणक दिवसों तथा चातुर्मास काल को उत्तम बताया है। अल्पज्ञों, बाल जीवों और छद्मस्थ प्राणियों के लिए सालम्बन ध्यान पुष्टावलम्बन रूप कहा गया है।"

जैन शासन में श्री नवपदजी की आराधना के लिए वर्ष में दो समय बताये गये हैं—१. आसोज मास और २. चैत्र मास। पहला आश्विन शुक्ला सप्तमी से आश्विन शुक्ला पूर्णिमा पर्यन्त तथा दूसरा चैत्र शुक्ला सप्तमी से चैत्र शुक्ला पूर्णिमा पर्यन्त। दोनों में नौ दिनों का तप होता है।

शरद और वसन्त ऋतुओं में नवपद ओलीजी की आराधना होती है। इन ऋतुओं में शारीरिक विकार अधिक होते हैं—उनके शमन के लिए रूक्ष भोजन का विधान है। ओलीजी की तपस्या दैहिक और आध्यात्मिक आरोग्य के लिए संजीवनी औषधि तुल्य है। 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' शरीर निश्चय ही धर्म का प्रथम अवलम्ब है। इसलिए दैहिक स्वस्थता अत्यन्त आवश्यक है। तप 'देह-देवालय' बनाने का अनुपम आधार है।

श्री सिद्धचक्र भगवन्त के नवपद हैं—१. अरिहन्त पद, २. सिद्ध पद, ३. आचार्य पद, ४. उपाध्याय पद, ५. साधु पद, ६. दर्शन पद, ७. ज्ञान पद, ८. चारित्र पद, ९. तप पद। आचार्य श्री

कहते हैं 'ये नवपद उत्तम तत्त्वरूप हैं। इतना ही नहीं ये जिन-शासन के सर्वस्व हैं। इनका बहुमान, भक्ति और विधि पूर्वक आराधन सर्व वाञ्छित अर्थात् ऐहिक-पारलौकिक सुख और परम्परा से मोक्षफल की प्राप्ति कराने वाला अद्वितीय और बेजोड़ साधन है।"

श्री नवपद की आराधना सुदेव-गुरु-धर्म की आराधना है। श्री अरिहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधु पंच परमेष्ठी सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप--चार गुणों से अलंकृत हैं। अतः नवपद की आराधना से आराधक इन दिव्य गुणों से विभूषित हो जाता है। जैसे फूलों को हाथ में लेने से उनकी सुगन्ध हाथ में आ जाती है, जैसे शीतल जल के संयोग से शीतलता का अनुभव होता है, जैसे मिष्टान्न से मधुरता की प्रतीति होती है, वैसे ही गुणीजनों की सेवा-अर्चना से गुण प्राप्त होते हैं। अतः नवपदजी की आराधना सर्व मंगल-विधायिनी है।

पू. आचार्यश्री ने गणितशास्त्र के अनुसार यह सिद्ध किया है कि नौ का अंक कभी खंडित नहीं होता। यह अंक अखंड है, इस तरह श्री सिद्धचक्र भगवन्त के नवपद भी अखण्ड हैं। उनकी सम्यग् आराधना कर आराधक भव्यात्मा सकल कर्म का क्षय करके अखण्ड, अविचल, शाश्वत मोक्षसुख को प्राप्त कर सकता है।

'पंच सूत्र' में कहा गया है कि शुद्धधर्म की प्राप्ति का उपाय पाप कर्म का नाश है। पाप कर्म का नाश अरिहन्तादि की शरण से होता है। अत श्री सिद्धचक्र-नवपद की शरण अघविमोचिनी और कल्याणकारिणी है।

मैत्री भाव के आद्य उपदेशक श्री अरिहन्त परमात्मा हैं। उसको सिद्ध करने वाले सिद्ध परमात्मा हैं, उसे जीवन में नख-

शिख आचरने वाले आचार्य भगवन्त हैं, उसे सूक्ष्म रूप से समझाने वाले उपाध्याय भगवन्त हैं तथा अन्तर तथा बाह्य जीवन में साधने वाले साधु भगवन्त हैं।

इन पाँचों की सेवा-अर्चना अमैत्रीभाव रूप पाप का नाश करने वाली है और परम स्नेहभाव को विकसित कर सर्व मंगलों को खींच कर लाने वाली है। स्नेह भाव के विकास से धर्म की प्राप्ति और वृद्धि होती है जिससे सर्व सुखों का आगमन तथा लाभ होता है।

अमैत्री भाव के नाश से दुःखमूलक हिंसादि पापों से मुक्ति मिलती है। मैत्री भाव से पूर्ण पंच परमेष्ठी की आराधना से सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्र एवं तप के प्रति रुचि विकसित होती है, फलस्वरूप मुक्तिगमन-योग्यता रूप भव्यत्व का विकास होता है और कर्म के सम्बन्ध में आने की योग्यता रूप सहजमल का नाश होता है।

विवेक के जागरण और अविवेक के निवारण हेतु श्री सिद्धचक्र-नवपदजी की आराधना सर्वोत्तम है।

पू. आचार्यश्री ने नवपद आराधना को स्वरूपप्राप्ति का अमोघ साधन बताया है। आध्यात्मिक दृष्टि से यह मोक्षप्रदायिनी है, व्यावहारिक दृष्टि से आरोग्यवर्धिनी है। 'स्वस्थ तन में स्वस्थ मन' की उक्ति सार्थक करने वाली है। रसना-स्वाद के लिए मनुष्य भक्ष्य-अभक्ष्य का ख्याल नहीं करता, अशुद्ध भोजन से उसका तन-मन 'पाप-गृह' बन जाता है। नवपद-ओलीजी में उचित रूक्ष भोजन लिया जाता है, जो शरीर को नीरोग बनाता है। आधुनिक युग में प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान ने 'रूक्ष भोजन'—शुद्ध सात्विक भोजन (घी, गुड़, तेल, दूध, दही आदि से रहित) को लेने का निर्देश दिया है।

नवपद ओलीजी में रूखा भोजन लेने से शरीर के रोग नष्ट हो जाते हैं और काया कंचनवर्णी हो जाती है—अर्थात् 'धर्म-पात्र' हो जाती है।

आचार्यश्री-ऐसे अनुपम ग्रन्थ रचकर धर्म-जागृति-यज्ञ में महत्त्वपूर्ण योग दे रहे हैं। उनकी साहित्य-साधना सराहनीय है।

गुजराती-भाषा-भाषी होते हुए भी आपश्री राष्ट्रभाषा हिन्दी में ग्रन्थ रचते हैं—इसका उद्देश्य यह है कि हिन्दी समस्त देश में तथा विदेश में भी बहुसंख्यक लोगों द्वारा पढ़ी और समझी जाती है। हिन्दी भाषा में साहित्य-सृजन लोकमंगल-भावना का परिचायक है। वैसे आचार्य श्री संस्कृत, प्राकृत, गुजराती आदि भाषाओं के अधिकारी विद्वान हैं। संस्कृत और गुर्जर भाषाओं में आपने अनेक पुस्तकें लिखी हैं जो जनसाधारण और विद्वत् समाज में अत्यन्त लोकप्रिय हुई हैं। परन्तु हिन्दी भाषा में आपकी पुस्तक-रचना की पृष्ठभूमि में लोक-कल्याण की मंगल भावना ही है।

पू. आचार्यश्री का निश्छल व्यक्तित्व, सौम्य-शान्त मुद्रा, मृदुल सरलता और मैत्री-प्रमोद-करुणा और माध्यस्थ भाव-स्नात लोचन-पुण्डरीक देखकर यह सहज अनुभूति होती है कि 'सन्तदर्शन प्रभु-दर्शन' है। जैसी जीवन की निर्मलता है—वैसी ही उनकी निर्मल और सरल शैली है। 'श्री सिद्धचक्र—नवपद—स्वरूप दर्शन' पुस्तक की भाषा-शैली सरल, सहज और बोधगम्य है। शैली के तीनों गुण अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के दर्शन यथास्थान होते हैं। भाषा सधुक्कड़ी है जिसे सन्तजन भाव-सुगमता के लिए प्रयुक्त करते हैं। इसमें उर्दू, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, ब्रज, संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के प्रचलित शब्दों का 'मणि-काञ्चन' योग प्रियंकर है।

पू० आचार्य श्री ने बतलाया है कि श्री सिद्धचक्र-भगवन्तों की आराधना से आत्मा के राग द्वेषादि नष्ट हो जाते हैं—और सद्गुण प्रकट हो जाते हैं; फलस्वरूप आत्म-ओज जगमगाने लगता है। निश्चय ही सिद्धचक्र सद्गुण रूपी रत्नों की खान है। ये रत्नाकर हैं। जो इनकी आराधना निर्मल भाव से करता है, उसकी दरिद्रता दूर हो जाती है।

श्रीपाल महाराजा श्री नवपदजी की आराधना से नीरोग हो गये। ऐसा उल्लेख श्री 'सिरि सिरिवाल कहा' में है :

"एवं च संथुणंतो सो जाओ नवपएसु लीणमणो।
जर कहवि तह पेक्खइ अप्पाणं तन्मयं चेव ॥"*

अष्टकर्म-क्षय के लिए श्री सिद्धचक्र-नवपदजी का ध्यान अनुपम है। श्रीपाल रास के चतुर्थ खण्ड की सातवीं ढाल में वाचक शिरोमणि कविरत्न श्री यशोविजय महाराज कहते हैं—

अरिहंत सिद्ध तथा भला, आचारज उवज्झाय।
मुनि दंसण नाण चरित्त तव, ए नवपद मुक्ति उपाय॥

पू० आचार्यश्री ने इस पुस्तक में श्री सिद्धचक्र-नवपदजी के स्वरूप का जो उद्घाटन किया है, उससे भव्यजनों में धर्म-रुचि जागृत होती है। धर्म आत्मा को परमात्मा में विलय करने का अवलम्बन है।

यह पुस्तक मोहान्धकार में भटकते मानव को ज्ञान के प्रकाश में ले आएगी। सदाचार एवं सद्भावों से विभूषित होकर मनुष्य मुक्ति-मंदिर की मंगल-यात्रा के लिए प्रस्थान कर सकेगा।

पू० आचार्य श्री को ऐसी बोधगम्य पुस्तक-सृजन के लिए हमारा हार्दिक अभिनन्दन और विनम्र वन्दन।

२७-४-८४ — जवाहरचन्द्र पटनी
मानद निदेशक, श्री पा. उ. जैन शिक्षण संघ, फालना (राज.)

* श्री रत्नशेखर सूरि रचित काव्य-ग्रन्थ।

प्रकाशकीय निवेदन

'श्रीसिद्धचक्र-नवपद स्वरूप दर्शन' नाम से समलंकृत यह पुस्तक प्रकाशित करते हुए हमें अति आनंद हो रहा है। इस ग्रन्थ के लेखक परम पूज्य शासनसम्राट् समुदाय के सुप्रसिद्ध जैनधर्म दिवाकर शासनरत्न-तीर्थप्रभावक-राजस्थानदीपक-मरुधरदेशोद्धारक-शास्त्र-विशारद-साहित्यरत्न-कविभूषण-बालब्रह्मचारी पूज्यपाद **आचार्यदेव श्रीमद् विजययुगोलपूरोश्वरजी म. सा.** हैं। आपने विक्रम संवत् २०३९ की साल का चातुर्मास श्रीसंघ की साग्रह विनती स्वीकार कर श्री तखतगढ़ नगर में परम शासनप्रभावनापूर्वक सम्पन्न किया। अपने पट्टधर-शिष्यरत्न-मधुरभाषी संयमी **पूज्य उपाध्यायजी महाराज श्री विनोदविजयजी गणिवर्य** ने चातुर्मास पूर्व इस ग्रन्थ को सुन्दर सरल हिन्दी भाषा में लिखने के लिये प्रेरणा की थी। तदनुसार परम पूज्य आचार्य भगवन्त ने इस चातुर्मास में साहित्यशास्त्र रचना आदि अनेक कार्य होते हुए भी समय निकालकर अतिपरिश्रमपूर्वक अनेक शास्त्रीय ग्रन्थों के अवलोकन तथा चिन्तन-मनन युक्त सरल हिन्दी भाषा में इस ग्रन्थ को तैयार किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री सिद्धचक्र के नौ पदों का क्रमशः विवरण विस्तारपूर्वक अति सुन्दर लिखा है। परिशिष्टों में चैत्र-आसोज मास की शाश्वती ओली की क्रमशः नौ दिनों की विधि तथा श्रीसिद्ध-चक्र के प्राचीन आदि चैत्यवन्दन-स्तवन-स्तुतियाँ आदि भी लिये हैं। श्रीश्रीपाल-मयणा की स्तवनरूपे ढाल भी ली है। अन्त में, पूज्यपाद आचार्यमहाराज श्री के वि. सं. २०३९ की साल के परमशासन प्रभावना पूर्वक सम्पन्न हुए शानदार यशस्वी चातुर्मास का संक्षिप्त वर्णन भी सम्मिलित किया गया है। तदुपरान्त वि. सं २०४० की साल में श्री उपधानतपमाला का वर्णन, तखतगढ़ से जालोर-श्रीसुवर्णगिरि तीर्थ के पैदल छ'री' पालित संघ का वर्णन तथा तखतगढ़ में

श्रीअंजनशलाका-प्रतिष्ठा महोत्सव का वर्णन भी लिया है । तथा चालू वि. सं. २०४१ को साल में तखतगढ़ में चल रहे श्रीउपधानतप एवं उसकी मालामहोत्सव का भी वर्णन लिया है । इस ग्रन्थ का सुसम्पादन कार्य परमपूज्य आचार्यदेव के विद्वान् शिष्यरत्न-कार्यदक्ष **पूज्य मुनिराज श्रीजिनोत्तमविजयजी महाराज** ने किया है । इस ग्रन्थ के संशोधन का कार्य करने वाले **चेतनप्रकाशजी पाटनी** जोधपुर वाले हैं । इस ग्रन्थ की भूमिका लिखने वाले प्रोफेसर **श्रीजशहरचन्दजी पटनी** कालन्द्री वाले वर्त्तमान में फालना में निवास करते हैं । इस ग्रन्थ में दिये हुए चातुर्मासादि वर्णन लिखने वाले धार्मिक शिक्षक **शा. बाबूभाई मणिलाल भाभरवाले** वर्त्तमान में तखतगढ़ में हैं । इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने में **पूज्य उपाध्याय श्रीविनोदविजयजीम. सा.** के सदुपदेश से **संघवी श्रीओटरमलजी मूताजीने** अपनी तरफ से द्रव्य सहायता प्रदान कर सम्पूर्ण लाभ लिया है । संघवीजी के सुपुत्र **श्रीकान्तिलालजी, श्रीचुन्नीलालजी, श्रीपारसमलजी** तथा **श्रीमदनलालजी** ने इस ग्रन्थ को पुस्तिका रूपे शीघ्र प्रकाशित करने हेतु सक्रिय प्रयास किया है ।

पूज्यपाद आचार्य म. सा. की आज्ञानुसार हमारे प्रेस सम्बन्धी प्रकाशन कार्य में पूर्ण सहकार देने वाले जोधपुर निवासी **श्रीसुखपालजी भंडारी** तथा संघवी **श्री गुणदयालचन्दजी भंडारी** एवं **श्रीमंगलचन्दजी गोलिया** आदि हैं । सिरोही निवासी विधिकारक **श्री मनोजकुमार बाबूमलजी हरण** (एम. कॉम.) ने भी यह ग्रन्थ प्रतिवर्ष चैत्रमास की तथा आसोज मास की शाश्वती ओली में आराधक महानुभावों को अति उपयोगी होनेवाला है, इसलिये उसको शीघ्रतर प्रकाशित करने की प्रेरणा की है । इन सभी का हम हार्दिक आभार मानते हैं । अन्त में, **'श्रीसिद्धचक्र-नवपद स्वरूप दर्शन'** ग्रन्थ चतुर्विध संघ के सभी धर्मप्रेमी जीवों को अति उपयोगी होगा, ऐसी आशा रखते हैं । अक्षर-संयोजक व सेटिंग के लिए **श्री राधेश्यामजी सोनी** व **शेख मोहम्मद साबिर, जोधपुर** भी अतिशय धन्यवाद के पात्र हैं ।

–प्रकाशक

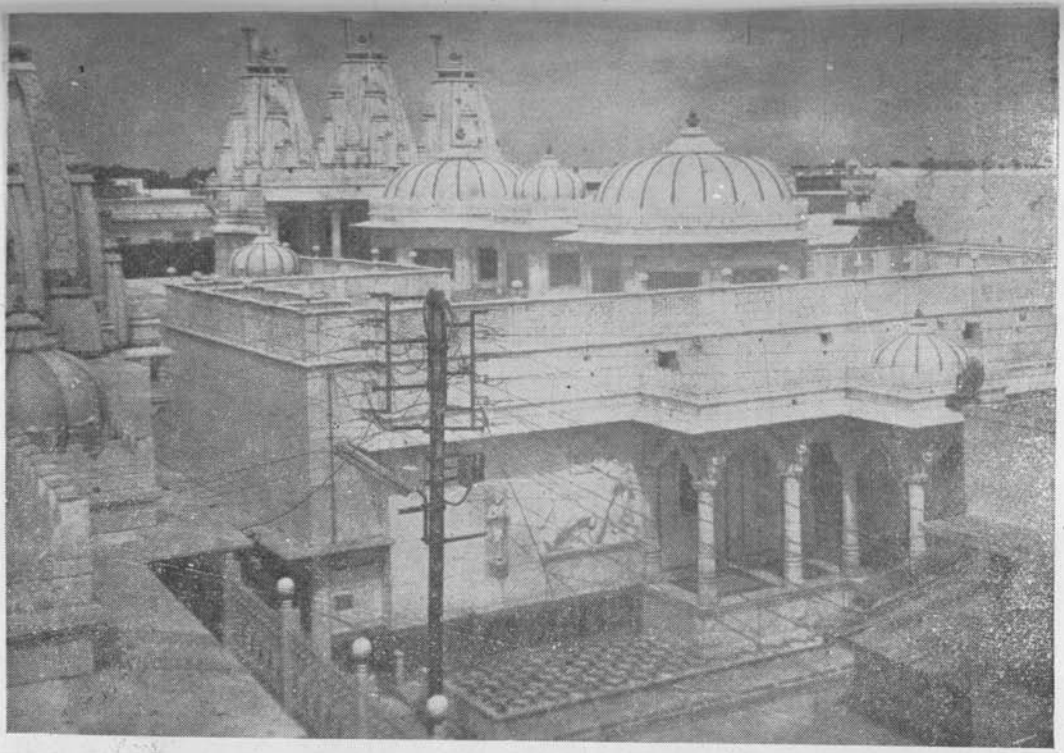

गगनचुम्बी-विशालकाय-भव्यातिभव्य श्री आदिनाथ जिन प्रासाद, तखतगढ़

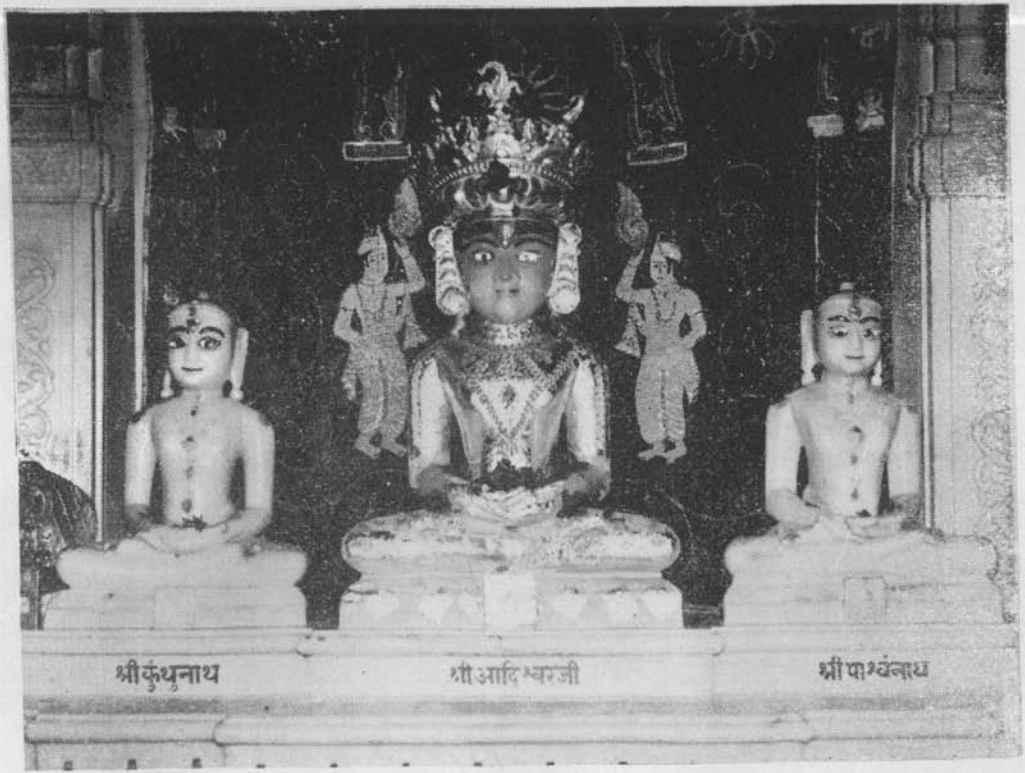

युगादिदेव-नाभिनन्दन-अनन्तानन्तउपकारी श्री आदिनाथ-ऋषभदेव भगवान
भाव भरी कोटिशः वन्दना हो ।

नयनाभिरम्य–विशालकाय–भव्यातिभव्य श्री ऋषभदेव जिन मन्दिर, तखतगढ़

श्री आदिनाथ - ऋषभदेव भगवान

भाव भरी कोटिशः वन्दना हो ।

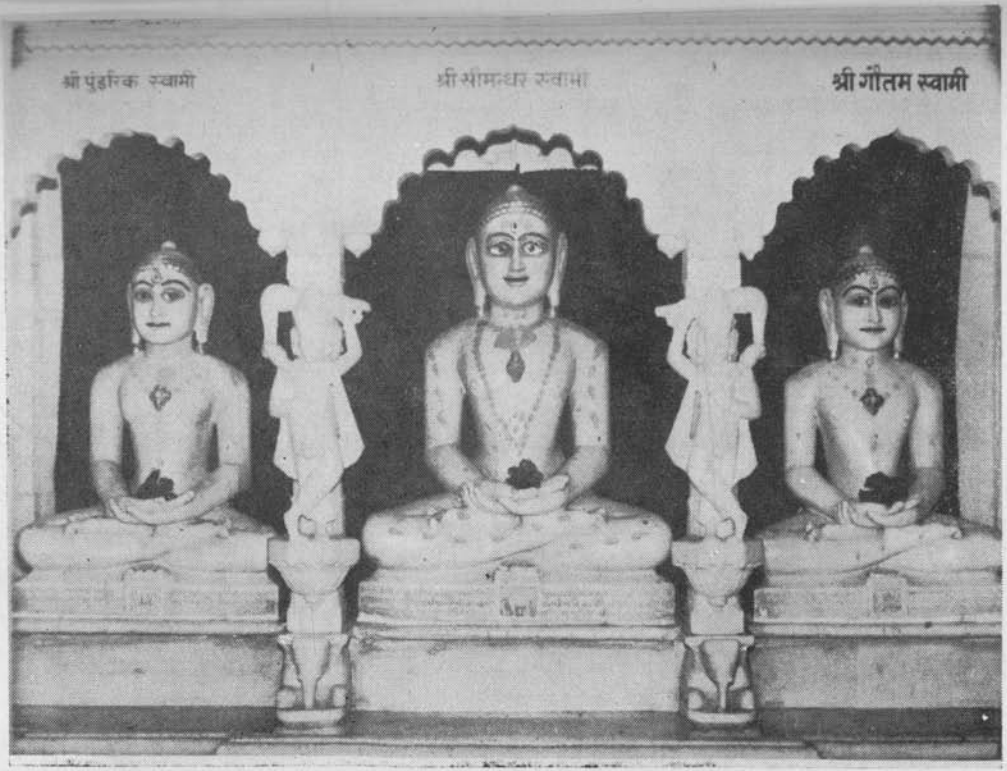

श्री आदीश्वर जिनमन्दिर में इन तीनों मूर्तियों की अंजनशलाका एवं प्रतिष्ठा पूज्यपादाचार्यदेव श्रीमद् विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा. के वरदहस्ते शासनप्रभावना पूर्वक हुई है। [वि.सं. २०४०]

श्री ऋषभदेव भगवान की चरण-पादुकायुक्त ध्यानस्थ

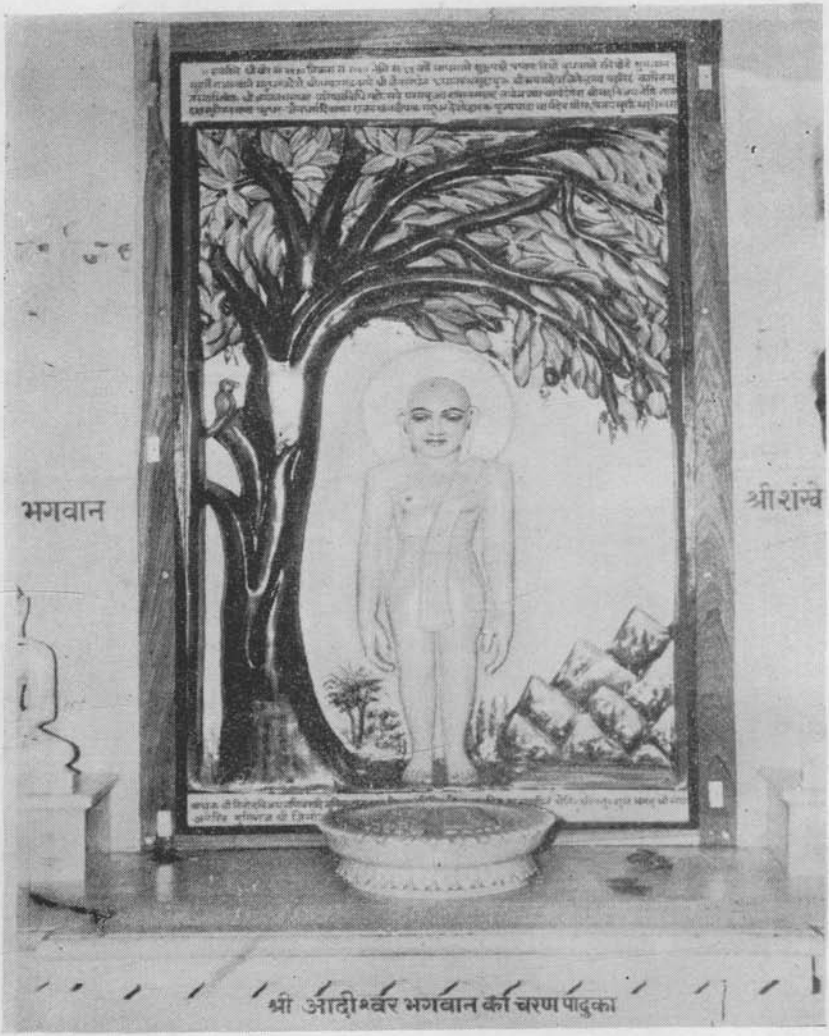

श्री ऋषभदेव भगवान का पट्ट

शासनसम्राट्-तपागच्छाधिपति-भारतीय भव्यविभूति

प. पू. आचार्यमहाराजाधिराज

श्रीमद् विजयनेमिसूरीश्वरजी म. सा.

साहित्यसम्राट्-व्याकरणवाचस्पति-साधिकसप्तलक्ष-
श्लोकप्रमाण नूतनसंस्कृतसाहित्यसर्जक
प. पू. आचार्यदेवेश

श्रीमद् विजयलावण्यसूरीश्वरजी म. सा.

धर्मप्रभावक - कविदिवाकर - देशनादक्ष

प. पू आचार्यप्रवर

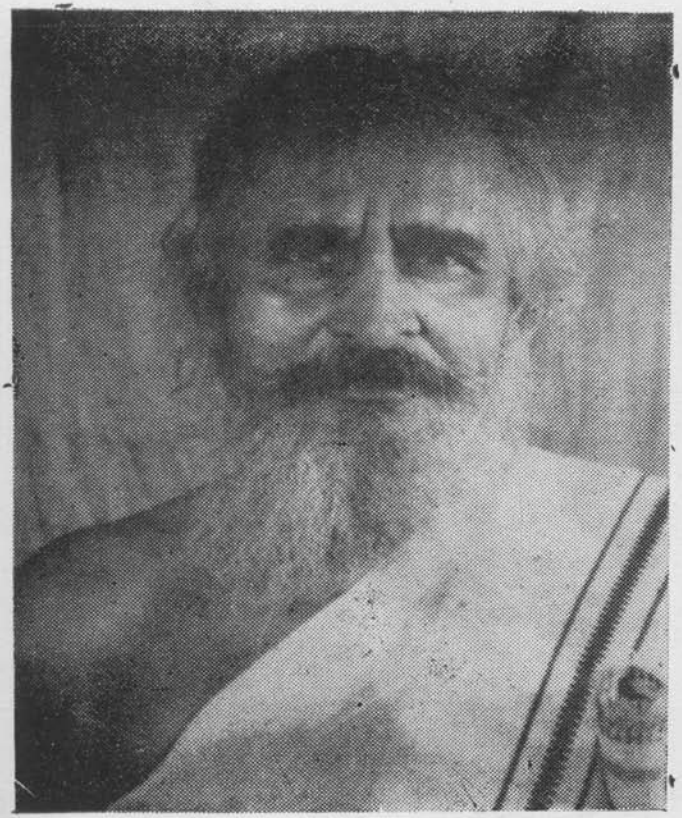

श्रीमद् विजयदक्षसूरीश्वरजी म. सा.

मधुरभाषी—संयमी

पू. उपाध्यायश्री विनोदविजय जी
गणिवर्य म.

तख्तगढ़ निवासी दानवीर - धर्मप्रेमी-श्रेष्ठिवर्य

संघवी श्री ओटरमल भूताजी

संघवी श्री ओटरमल भूताजी की धर्मपत्नी

अखण्ड सौभाग्यवती
श्रीमती सुखी बहेन

संघवी श्री ओटरमल भूताजी तखतगढ़ वाले अपने पुत्र परिवार के साथ

श्री चुन्नीलालजी श्री कांतिलालजी, संघवी श्री ओटरमलजी तथा
अ सौ श्री सुकी बहेन, श्री पारसमलजी, श्री मदनलालजी

संघवण श्री सुकी बहेन ओटरमलजी अपनी पुत्रवधुओं के साथ

श्री भाग्यवंती बहेन पारसमलजी. श्री भाग्यवती बहेन चुन्नीलालजी संघवण श्री सुकी बहेन ओटरमलजी (बीच में) श्री तुलसी बहेन कांतिलालजी, श्री सेवन्ती बहेन मदनलालजी ।

उपधान आध्यात्मिक शिविर

- यह श्रुतज्ञान की साधना का अनुपम ज्ञानसत्र है।
- यह अनादिकाल से आत्मा के साथ लगे हुए कर्म कचरे को दूर करने का एक उत्तम आध्यात्मिक शिविर है।
- यह योग की प्रक्रिया का अध्ययन कराने वाली पाठशाला है।
- यह अनाहारी पद प्राप्त करने की सीढ़ी है।
- यह साधु जीवन के समान अत्युत्तम साधना है।
- यह व्यायाम करने की एक प्रयोगशाला है।
- यह पांचों इन्द्रियों को वश में करने का महान् साधन है।
- यह द्रव्यरोग और भावरोग दूर करने का दिव्य औषधालय है।

उपधान योग की प्रक्रिया की पाठशाला

उपधान एक ज्ञान सत्र

卐

— विजय सुशीलसूरीश्वरजी

△ उपधानतप अनादिकाल से आत्मा के साथ लगे हुए कर्म कचरे को दूर करने का एक उत्तम आध्यात्मिक शिविर है।

△ अनन्त शान्ति की प्राप्ति अथवा दुःखों का अन्त करना चाहते हो तो दूसरों का हित (उपकार) करो।

△ सादा जीवन और उच्च विचार हर व्यक्ति का जीवन सिद्धान्त होना चाहिए।

卐

संघवी श्री ओटरमल भूताजी
बलाणा गली के सामने,
मु. तखतगढ़ ३०६९१२
जिला–पाली (राज०)

श्रेष्ठिवर्य शाह ओटरमलजी भूताजी राठौड़, तखतगढ़ निवासी

का

संक्षिप्त परिचय

इस पुस्तक के द्रव्यसहायक संघवी श्री ओटरमलजी भूताजी राठौड़ (वलदरा वाले) तखतगढ़ निवासी एवं उनका परिवार सात मंगलमय क्षेत्रों में अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करने में सदा आगे रहते हैं। जैनधर्म में श्रावक को इन सात क्षेत्रों में लक्ष्मी का सदुपयोग करने का निर्देश है—१. जिन प्रतिमा, २. जिन मंदिर, ३. जिनागम, ४. साधु, ५. साध्वी ६. श्रावक, ७. श्राविका।

श्रेष्ठिवर्य ओटरमलजी ने इस पुस्तक के प्रकाशन में जो द्रव्य सहायता दी है–इससे उन्होंने अपने विद्याप्रेम एवं गुरुभक्ति का परिचय दिया है। इनका जन्म वि. सं. १९७३, मगसर वद ९ को धार्मिक संस्कारवाले जैन प्राग्वट परिवार में हुआ। आपके पिताजी भूताजी एवं माताजी रतीबाई का जीवन धर्मनिष्ठ था। आपके दादाजी हंसाजी उदारमना श्रावक थे। परिवार के उत्तम संस्कारों की छाप आपके जीवन पर पड़ी। कर्मराजा का नाटक कहिये या भाग्य का खेल, पिताजी आपके जन्म के एक महीने पूर्व स्वर्ग सिधारे।

अग्नि में तपकर सोना उज्ज्वल बनता है, कष्टों में पल कर जीवन हीरे के समान चमकदार बनता है। आपने अल्प वय में कामचलाऊ व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त की तथा धार्मिक अभ्यास भी सामायिक सूत्र तक किया। दस वर्ष की बाल आयु में आप नौकरी करने बम्बई गये। आप कुशाग्र बुद्धि वाले थे, धीरे-धीरे व्यापार की हुनर सीख ली और बाद में अपनी स्वतन्त्र मनीलेन्डर्स की दुकान खोली।

व्यापारी वर्ग में आपकी साख बढ़ी और आपने अपने परिश्रम से लक्ष्मी का उपार्जन किया। धीरे-धीरे आप लक्ष्मीवान बन गये। लक्ष्मीवान का अर्थ है—जो अपनी लक्ष्मी को धर्म, समाज एवं राष्ट्र हित में खर्च करे। वह व्यक्ति लक्ष्मीवान नहीं है जो लक्ष्मी प्राप्त कर तिजोरी में बन्द कर दे। उसे कृपण या कंजूस कहेंगे। समाज में कंजूस का सम्मान नहीं होता।

श्रीमान् ओटरमलजी का विवाह भादराजून (जिला-जालोर) के श्रेष्ठिवर्य शा वीजेराजजी कसनाजी की सुपुत्री सुकीबाई से हुआ। सुकीबाई लक्ष्मी के रूप में जब इनके घर में आई, तब से दिनों-दिन लक्ष्मी की बढ़ोतरी होने लगी। सुकीबाई की जिनेन्द्र-भक्ति प्रशंसनीय है। इनकी तपस्या भी अनुमोदनीय है। ये श्राविका-रत्न निम्नलिखित तपाराधना कर चुकी हैं: बीस स्थानक की ओली, वर्धमान ओली, वरसी तप-१, उपधान २, सिद्धीतप, श्रेणिक तप, १६ उपवास, १५ उपवास, ११ उपवास, ९ उपवास, अटठाई-२, पाँच उपवास-२, सात उपवास-२, ६ उपवास, श्री नवपदजी ओली आदि। परिवार में श्रीमान् ओटरमलजी के सुपुत्र कांतिलाल, चुन्नीलाल, पारसमल और मदनलाल अपने माता-पिता के समान धर्मप्रेमी हैं। ये व्यापार में कुशल हैं तथा धार्मिक व सामाजिक कार्यों में रुचि लेते हैं।

आपकी सुपुत्रियाँ विमलाबेन और मंजुलाबेन संस्कारशीला हैं।

आपके पौत्र हैं—अनिलकुमार, भरतकुमार, सुशीलकुमार, कल्पेशकुमार, मनोजकुमार, अमितकुमार और पपुकुमार तथा पौत्रियों में अनीताकुमारी, मीनाकुमारी, मनीषाकुमारी, डिंपलकुमारी, रीटा, रिंकू, रीनू, नीकु, श्रेणिया और श्वेता हैं।

शासन प्रभावना के शुभ कार्य :

१. वि. सं. २०२० में आपने गिरिराज श्री शत्रुंजय महातीर्थ का भव्य 'संघ' बसों द्वारा निकाला जिसमें ६०० यात्रियों ने लाभ लिया। इस संघ की व्यवस्था उत्तम थी। सभी ने संघपति और उनके परिवार के सेवा और स्वामिवात्सल्य की प्रशंसा की।

२. वि. सं. २०२३ जेठ सुद ७ को तखतगढ़ में विशालकाय रम्य श्री आदिनाथ जिनालय की प्रतिष्ठा में ध्वजा का चढ़ावा लिया।

३. वि. सं. २०३७ में विश्वविख्यात तीर्थराज श्री शत्रुंजय गिरिराज का छरी पालित संघ जैनधर्म दिवाकर प. पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशीलसूरीश्वरजी म. सा. की मंगल निश्रा में भव्य रूप में निकला-जिसके १९ संघवियों में आप भी एक थे।

४. वि. सं. २०४१ में प. पू. जैनधर्मदिवाकर आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म. सा. की मंगल छत्र-छाया में श्री उपधान तप का भव्य आयोजन किया और निजलक्ष्मी का सद्व्यय कर सुन्दर लाभ लिया।

प्रतिष्ठान :

शा ओटरमल कांतिलाल एण्ड कं०

कल्याण बिल्डिंग नं० २,
सदाशिव क्रोसलेन,
बम्बई–४००००४
फोन : ३८७४२३

जवेरचन्द कांतिलाल

रामचन्द्रपुरम्,
गोदावरी (ईस्ट),
(आन्ध्र प्रदेश)
फोन : २७५

सुशीलकुमार मदनलाल

धराकसारम्,
गोदावरी (ईस्ट),
(आन्ध्र प्रदेश)
फोन · ९२

यह श्रेष्ठि-परिवार शासन-प्रभावना के शुभ कार्यों में अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करते रहे, यही मंगल कामना है ।

विषयानुक्रमणिका

क्रम	विषय		पृष्ठ
१.	श्रीसिद्धचक्र-नवपद की आराधना किसलिए	....	१
२.	श्री सिद्धचक्र-नवपद-आराधना का विशिष्ट समय	....	४
३.	नव दिन पर्यन्त रसनेन्द्रिय-विजय	....	७
४.	नव संख्या की विशिष्टता	....	८
५.	नवपद की नामावली	....	९
६.	श्री सिद्धचक्र-नवपद आराधना की श्रेष्ठता	....	१०
७.	श्री सिद्धचक्र-नवपद का स्वरूप	....	११
८.	**(१) श्री अरिहंत पद**	....	१३
	— श्री अरिहंतपद की पहिचान	....	१४
	— अरिहंत के नाम	....	२१
	— श्री तीर्थंकर-अरिहंत भगवन्तों के बारह गुणों की मुख्यता	....	२२
	— चौंतीस अतिशय	....	३२
	— श्री अरिहंत-तीर्थंकर प्रभु की चार महान् उपमाएँ	....	४१
	— श्री अरिहंत-तीर्थंकर परमात्मा की विशिष्ट गुणमयता	....	४२
	— श्री अरिहंत पद का प्रथम स्थान क्यों	....	४४

--- श्री अरिहंत पद की आराधना शुक्लवर्ण से क्यों ... ४६
— श्री अरिहंत पद का आराधन ... ४६
— श्री अरिहंत पद की आराधना का ध्येय ... ५०
— श्री अरिहंत पद की आराधना के दृष्टान्त ५०
— श्री अरिहंत पद की भावना ... ५१
९. (२) श्रीसिद्धपद ... ५२
— श्री सिद्धपद की पहिचान ... ५३
— 'सिद्ध' शब्द की व्युत्पत्ति और उसका अर्थ ... ५९
— सिद्धभगवन्त के आठ गुण ६०
— सिद्धभगवन्तों के इकतीस गुण ६३
— सिद्धभगवन्तों के नाम ... ६६
— सिद्धों के भेद ६६
— श्री सिद्धपद का वर्ण लाल क्यों ६९
— श्री सिद्धभगवन्तों को प्रथमतः नमस्कार क्यों नहीं ७१
— श्री सिद्धपद का आराधन ... ७२
— श्री सिद्धपद की आराधना के दृष्टांत ७४
— श्री सिद्धभगवन्तों का शरण ... ७४
— श्री सिद्धपद की भावना ७७
१०. (३) श्री आचार्यपद ... ७८
— श्री आचार्यपद की पहिचान ... ७८
— 'आचार्य' शब्द की व्याख्या, व्युत्पत्ति और अर्थ ८५
— आचार्य के छत्तीस गुण ... ८६
— आचार्यपद की आराधना पीतवर्ण से क्यों ... ९०

क्रम	विषय		पृष्ठ
	— आचार्यपद का आराधन	...	९२
	— आचार्यपद का आराधक	...	९३
	— आचार्यपद की भावना	....	९३
११.	**(४) श्री उपाध्याय पद**	.	९४
	— श्री उपाध्याय पद की पहिचान	...	९५
	— अनेक उपमाओं से समलंकृत	..	९७
	— 'उपाध्याय' शब्द की व्याख्या, व्युत्पत्ति और अर्थ	....	१०३
	— उपाध्याय के अन्य नाम	...	१०४
	— उपाध्याय के पच्चीस गुण	...	१०५
	— उपाध्याय पद की आराधना नील वर्ण से क्यों	....	११०
	— उपाध्याय पद का आराधन	....	११२
	— उपाध्याय पद का आराधक	....	११३
	— उपाध्याय पद की भावना	..	११३
१२.	**(५) श्री साधुपद (मुनिपद)**	....	११५
	— श्री साधुपद की पहिचान	....	११६
	— साधुपद का आराधन सत्ताईस प्रकार से क्यों		११९
	— पंचपरमेष्ठी में साधुपद का स्थान	....	११९
	— साधुपद की आराधना श्यामवर्ण से क्यों	...	१२०
	— साधु शब्द की व्याख्या, व्युत्पत्ति और अर्थ	...	१२३
	— अनेक उपमाओं से समलंकृत साधु-श्रमण		१२५
	— पंचपरमेष्ठी में मूलपद कौन सा है	...	१२८
	— साधु के अन्य नाम	....	१२८
	— साधु के अनेक भेद	....	१२९
	— श्रीसाधुपद का नमस्कारात्मक वर्णन	....	१३०
	— मंगलरूप साधुमहाराज	....	१३३

क्रम	विषय		पृष्ठ
	— लोकोत्तम साधु महाराज	....	१३४
	— शरण ग्रहण योग्य साधु महाराज	....	१३४
	— साधु भगवन्त का स्वरूप और स्थान	....	१३६
	— साधु पद का आराधन	....	१३८
	— साधुपद के आराधक की भावना	....	१३८
१३.	**(६) श्री दर्शनपद**	....	१४०
	— श्री दर्शनपद का स्वरूप	....	१४०
	— सम्यग् दर्शन के भेदों की जानकारी	...	१४५
	— श्री सम्यग् दर्शन की उपमाएँ	....	१४८
	— श्री सम्यग्दर्शन के नाम	....	१५०
	— श्री सम्यग्दर्शन के प्रकार	....	१५०
	— श्री सम्यग्दर्शन पद का श्वेतवर्ण क्यों	....	१५२
	— श्री सम्यग्दर्शन पद की प्राप्ति से क्या लाभ मिलता है	...	१५३
	— श्री सम्यग्दर्शन पद का आराधन	....	१५५
	— श्री सम्यग्दर्शन पद के आराधक की भावना		१५६
	— श्री सम्यग्दर्शन पद-भावना	...	१५६
	— सम्यक्त्ववंत संसारी जीव की विचारणा	....	१५७
	— श्री सम्यग्दर्शन पद की आराधना का दृष्टान्त	....	१५८
	— श्री सम्यग्दर्शन पद का नमस्कारात्मक वर्णन	....	१५८
१४.	**(७) श्री ज्ञानपद**	....	१६३
	— ज्ञान शब्द की व्युत्पत्ति	....	१६३
	— श्री ज्ञानपद का स्वरूप	....	१६४
	— मतिज्ञान	...	१६८
	— श्रुतज्ञान	....	१७४
	— अवधिज्ञान	....	१८२

क्रम	विषय		पृष्ठ
	— मनःपर्यवज्ञान	....	१८७
	— केवलज्ञान	...	१८९
	— ज्ञान की अनेक उपमाएँ	....	१९३
	— ज्ञान सम्बन्धी विशिष्ट विचारणा	..	१९४
	— श्री सम्यग्ज्ञान के प्रकार	....	१९८
	— ज्ञानपद के एकावन गुण	....	२००
	— श्री ज्ञानपद का आराधन	....	२०३
	— ज्ञानपद का वर्ण श्वेत उज्ज्वल क्यों		२०४
	— श्री ज्ञानपद का वर्णन	....	२०५
	— श्री ज्ञानपद की भावना	..	२०८
	— श्री ज्ञानपद का आराधन	....	२०९
	— श्री ज्ञानपद की उपासना से भव का निस्तार	....	२१०
	— श्री ज्ञानपद की आराधना का उदाहरण	..	२११
१५.	**(८) श्री चारित्रपद**	...	२१३
	— श्री चारित्र शब्द की व्युत्पत्ति-अर्थ	....	२१९
	— चारित्र शब्द के पर्यायवाची	....	२१९
	— चारित्र पद की महिमा		२१९
	— चारित्र की उपमाएँ	...	२२२
	— चारित्र के भेद	....	२२४
	— चारित्र के अन्य प्रकार	....	२३२
	— चारित्र पद के सत्तर गुण	....	२३४
	— अष्टांग योगमय चारित्र	....	२३९
	— आठ अंगों के नाम और उनका स्वरूप	....	२३९
	— चारित्र पद का अधिकारी	....	२४२
	— चारित्र पद का आराधक	....	२४२
	— चारित्र पद का आराधन	....	२४३

क्रम	विषय	पृष्ठ
	— श्री चारित्र पद का शुक्लवर्ण क्यों	२४४
	— चारित्रपद की भावना	२४४
	— श्री चारित्र पद का अनुपम वर्णन	२४६
	— सम्यक्चारित्र पद को नमस्कार	२४६
१६.	(९) श्रीतपपद	२५२
	— श्री तप पद का स्वरूप	२५३
	— तप की व्याख्या	२५४
	— तप की महत्ता	२५५
	— तप की मंगलमयता	२५७
	— तप का विशिष्ट स्थान	२५७
	— तप के प्रकार-भेद	२५६
	बाह्य तप १ अनशन तप	२६०
	२. ऊनोदरिका तप	२६५
	३ वृत्तिसंक्षेप तप	२६७
	४ रसत्याग तप	२६६
	५ कायक्लेश तप	२७०
	६. संलीनता तप	२७१
	अभ्यन्तर तप १. प्रायश्चित तप	२७३
	२. विनय तप	२७९
	३. वैयावृत्य तप	२८४
	४. स्वाध्याय तप	२८५
	५. ध्यान तप	२८७
	६. कायोत्सर्ग तप	२९१
	— तप पद के पचास गुण	२९४
	— तप पद का आराधन	२९७
	— तप पद का वर्ण श्वेत क्यों	२९८

क्रम	विषय		पृष्ठ
	— सम्यक् तप की उपमाएँ	....	२९९
	— तप से लाभ	....	३०२
	— तप पद का नमस्कारात्मक वर्णन	....	३०८
	— तप पद की आराधना का उदाहरण	....	३१०
	— तप पद आराधक की भावना	..	३११
	— तप पद का प्रयोजन	....	३१३
१७.	श्री नवपद का नमस्कारात्मक वर्णन	....	३१३
१८.	श्री सिद्धचक्र नवपद का समूह रूपे वर्ण विचार	...	३१६
१९.	श्री नवपद जी और उनके वर्ण	..	३१८
२०.	श्री नवपद की संकलना	...	३२०
२१.	श्री नवपद आराधना का फल	...	३२४
२२.	श्री नवपद के प्रभाव से वाञ्छित वस्तु की प्राप्ति		३२४
२३.	तप करने योग्य कौन है		३३१
२४.	तप ही विधेय है	....	३३२
२५	तप की प्रशंसा	...	३३३
२६.	तप की पूर्णाहुति में उद्यापन	....	३३३
२७.	उपसंहार	..	३३४
२८.	परिशिष्ट खण्ड	....	१–१२०

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमः प्रभुः।
मंगलं स्थूलभद्राद्या, जैनधर्मोस्तु मंगलम्॥

जैन धर्म दिवाकर

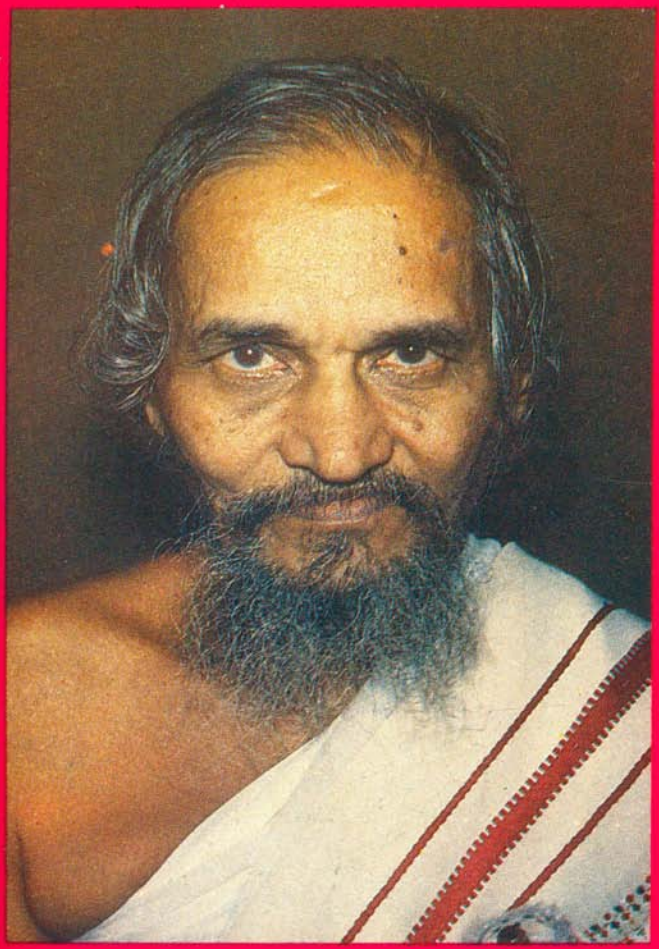

प. पू. आचार्य श्री विजय सुशील सूरी धर जी म. सा.

सुमधुर प्रवचनकार

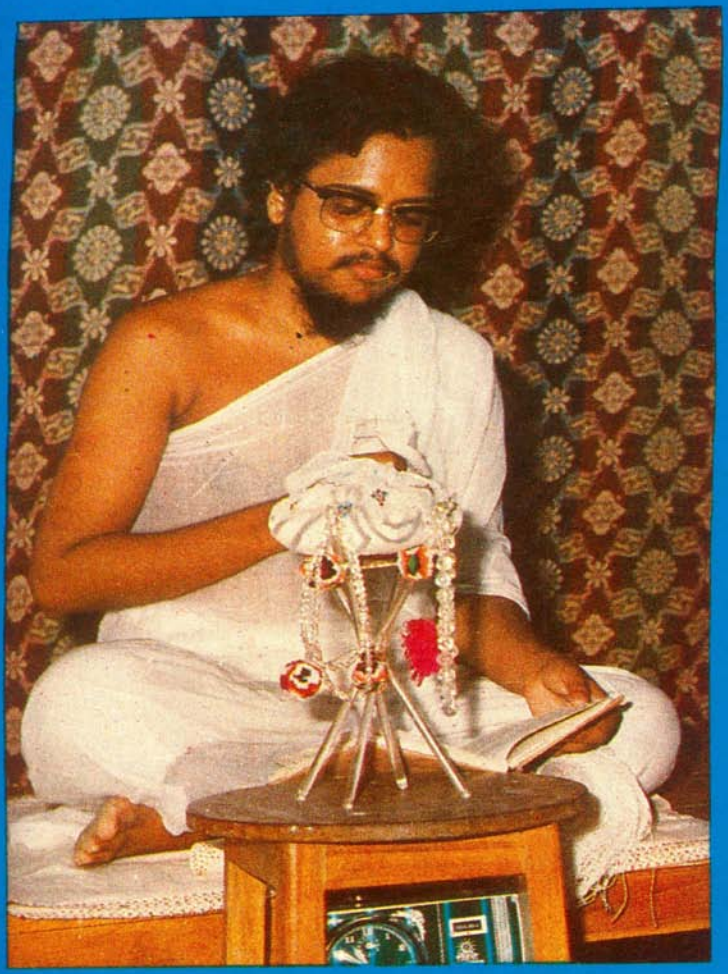

मुनिराज श्री जिनोत्तम विजय जी

卐 ।। तिजयविजयचक्कं सिद्धचक्कं नमामि ।। 卐

।। ऐं नमः ।। 卐 ।। सद्गुरुभ्यो नमः ।।

श्रीसिद्धचक्र-नवपद-स्वरूपदर्शन

श्रीसिद्धचक्र–नवपद की आराधना किसलिए ?

यस्य प्रभावाद् विजयो जगत्यां,
सप्ताङ्गराज्ये भुवि भूरिभाग्यम् ।
परत्र देवेन्द्रनरेन्द्रता स्यात्,
तत् सिद्धचक्रं विदधातु सिद्धिम् ।।१।।

अर्थ–जिसके प्रभाव से इस लोक में विजय तथा पृथ्वी पर पुण्य की पराकाष्ठारूप सप्तांग राज्य की प्राप्ति होती है, परभव में इन्द्रत्व और चक्रवर्त्तित्व प्राप्त होता है, ऐसा **सिद्धचक्र** (मुझे) सिद्धि याने मुक्ति-मोक्ष प्रदान करे। [अर्थात् मुझे मोक्ष का शाश्वत सुख देने वाला हो] ।।१।।

इस अनादि-अनन्त विश्व में सर्वज्ञ विभु श्री तीर्थंकर परमात्मा ने दो प्रकार के पदार्थ प्रतिपादित किये हैं– (१) **परिणामी** और (२) **अपरिणामी**।

जिसमें संयोगों के निमित्त से परिवर्तन हो जाता है अर्थात् विविध प्रकार से फेरफार हो जाता है वह पदार्थ **परिणामी** कहा जाता है; जैसे-आत्मा, स्फटिक, जल इत्यादि पदार्थ। जिस पर संयोगों का अंश मात्र भी असर नहीं होता अर्थात् जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होता वह पदार्थ **अपरिणामी** कहा जाता है; जैसे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय इत्यादि पदार्थ।

परिणामी पदार्थों में जो परिणमन होता है, उसमें मुख्य भाग लेने वाले द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव हैं। आत्मा पर भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का विशेष प्रबल असर है। यदि आत्मा उत्तम द्रव्यों के समागम में रह कर उन्हीं का सेवन करती रहे तो उन्नत होती है; जैसे ब्राह्मी का सेवन करने से बुद्धि प्रखर होती है। यदि वह खराब द्रव्यों के समागम में रह कर उन्हीं का सेवन करती रहे तो अवनत होती है; जैसे मदिरा (मद्य-शराब) पान करने वाली आत्मा उन्मत्त (पागल) हो जाती है। इन दोनों स्थितियों में मुख्य कारण द्रव्य ही है।

क्षेत्र के सम्बन्ध में विचार करें तो ज्ञात होगा कि श्रीशत्रुंजयादि पवित्र तीर्थभूमियों तथा अन्य धर्म-स्थानों में आत्मा को आत्मिक विकास में सद्विचारणा स्फुरती है, जबकि कुरुक्षेत्र, दण्डकारण्य और पानीपत जैसे क्षेत्रों में आत्मा को कर्मबन्धन के दुष्ट विचारों की जागृति होती है। इस सम्बन्ध में मातापिता के पूर्ण भक्त श्रवण-कुमार की कथा दण्डकारण्यक्षेत्र के प्रभाव को व्यक्त करती है। ऐसी स्थितियों में परिणमन का मुख्य कारण क्षेत्र ही है।

उत्सर्पिणी काल में दिन प्रतिदिन सब प्रकार से अभिवृद्धि होती है और अवसर्पिणीकाल में दिन प्रतिदिन सब प्रकार से हीनता आ जाती है। शरद्, बसन्त और वर्षा इन तीन ऋतुओं में पञ्चेन्द्रियों के विषयों का विशेष बल रहता है। प्रशान्त वातावरण विशेषरूप में बसन्त, शिशिर और ग्रीष्म ऋतु में देखने में आता है। शुभ कार्य करने के लिये शुभ मुहूर्त्त, शुभ घड़ी, शुभ पल और शुभ समय लिया जाता है एवं अशुभ को टालना पड़ता है। इन सब स्थितियों में काल की प्रबलता निमित्तभूत है।

शुभ भाव में आत्मा सुखी होती है और अन्त में शुद्ध भाव में कर्मपंजर से मुक्त होकर मुक्ति प्राप्त करती है। इसीलिये कहते हैं कि **भावना भवनाशिनी**। अशुभ भाव

में आत्मा दुःखी रहती है और अन्त में मृत्यु पाकर घोरातिघोर नरकादिक असह्य दुःखों को भोगती है। इसमें मुख्य कारण आत्मा का भाव ही है। इसीलिये कहा है कि **मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः**। यह कथन भावना के बल को स्पष्ट कर रहा है।

द्रव्य, क्षेत्र और भाव ये तीनों आत्मा के अधीन अवस्थित हैं लेकिन काल उसके अधीन नहीं है। इसलिये शुभ समय में प्रमाद न कर शुभ कार्य अवश्यमेव कर लेने चाहिए।

श्रीसिद्धचक्र–नवपद–आराधना का विशिष्ट समय

चार गतिरूप इस संसार-सागर में रहँट की घटिकाओं की भाँति इस जीव ने अनन्तकाल पर्यन्त परिभ्रमण किया लेकिन अभी तक इसके भवभ्रमण का अन्त नहीं आया। इस भवभ्रमण का अन्त लाने के लिए आत्मा को केवल सद्धर्म का ही शरण अभीष्ट है। जैनधर्म में आत्मा की प्रगति, विकास और आत्मोद्धार के लिए सर्वज्ञ विभु तीर्थंकर परमात्माओं ने प्रतिदिन धर्म आराधना करने पर बल दिया है। उस में अवलम्बन रूप विशिष्ट आराधना के लिए पर्वतिथियों, अठाइयों, तीर्थंकरों के कल्याणक दिवसों

तथा चातुर्मास काल को उत्तम बताया है। अल्पज्ञों, बाल-जीवों और छद्मस्थ प्राणियों के लिए सालम्बन ध्यान पुष्टावलम्बन रूप कहा है।

जैनशासन के रहस्य-रत्नों के समान उद्धारक, तारक और पावनतम श्रीसिद्धचक्र भगवन्त के नवपद हैं। इन नवपदों में अरिहन्तादिक पञ्च परमेष्ठी गुणी हैं और दर्शनादिक चार पद गुणों के रूप में हैं। इन सर्वोत्तम गुणों के सम्पादन से ही पञ्चपरमेष्ठी पूज्य, वन्द्य और साध्य कहलाते हैं। अरिहन्तादिक पञ्च परमेष्ठी नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव निक्षेपों से प्रतिदिन पूज्य हैं। नामादिक चारों निक्षेपों में प्रथम स्थापना निक्षेप सर्वाधिक काल पर्यन्त अनेक भव्यजीवों के लिए अति उपकारी बनता है। इसीलिए जैनशासन में दर्शन, ज्ञान, चारित्र तथा देवगुरुधर्ममय श्रीनवपदजी की आराधना का विधान मुख्यरूप में कहा गया है। इसके अतिरिक्त जगत् में आत्मा के लिये अन्य कोई उत्कृष्ट आलम्बन नहीं है। ऐसे नवपदमय श्रीसिद्धचक्रभगवन्त की अनुपम आराधना के लिये वर्ष में दो समय बताये गये हैं (१) आसोज मास और (२) चैत्र मास। पहला आश्विन शुक्ला सप्तमी से आश्विन शुक्ला पूर्णिमा पर्यन्त नव दिनों का है और दूसरा चैत्र शुक्ला सप्तमी से चैत्र शुक्ला पूर्णिमा पर्यन्त नव दिनों का।

नवपदमय श्रीसिद्धचक्र भगवन्त की विशिष्ट आराधना शरद् और बसन्त ऋतु में आश्विन और चैत्र मास में ही सम्यक् रीत्या की जाती है। इन दोनों माहों में ही करने का कारण यह है कि इस समय बाह्य और आन्तरिक अनेक हेतु स्वयमेव एकत्र हो जाते हैं।

नवपद की आराधना का काल शरद् और बसन्त ऋतु (आश्विन और चैत्र मास) में बताया गया है। यह समय स्वाभाविक रूप से ही मोह के अनुकूल होता है। इस समय प्रकृति का वातावरण भी अत्यन्त मादक और मोहक रहता है अतः विषयाभिलाषी जीव इन्द्रियों को अपनी तरफ पूरे वेग से आकर्षित करने का यत्न करता है अतः ऐसे समय में इन्द्रियों पर विशेष काबू रखकर और मोह के वश न होकर उन्हें दूर हटाना चाहिए जिससे वे वापिस अपने को न सता सकें।

क्रमशः सर्दी और गर्मी के काल-परिवर्तन के सन्धिरूप आश्विन तथा चैत्र मास अनेक शारीरिक रोगों को जन्म देने वाले होते हैं। प्रायः रोगों की उत्पत्ति में प्रबल कारण अजीर्ण होता है। आहार-निहार की अनियमितता से अजीर्ण होता है। इसलिये आहार और आचरण पर नियन्त्रण रखना नितान्त आवश्यक है। दोनों पर नियन्त्रण रखने वाला व्यक्ति सामान्यतः रोगों का शिकार नहीं

बनता। इस विषय में वैद्यक ग्रन्थों में कहा है कि–

"वैद्यानां शारदी माता, पिता तु कुसुमाकरः।
हेमन्तस्तु सखा प्रोक्तो, हितभुङ् मितभुग्रिपुः॥

अर्थात् शरद्ऋतु वैद्यों की माता है, वसन्त ऋतु वैद्यों का पिता है। हेमन्त ऋतु वैद्यों का मित्र है तथा हित-कर और प्रमाणसर भोजन करने वाला पथ्यवान मानव वैद्यों का रिपु-शत्रु कहा गया है।

शरद् और वसन्त ऋतु में रोग का वातावरण विशेष-रूप में होता है। देह में कफ और पित्त का ऋतुजन्य विकार होता है इसलिये आश्विन एवं चैत्र मास की शाश्वती ओली में श्रीसिद्धचक्र-नवपद की आराधना में आराधक महानुभावों के लिए दिवस में मात्र एक ही बार रूक्ष (रूखा) भोजन रूप महामंगलकारी आयम्बिल तप करने का विधान है। आयम्बिल नहीं करने वालों को भी रूखा भोजन करना लाभदायक सिद्ध होगा।

नव दिन पर्यन्त रसनेन्द्रिय–विजय

'रसे जीते जितं सर्वम्' रसना का विजेता सभी का विजेता है। पाँचों इन्द्रियों में प्रबल इन्द्रिय रसना (जीभ) है। उस पर विजय प्राप्त करना अति दुष्कर है। आहार

संज्ञा अनादि काल से आत्मा को सता रही है। उसे जीतने के लिये तप का साधन ही अति उत्तम है।

दूध, दही, घी, तेल, गुड़ और कड़ाविगई इन छह विगई के त्यागरूप नव दिन की महामंगलकारी आयम्बिल की तपश्चर्या रसना-जीभ को जीतने के लिये उत्तम उपाय है। साथ में श्रीसिद्धचक्र भगवन्त के नवपद की विधि-पूर्वक आराधना भी अत्युत्तम है। बाह्य और अभ्यन्तर जीवन की विशुद्धि में निमित्तभूत, अनेक हेतुओं से युक्त श्रीसिद्धचक्र भगवन्त की आराधना प्रतिवर्ष आश्विन और चैत्र मास में धर्मी जीवों द्वारा प्रत्येक नगर-शहर-ग्राम आदि में नौ दिन पर्यन्त की जाती है।

नव संख्या की विशिष्टता

एक से दस अंकों में नवें (९) अंक की विशिष्टता अद्‌भुत है। केवल नव का अंक ही ऐसा अंक है जो सदा अखंडित रहता है। चाहे इसकी कितनी ही जोड़-बाकी या गुणाकार आदि करें तो भी यह अंक अखंडित ही रहता है— जैसे—

९ × १ = ९
९ × २ = १८, १ + ८ = ९
९ × ३ = २७, २ + ७ = ९
९ × ४ = ३६, ३ + ६ = ९

९ × ५ = ४५, ४ + ५ = ९
९ × ६ = ५४, ५ + ४ = ९
९ × ७ = ६३, ६ + ३ = ९
९ × ८ = ७२, ७ + २ = ९
९ × ९ = ८१, ८ + १ = ९
९ × १० = ९०, ९ + ० = ९

इस तरह नव का अंक खण्डित नहीं होता, सदा अखण्ड ही रहता है। श्री सिद्धचक्र भगवन्त के नवपद भी अखण्ड ही हैं। उनकी सम्यग् आराधना कर आराधक भव्यात्मा सकल कर्म का क्षय करके अखण्ड, अविचल, शाश्वत मोक्षसुख को प्राप्त कर सकता है।

नवपद का आलम्बन स्वीकार कर के भूतकाल में कई भव्यात्माओं ने मोक्षसुख प्राप्त किया है, वर्त्तमान काल में महाविदेह क्षेत्रादिक से प्राप्त कर रहे हैं और भविष्य में भी इधर और उधर से अवश्य प्राप्त करेंगे।

नवपद की नामावली

श्री सिद्धचक्र भगवन्त के नवपद हैं, जिनके नाम क्रमशः निम्नलिखित हैं—

[१] अरिहन्तपद, [२] सिद्धपद, [३] आचार्यपद

[४] उपाध्यायपद, [५] साधुपद, [६] दर्शनपद, [७] ज्ञानपद, [८] चारित्रपद एवं [९] तपपद।

ये उक्त नव पद उत्तम तत्त्वरूप हैं। इतना ही नहीं ये जिनशासन के सर्वस्व हैं। इनका बहुमान, भक्ति और विधिपूर्वक आराधन सर्व वाञ्छित अर्थात् ऐहिक-पारलौकिक सुख और परम्परा से मोक्षफल की प्राप्ति करानेवाला अद्वितीय और बेजोड़ साधन है।

यथार्थ विधिपूर्वक आराधन करने वाले भव्यजीव देव-गति और मनुष्य-गति के उत्तम भवों को प्राप्त कर उत्कृष्ट नवमे भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं।

श्री सिद्धचक्र नवपद आराधना की श्रेष्ठता

यह संसार दुःखमय, दुःखफलक और दुःखपरम्परक है। इससे बचकर मोक्षप्राप्ति का सच्चा उपाय करना भव्यत्व का परिपाक है। यह परिपाक करने के लिये जो साधन अनन्तोपकारी श्रीतीर्थंकर परमात्माओं ने बतलाये हैं, उनमें श्रीसिद्धचक्र-अरिहन्तादि नवपदों का आराधन मुख्य है।

श्रीनवपद की आराधना में देव, गुरु और धर्म इन तीनों की आराधना भी आ जाती है। कारण कि प्रथम

अरिहन्त पद और द्वितीय सिद्धपद ये दोनों देवतत्त्व हैं। तृतीय आचार्यपद, चतुर्थ उपाध्यायपद और पंचम साधुपद ये तीनों गुरुतत्त्व हैं। षष्ठ सम्यग्दर्शनपद, सप्तम सम्यग्ज्ञानपद, अष्टम सम्यक्चारित्र पद एवं नवम सम्यक् तपपद ये चारों **धर्मतत्त्व** हैं। इस प्रकार श्रीसिद्धचक्र नवपद की आराधना करने पर आराधक के लिए कोई अन्य आराधना शेष नहीं रहती। इसी कारण से शास्त्र में श्रीसिद्धचक्र नवपद की सम्यक् आराधना को इतनी महत्ता दी गई है।

इनमें प्रथम पाँच पद (अरिहन्त से लेकर साधुपद तक) गुणी अर्थात् गुणवाले हैं और अन्तिम चार पद (दर्शन से लेकर तपपद तक) गुण हैं। जो गुणी होते हैं उनमें ये गुण रहते हैं। अर्थात् प्रथम के गुणी रूप पाँच पदों में अन्तिम दर्शनादि रूप चार गुण रहते हैं। गुण-गुणी का यह सम्बन्ध अति सुन्दर है।

श्री सिद्धचक्र नवपद का स्वरूप

अनन्त पुण्य के प्रभाव से दशदृष्टान्तों से दुर्लभ ऐसा मनुष्य भव उत्तम क्षेत्र, उत्तम कुलादिक सामग्री और सद्-गुरुओं का सुसंयोग प्राप्त करके दुःख के कारणभूत मद्य, विषय, कषाय, निद्रा तथा विकथा रूप पाँचों प्रकार का

प्रमाद त्याग करके सुख के कारण भूत सद्धर्म के आचरण हेतु सम्यक् प्रकार से उद्यम अवश्यमेव करना चाहिए। सर्व तीर्थंकर भगवन्तों ने दान, शील, तप और भाव इस तरह चारों प्रकार से सद्धर्म का प्रतिपादन किया है। इन चारों में भी भाव (धर्म) की मुख्यता विशेष रूप में कही है। मोह-मूर्च्छा के त्याग रूप शुद्ध भाव रहित दिया हुआ विशेष **'दान'** भी मुक्ति का साधन नहीं बन सकता। विषय-विराग रूप भाव के बिना **'शील'** भी इष्ट फल देने में कभी समर्थ नहीं बन सकता। अनाहारी मुक्तिपद की अभिलाषा-इच्छा बिना, केवल सांसारिक–पौद्गलिक अभिलाषा–इच्छाओं से किया जाने वाला **'तप'** भी संसार के मूल को विनष्ट करने वाला नहीं बन सकता, वह केवल भव-वृद्धि का ही निमित्त बनता है। इसलिये भव्यात्माओं को अपना आत्मभाव विशुद्ध करने के लिए आत्मजागृति पूर्वक क्षण–क्षण विशेष प्रयत्न करने चाहिए। यह आत्मभाव भी मन का विषय होने से मन के अधीन है। मर्कट जैसे चंचल मन को आलम्बन के बिना जीतना मुश्किल है। इसलिये अनन्त उपकारी महाज्ञानी भगवन्तों ने आलम्बन ध्यान का सदुपदेश दिया है।

विश्व में अनेक आलम्बनों के होते हुए भी आत्मविकास, प्रगति और आत्मोद्धार के बारे में **सर्वज्ञ श्री तीर्थंकर भगवन्तों ने श्रीसिद्धचक्र-नवपद के ध्यान को प्रशस्ततम**

सर्वोत्कृष्ट आलम्बनरूप प्रतिपादित किया है । देखिए–

आलंबणाणि जइविहु, बहुप्पयाराणि संति सत्थेसु ।
तहविहु नवपयज्झाणं, सुपहाणं बिंति जगगुरुणा ।।

इसलिये श्रीअरिहन्तादि नव पद अवश्यमेव जानने योग्य और आराधन करने योग्य हैं ।

(१) श्री अरिहन्तपद

卐 नमो अरिहंताणं 卐

'नमो नमो होउ सया जिणाणं'

[शिखरिणी-वृत्तम्]

अशोकाख्यं वृक्षं सुरविरचितं पुष्पनिकरं,
ध्वनिं दिव्यं श्रव्यं रुचिरचमरावासनवरम् ।
वपुर्भासंभारं सुमधुररवं दुन्दुभिमथ,
प्रभोः प्रेक्ष्यच्छत्रत्रयमधिमनः कस्य न मुदः ।।१।।

[उपजाति-वृत्तम्]

अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टि-र्दिव्यध्वनिश्चामरमासनञ्च ।
भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्रं, सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम्
।।२।।

[अनुष्टुब्-वृत्तम्]

अपायापगमो ज्ञानं, पूजा वचनमेव च ।
श्रीमत्तीर्थकृतां, नित्यं, सर्वेभ्योऽप्यतिशेरते ।।३।।

[उपजातिवृत्तम्]

उप्पन्न-सन्नाण–महोमयाणं,
सप्पाडिहेरासण–संठियाणं ।
सद्धे सणाणंदियसज्जणाणं,
नमो नमो होउ सयाजिणाणं ।। ४ ।।

जियंतरंगारिगणे सुनाणे,
सप्पाडिहेराइसयप्पहाणे ।
संदेहसंदोहरयं हरंते,
झाएह निच्चंपि जिणेरिहंते ।। ५ ।।

श्रीअरिहंतपद की पहचान

देव, गुरु और धर्म इन तीनों को अपने में समाहित करने वाले श्रीसिद्धचक्र-नवपद में **श्रीअरिहन्तपद** प्रथम स्थान में विभूषित है ।

अरिहन्त बनने वाली आत्मायें अपने पूर्व भवों में सम्यक्त्व प्राप्तकर परिमित भवों की मर्यादा अंकित करती हैं अर्थात् अपना संसार सीमित कर लेती हैं । अरिहन्त

बनने से पहले यों तो अनेक भवों से वे आत्मा की साधना में मग्न रहती हैं तो भी तीसरे पूर्व भव में वे अर्हदादि वीश स्थानक तप की सुन्दर आराधना करके निकाचित रूप से तीर्थंकर नामकर्म बाँधती हैं। सम्पूर्ण विश्व के जीव दुःख से मुक्त हों, इस भावना से तथा जीवमात्र को धर्ममार्ग में जोड़ने के दृढ़ संकल्पों द्वारा तीसरा भव पूर्ण करके, बिचला-मध्यभव देव या नारक का भी पूर्ण करके, पुनः मनुष्य भव में उत्तम राजकुल में माता की कुक्षि में उत्पन्न होती हैं। उस समय माता चौदह महान् स्वप्न देखती है। इन्द्र महाराजा स्तुति-स्तवना करते हैं। गर्भ के प्रभाव से माता को अच्छे दोहले उत्पन्न होते हैं। वे सभी दोहले महाराजा पूर्ण करते हैं। गर्भ का काल सम्पूर्ण होते ही शुभ लग्न में माता पुत्ररत्न को जन्म देती है। सर्वत्र क्षणभर बिजली के सदृश प्रकाश होता है और त्रस-स्थावर सभी जीवों को आनंद की अनुभूति होती है। छप्पन दिग्कुमारिकाएँ अपने-अपने स्थान से आकर सूतिकर्म का कार्य करती हैं। चौंसठ इन्द्र-इन्द्राणियाँ, देवों और देवियों सहित मेरु पर्वत पर जन्माभिषेक महोत्सव मनाते हैं। महाराजा भी जन्मोत्सव मनाते हैं। उनकी देह में कभी रोग नहीं होता, पसीना नहीं होता, रुधिर और मांस दोनों दूध जैसे उज्ज्वल होते हैं, तथा श्वास और निःश्वास कमल की सौरभ जैसे सुगन्धित होते हैं।

उनका आहार और निहार चर्मचक्षु वाले नहीं देख सकते हैं। मति, श्रुत और अवधि ये तीनों ज्ञान पूर्व से ही उनके साथ में रहते हैं। अलिप्त भाव से भोगते हुए भोगों को भी जैसे सर्प काँचली को त्यजता है वैसे तजकर, वार्षिक संवत्सरी दान देकर, परमपददायिनी पारमेश्वरी प्रव्रज्या [दीक्षा] स्वीकार कर, चतुर्थ मनःपर्यवज्ञान प्राप्त कर तप की साधना के साथ आते हुए अनुकूल प्रतिकूल सर्व उपसर्गों को समभाव से सहन कर, अप्रमत्तपणे चारित्र धर्म की अखण्डित आराधना के साथ शुक्लध्यान की धाराएँ चढ़ कर, चार घाती कर्मों का सर्वथा क्षय-विनाशकर, लोकालोकप्रकाशक केवलज्ञान और केवलदर्शन जिन्होंने प्राप्त किया ऐसे तीर्थंकर नाम कर्म उदय वाले श्री अरिहन्त भगवन्त सर्वज्ञ सर्वदर्शी बने।

व्याकरण के नियमानुसार 'अर्ह' धातु से वर्त्तमान-कालीन कर्तृ अर्थ में शतृ प्रत्यय होने से अर्हत् शब्द बनता है। उसके **अरिहंत, अरुहंत** और **अरहंत** ये तीन रूप बनते हैं।

(१) **अरिहंत का अर्थ** : **अरि** याने शत्रु तथा **हंत** याने हनने वाला। अर्थात् जिसने कर्मरूपी शत्रु हने हैं-विनाश किये हैं वे **अरिहंत** कहे जाते हैं। अत्यन्त दुर्जेय भावशत्रुओं को जीतकर जिसने केवलज्ञान प्राप्त किया है।

(२) **अरुहंत का अर्थ** : 'न रोहति भूयः संसारे समुत्पद्यते इत्यरुः, संसारकारकाणां कर्मणां निर्मूलः कर्षितत्वात् अजन्मनि सिद्धे ।'

संसार में जो पुनः उत्पन्न नहीं होते हैं, उन्हें **अरुह** कहते हैं । संसारकारक कर्मों के समूह का समूल विनाश करने से उनका पुनर्जन्म नहीं होता । वे अरुह-सिद्ध कहलाते हैं । अर्थात्- जिनके कर्मरूपो बीजों का सर्वथा क्षय हो जाने से अब संसार में पुनः जन्मरूपो अंकुरों का प्रादुर्भाव नहीं होता है । जिन्हें पुनः जन्म नहीं लेना है उन्हें अरुहंत कहा जाता है ।

(३) **अरहंत का अर्थ** : 'अर्हन्ति देवादिकृतां पूजामित्यर्हन्तः ।' अरहंत याने देवादि द्वारा पूजित अर्थात् जो श्री जन्म से सुरासुरेन्द्रों और नरेन्द्रों से पूज्य हैं ।

श्री अरिहन्तों का शरण-- इन तीनों अर्थ वाले अरिहंत भगवंत मुझको शरणरूप हों ! निम्नलिखित गाथाएँ यही भाव प्रदर्शित करती हैं --

चउतीसअइसय जुआ, अट्ठमहापाडिहेरपडिपुन्ना ।
सुरविहिअसमोसरणा, अरहंता मज्ज ते सरणं ।।

चौंतीस अतिशयों से युक्त, अष्ट महा प्रातिहार्यों से परिपूर्ण, देवों ने जिनके लिए समवसरण की रचना की है, ऐसे हे अरिहंत ! मुझे आपकी शरण प्राप्त हो ।

चउविहकसायचत्ता, चउवयणा चउप्पयारधम्मकहा ।
चउगइ दुहनिद्दलणा, अरहंता मज्झ ते सरणं ।।

चार प्रकार के कषायों से मुक्त, चतुर्मुख, चार प्रकार के धर्म का कथन करने वाले, चारों गतियों के दुःखों को दलने वाले, ऐसे हे अरिहंत ! मुझे आपकी शरण प्राप्त हो ।

जे अट्ठकम्ममुक्का, वरकेवलनाणमुणिअपरमत्था ।
अट्ठमयट्ठाणरहिआ, अरहंता मज्झ ते सरणं ।।

जो आठों कर्मों से मुक्त हैं, श्रेष्ठ केवलज्ञान से परमार्थ को जानने वाले हैं, अष्ट प्रकार के मदस्थानों से रहित हैं, ऐसे हे अरिहंत भगवन्त ! मुझे आपकी शरण प्राप्त हो ।

भवखित्त अरुहंता, भावारिप्पहणणे अरिहंता ।
ते तिजगपूअणिज्जा, अरहंता मज्झ ते सरणं ।।

भवरूपी क्षेत्र में जिन्हें उगना नहीं अर्थात् संसार में जन्म लेना नहीं, भावरूपी शत्रुओं को हनन करने की योग्यता वाले, तीन लोक में पूजनीय, ऐसे हे अरिहंत ! मुझे आपकी शरण प्राप्त हो ।

निर्युक्तिकार पू० श्रीभद्रबाहुस्वामी महाराज ने 'श्री आवश्यक सूत्र' की निर्युक्ति में अरिहंत के बारे में कहा है कि—

"इन्दिय विसय कषाये, परिषहे वेयणा उवसग्गे ।
ए ए अरिणो हंता, अरिहंता तेण वुच्चंति ।।
अट्ठविहं पि य कम्मं, अरिभूयं होइ सव्व जीवाणं ।
तं कम्ममरिहंता, अरिहंता तेण वुच्चंति ।।
अरिहंति वंदण नमंसणाणि अरिहंति पूय सक्कारं ।
सिद्धिगमणं च अरिहा, अरिहंता तेण वुच्चंति ।।
देवासुरमणुए सुय, अरिहा पूया सुरुत्तमा जम्हा ।
अरिणो हंता अरिहंता, अरिहंता तेण वुच्चंति ।।"

जो इन्द्रियों के विषयों, कषायों, परीषहों और वेदनाओं का विनाश करने वाले हों वे अरिहंत–अर्हत् कहलाते हैं। जो सब जीवों के शत्रुभूत उत्तर प्रकृतियों से युक्त आठ कर्मों का विनाश करने वाले हों वे अरिहंत–अर्हत् कहलाते हैं। जो वन्दन, नमस्कार, पूजा और सत्कार के योग्य हों, मोक्षगमन के लायक हों, सुरासुरनरवासव से पूजित हों तथा अभ्यन्तर शत्रुओं का विनाश करने वाले हों वे अरिहंत–अर्हत् कहलाते हैं।

पू० श्रीमद् जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणजी महाराज भी

अरिहंत के विषय में 'विशेषावश्यक भाष्य' में कहते हैं कि-

"रागद्दोष कषाए य, इन्दियाणीय पंच वि परिसहे ।
उवसग्गे नामयंता, नमोरिहा तेण वुच्चंति ।।"

राग-द्वेष और चारों कषायों, पाँचों इन्द्रियों तथा परीषहों को झुकाने वाले अरिहंत कहलाते हैं । उनको नमस्कार हो ।

पू० कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज ने भी अर्हन् के सम्बन्ध में 'योगशास्त्र' में कहा है कि–

"सर्वज्ञो जितरागादि–दोषस्त्रैलोक्यपूजितः ।
यथास्थितार्थवादी च, देवोऽर्हन् परमेश्वरः ।।"

जो सर्वज्ञ हैं, जिन्होंने रागादि दोषों को जीता है, जो त्रैलोक्यपूजित हैं, जो पदार्थ जैसे हैं उनका वैसा ही यथार्थ विवेचन करते हैं, वे अर्हन् परमेश्वर कहलाते हैं ।

ऐसे अरिहंत परमात्मा मंगलरूप हैं–

(१) विश्व में चार पदार्थ मंगलरूप में हैं । उनमें अरिहंत भगवन्तों का भी स्थान है ।

'अरिहंता मंगलं'–अरिहंत मंगलरूप हैं ।

(२) चार पदार्थ लोक में उत्तम हैं। उनमें अरिहंत भगवन्तों का भी स्थान है।

'अरिहंता लोगुत्तमा'—अरिहंत लोकोत्तम हैं।

(३) चार शरणभूत में भी अरिहंत भगवन्तों का स्थान है।

'अरिहंते सरणं पव्वज्जामि'—अरिहंतों का शरण स्वीकार करता हूँ।

अरिहंत के नाम

अरिहंत परमात्मा के अनेक नाम हैं, जिनका प्रतिपादक श्लोक निम्नलिखित है—

"अर्हन् जिनः पारगतस्त्रिकालविद्,
क्षीणाष्टकर्मा परमेष्ठ्यधीश्वरः।
शम्भुः स्वयंभूर्भगवान् जगत्प्रभु-,
स्तीर्थंकरस्तीर्थकरो जिनेश्वरः॥

"स्याद्वाद्यभयसार्वाः सर्वज्ञः सर्वदर्शीकेवलिनौ।
देवाधिदेवबोधिद—पुरुषोत्तम—वीतरागाप्ताः॥"

अर्हन्, जिन, पारगत, त्रिकालवित्, क्षीणाष्टकर्मा, परमेष्ठी, अधीश्वर, शम्भू, स्वयम्भू, भगवान् जगत्प्रभु,

तीर्थङ्कर, तीर्थंकर, जिनेश्वर, स्याद्वादी, अभयद, सार्व, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, केवली, देवाधिदेव, बोधिद, पुरुषोत्तम, वीतराग और आप्त।

इस तरह हम जिन्हें अरिहंतादिक अनेक गुणनिष्पन्न नामों से पहचानते हैं, ऐसे श्रीतीर्थंकर अरिहन्त भगवन्तों के आठ प्रातिहार्य और चार महाअतिशय तीन लोक के लोकों को आश्चर्यमुग्ध करते हैं। चौंतीस अतिशय भी मन्त्र-मुग्ध करते हैं तथा उनकी पैंतीस गुणयुक्त वाणी सर्व-ग्राह्य धर्मदेशना मालकौशिकी मुख्य राग में सबको आत्मो-द्धारका सच्चा मार्ग दिखलाती है। धर्मतीर्थ प्रवर्त्तानि वाले ऐसे श्रीतीर्थंकर अरिहंत भगवन्त बल-वीर्य को गोपवे बिना अनिद्र और निस्तन्द्र भाव से सतत तीर्थंकरपने व धर्मचक्र-वर्त्तिपने की अद्वितीय अद्‌भुत महाऋद्धि को भोगते हुए महीतल पर विचरते रहें।

श्रीतीर्थंकर-अरिहंत भगवन्तों के बारह गुणों की मुख्यता

यद्यपि श्रीतीर्थंकर - अरिहंत भगवन्त अनंत गुणों से समलंकृत हैं तथापि उनके बारह गुणों की मुख्यता आगम-शास्त्रों में श्रुतकेवली गणधर भगवन्तों ने प्रतिपादित की है। उन बारह गुणों का दिग्‌दर्शन इस प्रकार है—

आठ प्रातिहार्य

(१) **अशोकवृक्ष**–जहाँ श्रीतीर्थंकर-अरिहन्त भगवन्त का दिव्य समवसरण देवता रचते हैं, वहाँ प्रभु के देह-शरीर से बारह गुना ऊँचा अशोकवृक्ष (आसोपालव का वृक्ष) भी देवता रचते हैं। इसके नीचे बैठ कर भगवान देशना देते हैं।

(२) **सुरपुष्पवृष्टि**–देवतागण एक योजन प्रमाण समवसरण की भूमि में नीचे बींटवाले, सुगन्धित और जल-स्थल में उत्पन्न हुए चम्पक आदि पंचरंगी सचित्त पुष्पों की जानु प्रमाण (घुटने तक) वर्षा चारों ओर करते हैं।

(३) **दिव्यध्वनि**–श्री अरिहंत-तीर्थंकर परमात्मा की वाणी को मालकोश राग, वीणा, बाँसुरी आदि के स्वर द्वारा देवता पूरित करते हैं।

(४) **चामर**–सुवर्ण की दांडीवाले रत्नजड़ित चार जोड़ी श्वेत चामर दिव्य समवसरण में श्रीअरिहंततीर्थंकर भगवन्त को देवता वींझते हैं।

(५) **सिंहासन**–श्रीअरिहंत-तीर्थंकर परमात्मा के बैठने के लिए रत्नजड़ित सुवर्णमय **सिंहासन** समवसरण में देवता रचते हैं।

(६) **भामण्डल**—श्री अरिहन्त-तीर्थंकर भगवान के मस्तक के पीछे शरद्-ऋतु के सूर्य के समान महातेजस्वी **भामण्डल** देवता रचते हैं। वह भगवन्त के तेज को अपने तेज में संहरित कर लेता है। जो वह न हो तो भगवान के मुख सन्मुख न देखा जा सके।

(७) **दुन्दुभि**—श्रीअरिहंत-तीर्थंकर परमात्मा के समवसरण के समय देवता **देवदुन्दुभि** आदि वाजीन्त्र बजाते हैं। यह इस बात की सूचना देता है कि हे भव्यात्माओ! तुम शिवपुर के सार्थवाह समान ऐसे इन भगवन्त को सेवो।

(८) **छत्र**—समवसरण में श्रीअरिहंत-तीर्थंकर भगवंन्त के मस्तक पर उपर्युपरि शरद्-ऋतु के चन्द्रमा के समान श्वेत और मोतियों के हारों से सुशोभित ऐसे तीन-तीन छत्र देवता रचते हैं।

स्वयं भगवन्त तो समवसरण में पूर्वाभिमुख बैठते हैं। अन्य तीन दिशाओं में देवता भगवन्त के जैसे तीन प्रतिबिम्ब स्थापित करते हैं। इससे बारह छत्र समवसरण में होते हैं। वे इस तरह सूचित करते हैं कि तीन लोक के स्वामी ऐसे इन भगवन्त को हे भव्यात्माओ! तुम सेवो।

समवसरण न हो तो भी ये आठ प्रातिहार्य अवश्य होते हैं।

अब अपायापगमातिशयादि चार मुख्य मूल अतिशयों का वर्णन करते हैं–

अतिशय अर्थात् उत्कृष्टता वाले, विशिष्ट चमत्कार वाले गुण ।

(१) **अपायापगमातिशय–**

अपाय अर्थात् उपद्रव, उनका **अपगम** अर्थात् विनाश । वह दो प्रकार का है । **स्वाश्रयी** और **पराश्रयी** ।

(अ) **स्वाश्रयी** अर्थात् अपने सम्बन्ध में अपाय अर्थात् उपद्रव का द्रव्य से और भाव से विनाश किया है जिसने वह ।

द्रव्य उपद्रव–सर्व रोगों का जिसके विनाश हो गया है ।

भाव उपद्रव–अन्तरंग के अठारह दूषणों का जिसने विनाश किया है । वे निम्नलिखित हैं–

(१) दानान्तराय, (२) लाभान्तराय, (३) भोगान्तराय, (४) उपभोगान्तराय, (५) वीर्यान्तराय, (६) हास्य, (७) रति, (८) अरति, (९) भय, (१०) शोक, (११) जुगुप्सा-निन्दा, (१२) काम, (१३) मिथ्यात्व, (१४) अज्ञान, (१५) निद्रा, (१६) अविरति, (१७) राग और (१८) द्वेष ।

इस तरह स्वाश्रयी अपायापगमातिशय जानना ।

(ब) **पराश्रयी अपायापगमातिशय**–जिसके द्वारा दूसरे का उपद्रव दूर होवे ।

श्रीअरिहंत-तीर्थंकर परमात्मा जहाँ-जहाँ विचरण (विहार) करते हैं, वहाँ-वहाँ प्रत्येक दिशा में मिल कर सवा सौ योजनपर्यन्त प्रायः रोग, मरकी, वैर, अतिवृष्टि, अनावृष्टि एवं दुर्भिक्ष आदि नहीं होते ।

(२) **ज्ञानातिशय**–श्रीअरिहंत-तीर्थंकर परमात्मा जन्म से ही मति, श्रुत और अवधि इन तीनों ज्ञान से युक्त होते हैं । चतुर्थ मनःपर्ययज्ञान दीक्षा अङ्गीकार करते ही प्राप्त हो जाता है । पश्चाद् तपादि साधना द्वारा चार घनघाती कर्मों का क्षय होने पर उनको लोकालोकप्रकाशक केवल-ज्ञान प्राप्त हो जाता है, जिससे वे विश्व के सब पदार्थों को हस्त में रहे हुए आँवले की भाँति प्रत्यक्ष देखते हैं ।

भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल के समस्त भावों को यथावत् देखना, जानना और उनका देशना द्वारा यथार्थ स्वरूप निरूपण करना, यही ज्ञानातिशय कहा जाता है ।

(३) **पूजातिशय**–जिससे श्रीअरिहंत-तीर्थंकर भगवन्त सर्वपूज्य हैं अर्थात् जिनकी पूजा राजा, बलदेवादि, देवता-

इन्द्र आदि करते हैं या करने की भावना-अभिलाषा रखते हैं; वह पूजातिशय कहा जाता है।

(४) **वचनातिशय**—जिसके द्वारा श्रीअरिहंत-तीर्थंकर परमात्मा की[१] पैंतीस गुण युक्त वाणी देवों, मनुष्यों और तिर्यंचों को अपनी-अपनी भाषा में स्पष्ट समझ पड़ती है। इसलिए उस वाणी के अतिशय को **वचनातिशय** कहते हैं।

उपर्युक्त चार अतिशय ही मुख्य-मूल अतिशय हैं। पूर्वकथित अशोकवृक्षादि आठ प्रातिहार्य और अपायापगमातिशयादि चार मुख्य-मूल अतिशय सब मिलकर ये बारह गुण श्रीअरिहंत-तीर्थंकर परमात्मा के हैं।

बाह्य और आन्तर विश्व की विशिष्ट गुण-समृद्धि का समावेश इन बारह गुणों में हो जाता है। इसलिये श्री अरिहन्त—तीर्थंकर भगवन्त की सम्यग् आराधना बारह भेदों से प्रतिपादित की गई है।

---

१. जिनवाणी के पैंतीस गुण इस प्रकार हैं—

"संस्कारवत्वमौदात्यमुपचारपरीतता।
मेघगम्भीरघोषत्वं, प्रतिनादविधायिका ॥६५॥
दक्षिणत्वमुपनीतरागत्वं च महार्थता।
अव्याहतत्वं शिष्टत्वं, संशयानामसंभवाः ॥६६॥

निराकृतान्योत्तरत्वं, हृदयङ्गमतापि च ।
मिथः साकांक्षता प्रस्तावौचित्यं तत्त्वनिष्ठता ।।६७।।

अप्रकीर्णप्रसृतत्वमस्वश्लाघान्यानन्दिता ।
अभिजात्यमतिस्निग्ध मधुरत्वं प्रशस्यता ।।६८।।

अमर्मवेधितौदार्य्यं, धर्मार्थप्रतिबद्धता ।
कारकाद्य विपर्य्यासो, विभ्रमादिवियुक्तता ।।६९।।

चित्रकृत्वमद्भुतत्वं, तथानतिविलम्बिता ।
अनेकजातिवैचित्र्यमारोपित विशेषता ।।७०।।

सत्त्वप्रधानता वर्णपदवाक्यविविक्तता ।
अव्युच्छित्तिरखेदित्वं, पञ्चत्रिंशच्चवाग्गुणाः।।७१।।

[श्री अभिधान चिन्तामणि देवाधिदेव काण्ड]

अर्थ--

(१) **संस्कारवत्व**-- संस्कार वाली अर्थात् सर्व प्रकार के भाषिक दोषों से रहित ।

(२) **औदात्य**-- उच्च स्वर से उच्चारित - उद्घोषित ।

(३) **उपचारपरीतता**--उपचारित लौकिक दोषों से रहित ।

(४) **मेघगम्भीरघोषत्व**--मेघ के समान गंभीर घोष सहित।

(५) **प्रतिनादविधायिका**-- प्रतिध्वनि से युक्त ।

(६) **दक्षिणत्व**-- सरलता सहित ।

(७) **उपनीतरागत्व**-- मालकोशादि रागों से युक्त ।

(८) **महार्थता**-- महान् अर्थ वाली ।

(९) **अव्याहतत्व**-- पूर्वापरविरोध से रहित ।

(१०) **शिष्टत्व**-- अभिमत शास्त्र की प्रतिपादक तथा वक्ता की शिष्टता को सूचक ।

(११) **संशयानामसंभवा**-- जिसके श्रवण से श्रोताओं को संशय पैदा नहीं हो ।

(१२) **निराकृताऽन्योत्तरत्व**-- किसी भी प्रकार के दोष से रहित । अर्थात्- जिस कथन में अंश मात्र भी दोष न हो और एक ही बात पुनः पुनरुक्ति-पुनरावर्त्तन-रूप में न हो ।

(१३) **हृदयङ्गमता**-- श्रोताजनों के अन्तःकरण--हृदय को प्रमुदित करने वाली ।

(१४) **मिथः साकांक्षता**-- पदों और वाक्यों की सापेक्षता सहित ।

(१५) **प्रस्तवौचित्य**-- यथासमय देश-काल-भाव के अनुकूल ।

(१६) **तत्त्वनिष्ठता**-- षट् द्रव्य और नव तत्त्व इत्यादि

तत्त्वों के वास्तविक स्वरूप को धारण करने वाली ।

(१७) **अप्रकीर्णप्रसृतत्व**-- अधिक विस्तार और विषयान्तर दोष रहित ।

(१८) **अस्वश्लाघान्यनिन्दिता**-- अपनी प्रशंसा और अन्य की निन्दा आदि दुर्गुणों से रहित ।

(१९) **आभिजात्य**-- प्रतिपादन करने वाले विषय के अनुरूप भूमिका को अनुसरने वाली ।

(२०) **अतिस्निग्धमधुरत्व**-- घृतादिक के सदृश अतिस्निग्ध और शर्करादिक के समान मधुरता वाली ।

(२१) **प्रशस्यता**-- प्रशंसा की योग्यता धारण करने वाली ।

(२२) **अमर्मवेधिता**-- अन्य के मर्म या गोप्य का प्रकाशन नहीं करने वाली ।

(२३) **औदार्य**--प्रकाशन करने लायक अर्थ को शिष्टतापूर्वक प्रकाशित करने वाली अर्थात् औदार्य गुण वाली ।

(२४) **धर्मार्थ प्रतिबद्धता**-- धर्म और अर्थ सहित ।

(२५) **कारकाद्यविपर्यास**-- कर्त्ता, कर्म, क्रिया, काल, विभक्ति इत्यादि दोष रहित ।

(२६) **विभ्रमादिवियुक्तता**-- चित्त के विभ्रम आदि दोषों से रहित ।

(२७) **चित्रकृत्व**-- श्रोताओं को नित्य आश्चर्यान्वित करने वाली ।

(२८) **अद्भुतत्व**-- अद्भुतता वाली ।

(२९) **अनतिविलम्बिता**-- अतिविलम्ब से रहित ।

(३०) **अनेकजाति वैचित्र्य**-- भाँति-भाँति के पदार्थों का अनेक प्रकार से निरूपण करने वाली ।

(३१) **आरोपितविशेषता**-- दूसरे के वचनों की अपेक्षा विशेषता दिखलाने वाली ।

(३२) **सत्त्व प्रधानता**-- सत्त्व की मुख्यता वाली ।

(३३) **वर्णपदवाक्यविविक्तता**-- वर्ण, पद, वाक्यों के विवेक से युक्त ।

(३४) **अव्युच्छित्ति**-- प्रतिपादन करने लायक विषय को अपूर्ण न रखने वाली ।

(३५) **अखेदित्व**-- श्रवण करने वाले श्रोताजनों को खेद न हो सके ऐसी ।

इस तरह श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवन्त की वाणी के पैंतीस गुण प्रतिपादित किये गये हैं । यह प्रभु का वचनातिशय है ।

चौंतीस अतिशय

श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्माओं के चौंतीस अतिशयों के सम्बन्ध में पूर्वाचार्यों ने कहा है कि---

"चउरो जम्मप्पभिई, इक्कारस कम्मसंखए जाए ।
नवदस य देवजणिए, चउत्तीसं अइसए वन्दे ।।१।।"

जन्म के चार अतिशय, कर्मक्षय से उत्पन्न हुए ग्यारह अतिशय और देवकृत उन्नीस अतिशय होते हैं। उन चौंतीस अतिशय युक्त [ऐसे श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवान को] प्रभु को मैं वन्दन करता हूँ ।।१।।

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्रसूरीश्वरजी म० सा० ने भी इन चौंतीस अतिशयों का निर्देश अपने 'श्रीअभिधान-चिन्तामणि कोश' में क्रमशः इस प्रकार किया है--

"तेषां च देहोऽद्भुतरूपगन्धो,
निरामयः स्वेदमलोज्झितश्च ।
श्वासोऽप्यगन्धोरुधिरामिषं तु,
गोक्षीरधाराधवलं ह्यविस्रम् ।।५७।।
आहारनीहारविधिस्त्वदृश्यः,
चत्वार एतेऽतिशया सहोत्था,
क्षेत्रेस्थितियोजनमात्रकेऽपि,
नृदेवतिर्यग्जनकोटिकोटेः, ।।५८।।

वाणीनृतिर्यक्सुरलोक भाषा,
संवादिनी योजनगामिनी च ।
भामण्डलं चारु च मौलिपृष्टे,
विडम्बिताहर्पतिमण्डलश्रि ।।५९।।

साग्रे च गव्यूतिशतद्वये,
रुजावैरेतयो मार्यति वृष्ठय वृष्ठय ।
दुर्भिक्षमन्यस्वकचक्रतो भयं,
स्यान्नैत एकादश कर्मघातजाः ।।६०।।

खेधर्मचक्रं चमराः सपादपीठं,
मृगेन्द्रासनमुज्ज्वलं च ।
छत्रत्रयं रत्नमयध्वजोऽघ्रि,
न्यासे च चामीकर पङ्कजानि ।।६१।।

वप्रत्रयं चारु चतुर्मुखाङ्कता,
चैत्यद्रुमोऽधोवदनाश्च कण्टकाः ।
द्रुमानतिर्दुन्दुभिनादउच्चकैः,
वातानुकूला शकुनाः प्रदक्षिणाः ।।६२।।

गन्धाम्बुवर्षं बहुवर्ण पुष्प-
वृष्टिः कचश्मश्रुनखाप्रवृद्धिः ।
चतुर्विधामर्त्यनिकायकोटिः,
जघन्य भावादपि पार्श्वदेशे ।।६३।।

ऋतुनामिन्द्रियार्थानामनुकूलत्वमित्यमी ।
एकोनविंशतिर्दिव्याश्चतुस्त्रिंशच्च मीलिताः ।।६४।।

[श्रीअभिधान चिन्तामणिदेवाधिदेव काण्ड]

जन्म के चार अतिशय

(१) श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा का देह लोकोत्तर और अद्भुत रूप वाला, मल और प्रस्वेद से रहित होता है ।

(२) श्वासोच्छ्वास कमलों की सौरभ समान सुगन्धित होता है ।

(३) मांस और रुधिर दोनों गाय के दूध समान श्वेत-उज्ज्वल होते हैं ।

(४) आहार और निहार चर्मचक्षु वाले जीवों [मनुष्यादिक] के लिए अदृश्य होता है, किन्तु अवधि आदि ज्ञान वाले देख सकते हैं ।

ये चार अतिशय तीर्थंकर भगवन्त के जन्म से ही उत्पन्न होते हैं ।

कर्मक्षय के ग्यारह अतिशय

(५) श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवान की एक योजन प्रमाण

समवसरण भूमि में करोड़ों देवों, मनुष्यों और तिर्यंच प्राणियों का समावेश हो जाता है तथा वे परस्पर निःसंकोच होकर सुख से ठहरते हैं ।

(६) श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवान की वाणी अर्धमागधी भाषा में एक योजन प्रमाण समवसरण की भूमि में स्थित देव, मनुष्य तिर्यंच सब प्राणियों को अपनी-अपनी भाषा में समान रूप से सुखपूर्वक सुनाई देती है ।

(७) श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवन्त के मस्तक के पृष्ठ भाग में बारह सूर्यबिम्ब की कान्ति से भी अधिक तेजस्वी और मनोहर प्रतीत होने वाला **भामण्डल** अर्थात् कान्ति के समूह का उद्योत-प्रकाश प्रसारित होता है; जिससे दर्शकगण प्रभु के रूप को सुख-पूर्वक देख सकते हैं, अन्यथा अतिशय तेजस्वीपन होने से प्रभु के सामने देखना अति दुर्लभ हो जाता है ।

(८) श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा जिस-जिस स्थल में विहार करते हैं उस-उस स्थल पर सर्व दिशाओं में पच्चीस-पच्चीस योजन तथा ऊपर-नीचे साढ़े बारह-साढ़े बारह योजन इस तरह पाँचसौ कोस तक पूर्व में होने वाले ज्वरादि रोगों का विनाश

हो जाता है और नए रोगों की उत्पत्ति भी नहीं होती है।

(९) उपर्युक्त कथनानुसार प्रभु की स्थिति से पाँचसौ गाउ तक प्राणियों के पूर्व भव में बाँधे हुए तथा जाति से उत्पन्न हुए वैर परस्पर पीड़ाकारी नहीं होते हैं।

(१०) उपर्युक्त कथनानुसार प्रभु की स्थिति से पाँचसौ कोस तक समस्त **ईतियाँ** (अर्थात् सात प्रकार के उपद्रव) तथा धान्यादिक को विनाश करने वाले जीव- टिड्डी, तोते, चूहे इत्यादि उत्पन्न नहीं होते हैं।

(११) उपर्युक्त भूमि में **महामारी**, दुष्ट देवतादिक के **उत्पात** अर्थात् उपद्रव तथा अकालमृत्यु-**मरण** नहीं होते हैं।

(१२) उपर्युक्त भूमि में **अतिवृष्टि** अर्थात् लगातार-निरन्तर वर्षा नहीं होती है। जिससे धान्य मात्र नष्ट हो जाय ऐसी बरसात नहीं होती है।

(१३) उपर्युक्त भूमि में **अनावृष्टि** अर्थात् जल का सर्वथा अभाव नहीं होता है। जिससे धान्यादिक की उत्पत्ति ही न हो ऐसी अनावृष्टि नहीं होती है।

(१४) उपर्युक्त भूमि में दुर्भिक्ष-दुष्काल नहीं होता है ।

(१५) **स्वचक्रभय** अर्थात् अपने राज्य की सेना (लश्कर) का भय तथा **परचक्रभय** अर्थात् अन्य राज्य के साथ संग्राम आदि होने का भय उत्पन्न नहीं होता है ।

इस तरह कर्मक्षयजन्य ग्यारह अतिशय (क्रम-संख्या पाँच से पन्द्रह तक) समझने चाहिये ।

देवकृत उन्नीस अतिशय

(१६) श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवन्त जिस स्थल पर विचरते हैं उस जगह आकाश में **धर्मचक्र प्रभु** के आगे-आगे चलता रहता है ।

(१७) आकाश में श्वेत **चामर** दोनों तरफ चलते हैं ।

(१८) आकाश में निर्मल स्फटिकमणिरत्नरचित पादपीठ-युक्त **सिंहासन** चलता रहता है ।

(१९) आकाश में प्रभु के मस्तक पर तीन छत्र रहते हैं ।

(२०) आकाश में रत्नमय **धर्मध्वज** भगवान के आगे चलता है । यह धर्मध्वज अति महान् होने से **इन्द्रध्वज** भी कहलाता है ।

धर्मचक्र से धर्मध्वज तक के पाँचों अतिशय जहाँ-जहाँ प्रभु विचरते हैं वहाँ-वहाँ पर आकाश में चलते रहते हैं तथा जहाँ-जहाँ पर प्रभु बिराजमान होते हैं वहाँ-वहाँ पर धर्मचक्र और धर्मध्वज प्रभु के आगे के भाग में रहते हैं, पादपीठ प्रभु के चरणों के नीचे रहता है, सिंहासन पर प्रभु बिराजमान होते हैं, चामर प्रभु के बायीं और दाहिनी तरफ अर्थात् दोनों तरफ ढुलते हैं तथा छत्र प्रभु के मस्तक पर रहते हैं।

(२१) देवता स्वर्ण के नौ कमल बनाते हैं, जिनमें से दो कमलों पर श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा अपने चरण रख कर चलते हैं तथा शेष सात कमल प्रभु के पीछे रहते हैं, जिनमें से दो कमल क्रमशः प्रभु के आगे-आगे रहते हैं।

(२२) देवतागण प्रभु के दिव्य समवसरण में तीन गढ़ निर्मित करते हैं। उनमें से पहला गढ़ (अर्थात् प्राकार) विचित्र प्रकार के रत्नों से वैमानिक देव बनाते हैं, दूसरा गढ़ सुवर्ण से ज्योतिषी देव बनाते हैं और तीसरा गढ़ रूपा (चाँदी) से भुवनपति देव बनाते हैं।

(२३) जिस समय श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा दिव्य समवसरण में सिंहासन पर पूर्व दिशा सन्मुख बिरा-

जते हैं, उस समय अन्य तीन दिशाओं में प्रभु के समान ही रूपवान तीन मूर्तियाँ सिंहासन आदि सहित देव स्थापित करते हैं। जिससे प्रभु का मुख चारों दिशाओं में दिखाई देता है। इससे चारों दिशाओं में बैठे हुए सबको लगता है कि भगवान हमारे सामने बैठ कर ही धर्मदेशना दे रहे हैं।

(२४) जहाँ-जहाँ श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवन्त बिराजते हैं वहाँ उनके देह-मान से बारह गुना ऊँचा अशोक वृक्ष रचा जाता है।

(२५) जहाँ-जहाँ श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा विचरते हैं वहाँ-वहाँ काँटे अधोमुख हो जाते हैं।

(२६) जहाँ-जहाँ श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवान चलते हैं वहाँ-वहाँ वृक्ष नीचे झुकते जाते हैं, मानो वे प्रभु को नमस्कार—प्रणाम करते हों।

(२७) जिस स्थल में श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवन्त विचरते हैं वहाँ आकाश में देवों द्वारा देवदुन्दुभि [वाद्य विशेष] बजती रहती है।

(२८) जहाँ-जहाँ श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा विचरते हैं वहाँ-वहाँ संवर्तक जाति का पवन-वायु एक योजन प्रमाण पृथ्वी को शुद्ध कर [अर्थात् कचरा आदि

दूर कर] सुगन्धित, शीतल तथा मन्द-मन्द और अनुकूल अवस्था में बहता है; जो सब जीवों को सुखदायक होता है।

(२९) जहाँ श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवन्त विचरते हैं वहाँ चास, मयूर और शुक आदि पक्षी प्रभु की प्रदक्षिणा करते हैं।

(३०) जहाँ श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवान विराजते हैं वहाँ धूलिका [धूल] उड़ने से रोकने के लिए मेघकुमार देव घनसारादियुक्त गन्धोदक की (सुगन्धित जल की] वर्षा करते हैं।

(३१) श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा के समवसरण की भूमि में चंपकादि पाँच वर्ण के पुष्पों की जानुप्रमाण (घुटने तक) वृष्टि होती है।

(३२) श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवन्त के मस्तक के केश (बाल), दाढ़ी, मूंछ तथा हाथ और पैर के नखों की वृद्धि नहीं होती है अर्थात् ये सर्वदा एक ही दशा में रहते हैं।

(३३) श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर प्रभु के समीप कम से कम एक करोड़–भवनपति आदि चारों निकाय के देव रहते हैं।

(३४) जिस स्थान में श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा विचरते हैं वहाँ बसन्तादि छहों ऋतुओं के मनोहर पुष्प तथा फलादि का समूह उत्पन्न होता है अर्थात् सब ऋतुएँ भी अनुकूल हो जाती हैं।

इस तरह देवताओं द्वारा किए गए उन्नीस अतिशय समझने चाहिये।

ये [४+११+१९=३४] चौंतीस अतिशय श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा के होते हैं। श्री समवायांग सूत्र की पैंतीसवीं समवाय में भी इन चौंतीस अतिशयों का वर्णन आता है।

श्री अरिहन्त-तीर्थंकर प्रभु की चार महान् उपमाएँ

लोकालोकप्रकाशक केवलज्ञान की प्राप्ति के साथ ही सर्वज्ञ श्री अरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा को अपनी भावनाओं को सम्पूर्णता से आविर्भाव करने के लिये जितने साधन चाहिये वे सभी आकर उनको मिल जाते हैं। उन साधनों द्वारा एक अन्तर्मुहूर्त्त में ही मात्र 'उवन्नेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइ वा' रूप त्रिपदी के अनुपम दान से सम्पूर्ण द्वादशांगी को ही अरिहन्त परमात्मा सर्जन करवा कर और चतुर्विध संघ को स्थापना करके अपने शासन को दिगन्तव्यापी बना सकते हैं।

ऐसे शासन के बल से ही श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा की 'महागोप, महामाहण, महानिर्यामक और महासार्थवाह' रूप चारों महती उपमाएँ जगत्भर में सुप्रसिद्ध हैं –

श्री अरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा

(१) इस विश्व के पशुप्रायः प्राणियों की सुरक्षा के लिये **'महागोप'** (महाग्वाल) के समान हैं ।

(२) संसार में 'मत्स्य-गलागल' न्याय से विनाश पामते हुए जीवों के लिये अहिंसा के अवतार एवं अद्वितीय प्रचारक होने से **'महामाहण'** के समान हैं ।

(३) महा भयंकर और अतिदुस्तर संसार सागर से तारने के लिये **'महानिर्यामक'** के समान हैं ।

(४) भयंकर भवाटवी से पार लगाकर सुखपूर्वक मोक्षनगर में पहुँचाने के लिये **'महासार्थवाह'** के समान हैं ।

ऐसी चार उपमाओं वाले श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा की उपकारिता अति अनुपम और अद्वितीय है ।

श्री अरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा की विशिष्ट गुणमयता

विश्व में श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा की विशिष्ट गुणमयता अनुपम है ।

(१) श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा ने प्रशस्त राग और अप्रशस्त राग दोनों को मिटाया, उन पर विजय प्राप्त की, इसलिए परमात्मा **'रागविजेता'** हैं।

(२) श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा ने प्रशस्त द्वेष और अप्रशस्त द्वेष दोनों को मिटाया अर्थात् उन पर विजय प्राप्त की, इसलिए परमात्मा **'द्वेषविजेता'** हैं।

(३) श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा ने स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, नेत्रेन्द्रिय और श्रवणेन्द्रिय इन पाँचों इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की है; इसलिए परमात्मा **'इन्द्रियविजेता'** हैं।

(४) श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा ने क्षुधातृषादि बावीस परीषहों पर विजय प्राप्त की; इसलिए परमात्मा **'परीषहविजेता'** हैं।

(५) श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा स्वयं पर देवों, मनुष्यों और तिर्यंचों द्वारा किए हुए अनुकूल या प्रतिकूल उपसर्गों-उपद्रवों के होने पर भी मेरु पर्वत के समान निश्चल रहे; इसलिए परमात्मा **'उपसर्ग-विजेता'** हैं।

(६) श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा ने इहलोकादि सप्त

भयों पर विजय प्राप्त की है, इसलिए परमात्मा **'भयविजेता'** हैं।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विशिष्ट गुणमयता प्राप्त करने के लिए श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा का ध्यान तथा जाप आदि अहर्निश अवश्य करना चाहिए।

श्री अरिहन्त पद का प्रथम स्थान क्यों ?

श्रीअरिहन्त परमात्मा ने आठ कर्मों में से महान् चार घाती कर्मों का क्षय किया है और अब चार अघाती कर्मों का क्षय करना बाकी है।

सिद्ध भगवन्त ने तो (चार घाती और चार अघाती) आठों कर्मों का क्षय किया है। इसलिये सिद्धभगवन्त सर्वथा कर्मविमुक्त हैं। अरिहन्त परमात्मा भी **'णमो सिद्धाणं'** कहकर सिद्धभगवन्तों को नमस्कार करते हैं। ऐसा होने पर भी श्रीसिद्धचक्र के नवपद में तथा श्रीनमस्कार महामन्त्र के पंच परमेष्ठी में प्रथम स्थान सिद्धपद को नहीं देकर अरिहन्त पद को क्यों दिया गया है ?

सर्व पदों में श्रीअरिहन्त पद को प्रथम स्थान देने में अनेक हेतु हैं। उसमें मुख्य हेतु श्रीसिद्धपने की प्राप्ति रूप है।

कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद्हेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज ने तो श्रीसिद्धभगवन्तों का श्रीअरिहन्तपद के फलस्वरूप वर्णन किया है। आचार्यपद, उपाध्यायपद और साधुपद ये तीन पद जिनेन्द्रभाषित जिनशासन की रक्तता बिना नहीं हो सकते। अन्तिम सम्यग्दर्शनादि चार पद तो श्रीअरिहन्त तीर्थंकर भगवन्तों का ही शासन है।

सर्वपदों का जन्म-स्थान **श्रीअरिहन्तपद** ही है। उसी के अभाव में नवपद महान् में एक पद का भी सद्भाव संभवता नहीं है। इसलिये अरिहन्त परमात्माओं को नवपद में प्रथम स्थान दिया गया है और श्रीनमस्कार महामन्त्र में भी। विश्व में वस्तु-पदार्थ का चाहे जितना अधिक मूल्य होवे तो भी उसकी जानकारी बिना उस अमूल्य वस्तु-पदार्थ का लाभ नहीं ले सकते। इसलिये वस्तु-पदार्थ जान कर उसकी जानकारी कराने वाला विशेष महत्ता प्राप्त करता है। अरिहन्त परमात्मा से सिद्ध भगवन्त विशेष हैं, इतना ही नहीं उनकी शक्ति और पूजनीयता भी अधिक है। इतना होने पर भी जनपद पर उपकार की दृष्टि से अरिहन्त परमात्मा का स्थान ऊँचा है। सिद्धभगवन्तों की पहिचान कराने वाले भी विश्व में अरिहन्त परमात्मा ही हैं।

ऐसे अनेक कारणों से श्रीअरिहन्त परमात्मा प्रथम पूजनीय हैं। इसलिये उन्हींको प्रथम पद पर स्थापित किया है।

अर्थात् श्रीअरिहन्तदेव प्रथमपदे सुस्थित हैं। जैनेतरों में भी कहा जाता है कि –

गुरु गोविन्द दोनूं खड़े, किस के लागूँ पाय ।
बलिहारी गुरुदेव की, (जिन) गोविन्द दियो बताय ।।

इस व्यापक वचन की यहाँ रूपान्तर से चरितार्थता होती है।

श्रीअरिहन्त पद की आराधना शुक्लवर्ण से क्यों ?

श्रीसिद्धचक्र के नवपद हैं। उनमें अरिहन्त पद पहला है। उसकी आराधना शुक्ल–श्वेत–उज्ज्वल वर्ण से क्यों होती है ?

कारण यह है कि उसमें भिन्न-भिन्न दृष्टिबिन्दुओं से विचारणा करते हुए अनेक विशिष्ट हेतु समाये हैं। उन भिन्न-भिन्न दृष्टिबिन्दुओं द्वारा कितनेक हेतु इस प्रकार के हैं –

(१) जिस तरह नवपद में अरिहन्तपद पहला ही है उस भाँति वर्णों में भी शुक्लवर्ण पहला ही है। इसलिये प्रथम अरिहन्त पद की आराधना प्रथम शुक्लवर्ण से ही होती है। यह स्वाभाविक विचारणा युक्तिसंगत है।

(२) नवपद में महत्त्वपूर्ण प्रथम अरिहन्तपद है। 'अरि' का अर्थ है शत्रु और 'हन्त' का अर्थ है हणनार। शत्रु दो प्रकार के हैं। बाह्य और अभ्यन्तर। उसमें से जिसने अभ्यन्तर शत्रुओं का विनाश किया है वह 'अरिहन्त' कहलाता है। इस पद की आराधना करते हुए आराधक को अपनी आत्मा के अन्तर-शत्रुओं का विनाश करने के लिये विशेष प्रयत्न करने होते हैं। केवल बाह्य शत्रुओं को जीतने में बहादुरी नहीं है किन्तु अभ्यन्तर शत्रुओं का विनाश कर विजय प्राप्त करने में बहादुरी है।

इसलिए अरिहन्त पद की आराधना करने वाले आराधक को मोहशत्रु के सामने युद्ध का प्रतिकार करना पड़ता है।

युद्ध के मैदान में आये हुए नायक दो पद्धति के होते है। एक वीर रस प्रधान वाले और दूसरे रौद्र रस प्रधान वाले।

उसमें वीर रस प्रधान वाले नायक बहुत उकसाने पर भी शान्त रहते हैं, इतना ही नहीं, उनके वदन-मुख पर क्रोध की लालास तक नहीं आती। उनके नयन और बदन पर ओजस्विता जगमगाती है और उनमें सत्य विशेष रूप में काम करता है।

रौद्ररस प्रधान वाले नायक आवेश में आकर युद्ध में लड़ते-लड़ते लालचोल बन जाते हैं। शत्रु को मारने के लिये अति धमपछाड़ा करते हैं। कारण कि उनमें क्रोध मुख्य रूप में भाव भजवता है।

इन दोनों में से श्री अरिहन्त-तीर्थंकर भगवन्त रौद्ररस प्रधान नहीं केवल वीररस प्रधान नायक हैं। उन्हीं में सत्त्व विशेष रूप में काम करता है।

सत्त्व-वीर्य और ओजस का वर्ण श्वेत है।

श्री अरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा का भी शुक्ल-श्वेत-उज्ज्वल वर्ण है। आगमादिक शास्त्रों में उन्हीं की आराधना श्वेत वर्ण से करने की कही है।

(३) शुक्लध्यान के चार पाये हैं। उनमें से श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवन्तों ने दो पायों का ध्यान किया है और दो पायों का ध्यान बाकी है। अर्थात् श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवन्त शुक्लध्यान के मध्य में रहे हैं। इस स्थिति का पूर्णरूप में ध्यान आराधक व्यक्तियों को अरिहन्त पद की श्वेत-उज्ज्वल वर्ण की आराधना से आता है। इसलिये श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवन्तों का श्वेत-उज्ज्वल वर्ण कहा गया है।

(४) जहाँ ध्यान की भूमिका का वर्णन किया है, वहाँ

भिन्न फल के लिये भिन्न-भिन्न वर्णों की व्यवस्थित व्यवस्था प्रतिपादित की है। उसमें शान्ति के लिये श्वेत-उज्ज्वल वर्ण निश्चित किया है।

इसलिये शान्त-प्रशान्त होने का इच्छुक आराधक उस फल की प्राप्ति के लिये अभी ध्यान-आराधना श्वेत वर्ण करता है और भविष्य में भी श्वेत वर्ण से ही अरिहन्तपद की आराधना करेगा।

(५) साकार श्री अरिहन्त-तीर्थंकर भगवन्तों के देह का मांस और रुधिर गाय के दूध सदृश श्वेत-उज्ज्वल है। यह निमित्त पाकर भी उनकी आराधना श्वेत-वर्ण से ही करनी योग्य है।

श्रीअरिहन्तपद का आराधन

विश्व में कार्यसाधक तीन वस्तुओं की विशेषता मान्य है। मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र। मन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ श्रीनमस्कार महामन्त्र है; तन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ विशुद्ध सामायिक है और यन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ श्रीसिद्धचक्र यन्त्र है। इन तीनों की उत्तम आराधना जिसके जीवन में हो जाय वह आराधक आत्मा संसार-सागर से पार उतरती है।

महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिए मनुष्य में आध्यात्मिक शक्ति चाहिए। आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने के लिए

अनन्त शक्ति के कोष श्रीअरिहन्तादि पंच परमेष्ठियों के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करना अति अनिवार्य है। पंच परमेष्ठियों में प्रथम स्थान श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा का है। श्रीअरिहन्त पद का आराधन विधिपूर्वक करना चाहिए जिससे आराधक श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवन्तों के बारह गुण प्राप्त कर सके।

श्रीअरिहन्तपद का आराधन–जिनमूर्त्ति की विशुद्ध आशय से द्रव्य-भावपूर्वक भक्ति करनी, जिनाज्ञा का पालन करना तथा श्रीजिनेश्वरदेव के कल्याणकों के दिनों में विशेष प्रकार से भक्ति करनी। इस भाँति अरिहन्तपद की आराधना होती है।

अरिहन्तपद की आराधना का ध्येय

श्वेत वर्ण से श्रीअरिहन्तपद की आराधना करने वाली आत्मा कर्म के महान् सुभट मोहशत्रु का विनाश करने के लिए समर्थ, वीर, बहादुर बने और स्वयं अरिहन्त परमात्मा की स्थिति प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त करे, यही इस आराधना का ध्येय है।

श्रीअरिहन्तपद की आराधना के दृष्टान्त

अरिहन्तपद की आराधना से ही देवपाल राजा राज्य के स्वामी हुए हैं और कार्त्तिक श्रेष्ठी इन्द्र बने हैं।

अरिहन्तपद की भावना

हे अरिहन्त परमात्मन् ! आप तीन लोक के नाथ हो, विश्ववन्द्य और विश्वविभु हो, विश्व का कल्याण करने वाले हो, देव-देवेन्द्रों से पूजित हो, दुस्तर संसार-सागर से तारने के लिए महानिर्यामक हो, भयंकर भवाटवी से पार करा कर मुक्तिपुरी में पहुँचाने के लिए महासार्थवाह हो, सारे जगत् में अहिंसा के परम प्रचारक होने से महामाहण हो, विश्व के पशुप्रायः प्राणियों की रक्षा करने के लिए महागोप हो, स्वयं सम्बुद्ध हो, पुरुषोत्तम हो, लोकोत्तम हो, सिंह के समान निर्भय हो, उत्तम श्वेतकमल के समान निर्लेप हो, गन्धहस्ति के समान प्रभावशाली हो, लोक के हितकारी हो, लोक में दीपक समान प्रकाश करने वाले हो, अभय देने वाले हो, श्रद्धारूपी नेत्रों का दान करने वाले हो, सन्मार्ग दिखाने वाले हो, शरण देने वाले हो, बोधिबीज का लाभ कराने वाले हो, धर्म को समझाने वाले हो, धर्मदेशना का श्रवण कराने वाले हो, धर्म के सच्चे स्वामी हो, धर्मरूपी रथ को चलाने में श्रेष्ठ सारथी हो, धर्मचक्र का प्रवर्तन करने वाले चक्रवर्ती हो, लोकालोक-प्रकाशक केवलज्ञान और केवलदर्शन के धारक हो, छद्मस्थ-पने से रहित हो स्वयं जिन बने हो और अन्य को जिन बनाने वाले हो, स्वयं संसार-सागर से पार हुए हो और दूसरों को भी संसार-सागर से पार करने वाले हो, स्वयं

बोध पाये हो और अन्य को भी बोध प्रकटाने वाले हो, स्वयं मुक्त बने हो और दूसरों को भी मुक्ति दिलाने वाले हो, सर्वज्ञ हो और सर्वदर्शी भी हो, वीतराग हो, देवाधिदेव हो और तीर्थंकर भगवन्त भी हो। मोक्षनगर में जाने वाले, वहाँ सादि अनन्त स्थिति में सर्वदा रहने वाले और शाश्वत अनन्त सुख प्राप्त करने वाले आप ही हो। बारह गुणों से समलंकृत भी आप ही हो। आपश्री ने चतुर्विध श्रमण संघरूपी तीर्थ की स्थापना की है। समस्त विश्व के जीवों पर आपका अनन्त उपकार है। हे प्रभो! हम पर भी आपका असीम उपकार है।

जो भवसिन्धु से स्वयं तरे हैं और जिन्होंने दूसरे को तारने के लिए अनुपम मार्ग का प्रकाशन किया है, ऐसे भवसिन्धुतारक श्रीअरिहन्तदेव श्रीनवपद में प्रथमपदे पूज्य हैं।

ऐसे श्रीअरिहन्त परमात्मा को हमारा अहर्निश नमस्कार हो।

[२] श्रीसिद्धपद

卐 नमो सिद्धाणं 卐

अनन्तं केवलज्ञानं, ज्ञानावरणसंक्षयात्।
अनन्तं दर्शनं चापि, दर्शनावरणक्षयात्॥ १॥
क्षायिके शुद्धसम्यक्त्व-चारित्रे मोहनिग्रहात्।
अनन्ते सुखवीर्ये च, वेद्याविघ्नक्षयात् क्रमात्॥ २॥

आयुषः क्षीणभावत्वात्, सिद्धानामक्षया स्थितिः ।
नाम-गोत्रक्षयादेवाऽ मूर्त्तानन्तावगाहना ।। ३ ।।

सिद्धाणमाणंदरमालयाणं,
नमो नमोऽणंतचउक्कयाणं ।
समग्गकम्मरुक्खयकारगाणं,
जम्मजरादुक्खनिवारगाणं ।। ४ ।।

दुट्ठट्ठकम्मावरणप्पमुक्के,
अनंतनाणाइसिरिचउक्के ।
समग्गलोगग्गपयप्पसिद्धे,
झाएह निच्चंपि समग्गसिद्धे ।। ५ ।।

श्रीसिद्धपद की पहिचान

अनादिकाल से आत्मा के साथ लगे हुए समस्त कर्मों से रहित होकर सर्वथा कृतकृत्य और सिद्धरूप बने हुए, सिद्ध आत्माओं के रहने का जो स्थान, उसी को **सिद्धपद** कहा जाता है। श्रीअरिहन्तपदरूप बीज का फल यही **श्रीसिद्धपद** है। इनका स्मरण भी आत्मा को अनन्त सुख में निमग्न करने वाला है।

आत्मा अरिहन्तरूप में या सामान्य केवलीरूप में तेरहवें गुणस्थान के समुद्घात बिना या समुद्घातपूर्वक

शैलेशीकरण द्वारा प्रथम आयुष्यकर्म समाप्त करने के पूर्व समय में अर्थात् द्विचरम समय में कर्म की ७२ प्रकृतियों का क्षय करता है और अन्तिम समय में १३ कर्म-प्रकृतियों का क्षय करता है। अनन्तर पाँच ह्रस्वाक्षर काल प्रमाण चौदहवें अयोगी गुणस्थानक का स्पर्श करके कर्मविमुक्त अग्नितप्त सुवर्ण के समान शुद्ध बन कर मोक्ष को प्राप्त करता है। इधर से सदा के लिए अपने देह का सर्वथा त्याग करके एक ही समय में मोक्ष में स्थिर हो जाता है।

श्रीसिद्धपद में प्रतिष्ठित हुए आत्मा की अवगाहना, चरमावस्था में जो अवगाहना होती है उससे तीसरे भाग न्यून होती है, अर्थात् त्याग करते हुए देह में जिस तरह आत्मा रहा है उससे १/३ न्यून अर्थात् २/३ भाग अवगाहना से मोक्ष में शाश्वत रूप में लोकाग्र को स्पर्श करके सर्वदा रहता है।

सकल कर्म का सर्वथा क्षय होने के पश्चात् अर्थात् कर्मविमुक्त आत्मा लोक के अन्त भाग पर्यन्त ऊपर को जाता है। उसकी एक समय की क्रिया धनुष में से छूटे हुए बाण की भाँति पूर्वप्रयोग से, तूम्बे की भाँति असंगपने से, एरण्ड वृक्ष के बीज की भाँति बन्धन के छेद से तथा अग्निशिखा की भाँति ऊर्ध्व स्वभाव से हो सकती है। जैसे–

(१) एक व्यक्ति ने अपने लक्ष्य की ओर बाण पहुँचाने के लिए हाथ में धनुष लेकर बाण छोड़ा। पूर्वप्रयोग से जहाँ लक्ष्य था वहीं यह बाण पहुँच जाता है। इसी तरह कर्मरहित आत्मा भी एक समय में मोक्षस्थान में पहुँच जाता है।

(२) जिस प्रकार कुम्भकार अपने चाक को लकड़ी के डण्डे से घुमा कर छोड़ देता है तब भी वह चाक पहले के भरे हुए वेग के वश से घूमता रहता है, उसी प्रकार जीव भी संसार अवस्था में मोक्षप्राप्ति के लिए बराबर अभ्यास करता था, मुक्त होने पर यद्यपि उसका यह अभ्यास छूट जाता है तथापि वह पहले के अभ्यास से ऊपर को गमन करता है।

(३) मुक्त जीव लेपरहित तूम्बे की भाँति ऊपर को जाता है। तूम्बे पर जब तक मिट्टी का लेप रहता है तब तक वह वजनदार होने से पानी में डूबा रहता है पर ज्योंही उसकी मिट्टी गल कर दूर हो जाती है त्योंही वह पानी के ऊपर आ जाता है। इसी प्रकार यह जीव जब तक कर्मलेप सहित होता है तब तक संसार-समुद्र में डूबा रहता है पर ज्योंही इसका कर्मलेप दूर होता है त्योंही यह ऊपर उठ कर लोक-शिखर पर पहुँच जाता है।

(४) मुक्त जीव कर्मबन्ध से मुक्त होने के कारण एरण्ड के बीज के समान ऊपर को जाता है अर्थात् एरण्ड का सूखा बीज जब चटकता है तब उसकी मिंगी जिस प्रकार ऊपर को जाती है उसी प्रकार यह जीव कर्मों के बन्धन दूर होने पर ऊपर को जाता है।

(५) मुक्त जीव स्वभाव से ही अग्नि की शिखा की तरह ऊर्ध्वगमन करता है। अर्थात् जिस प्रकार हवा के अभाव में अग्नि (दीपक आदि) की शिखा ऊपर को जाती है उसी प्रकार कर्मों के बिना यह जीव भी ऊपर को जाता है और वहाँ सादि अनन्त स्थिति में सदा रहता है।

लोक के अन्त में पैंतालीस लाख योजन विस्तार वाली और शुद्ध स्फटिक के समान स्वच्छ अर्जुन-सुवर्णमयी-सिद्ध-शिला है। वहाँ से एक योजन लोकान्त है। समस्त कर्म से निर्मुक्त ऐसे श्रीसिद्धात्मा यहीं श्रीसिद्धशिला पर लोक के अन्त में एक योजन के चौबीसवें भाग में अवस्थितपने रहने वाले होते हैं।

इतने स्थान में सभी सिद्धात्मायें लोकाग्र को स्पर्श करके जिस तरह रहा जाता है उसी तरह अपने चरम शरीर की जितनी अवगाहना है उससे तीसरे भाग न्यून

अवगाहना में रहते हैं। वहाँ से पुनः अब उन्हें संसार में आने का नहीं और जन्म लेने का नहीं।

इस प्रकार शरीर-रहित अवस्था में अबाधापने अनन्त-काल पर्यंत रहने वाले अनन्त जीव भूतकाल में इधर आए हैं, वर्त्तमानकाल में संख्याबद्ध आते हैं और भविष्यत्काल में अनन्त आयेंगे। श्रीसिद्धपद को प्राप्त, अक्षय सुख में स्थिर रहे हुए सिद्धात्मा क्रमशः एक समय के केवलज्ञान और केवलदर्शन के उपयोग में सर्वदा प्रवर्त्तमान हैं अर्थात् समयान्तर केवलज्ञान और केवलदर्शन के उपयोग को अनुभवते हैं। आत्मगुणों की अपेक्षा वे सिद्धात्मा अनन्तगुणी कहलाते हैं और वैभाविक गुणों की अपेक्षा वे सिद्धात्मा निर्गुणी अर्थात् गुणरहित कहलाते हैं।

आत्मसम्बद्ध अष्टकर्म के क्षय से उत्पन्न हुए अनन्त-ज्ञानादि आठ गुणों की अपेक्षा से श्रीसिद्धभगवन्त आठ गुणों के स्वामी कहलाते हैं तथा अष्ट कर्मों के क्रमशः 'पाँच, नव, दो, दो, चार, दो, दो और पाँच' इन उत्तर-भेदों के सर्वथा क्षय की अपेक्षा ये सिद्धभगवान इकतीस गुणों के स्वामी भी कहलाते हैं।

अष्ट कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुए अनन्तज्ञानादि अष्ट गुणों से समलंकृत ऐसे श्रीसिद्धभगवन्तों की पहचान-जान-कारी सर्वज्ञ श्रीअरिहन्तदेवों को है तथापि वे भी उनका

सम्पूर्ण वर्णन नहीं कर सकते हैं; ऐसा अद्भुत और अगोचर श्रीसिद्धभगवन्त का स्वरूप है। जैसे– जंगल में निवास करने वाला भील नगर का स्वरूप जानने पर भी उसके गुणों का वर्णन करने में समर्थ नहीं हो सकता है, वैसे ही सिद्धपद में विराजित श्रीसिद्धपद भगवन्तों के गुणों को यथास्थितपने और सम्पूर्णपने जानने पर भी श्रीअरिहन्त-केवलज्ञानी उनका सम्पूर्ण वर्णन करने में समर्थ नहीं होते हैं।

संसार के समस्त सुख को अनन्त वर्ग करके प्राप्त हुई सुखराशि से भी यदि श्रीसिद्धभगवन्त के एक प्रदेश के सुख की तुलना करें तो भी वह समान नहीं ठहरती है। श्रीसिद्धभगवन्त के सुख का एक अंश भी लोकाकाश में न समा सके इतना श्रीसिद्धभगवन्त को **सुख** है।

अनन्त गुणों के धारक श्रीसिद्धभगवन्त अनन्त, अनुत्तर, अनुपम, शाश्वत और सदा स्थायी आनन्द को देने वाले मोक्ष के शाश्वत सुख के भोक्ता हैं तथा अनन्तज्ञानी श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर देवों द्वारा बताये हुए मोक्षमार्ग में आसन्नभव्यात्माओं को प्रयाण करने की उत्तम प्रेरणा देने वाले महान् उपकारी हैं। ऐसे श्रीसिद्धभगवन्त कल्याणकामी आत्माओं द्वारा अवश्यमेव आराधनीय हैं।

'सिद्ध' शब्द की व्युत्पत्ति और उसका अर्थ

व्याकरण के नियमानुसार 'षिधु गत्याम्', 'षिधु संराद्धौ' इत्यादि धातु से षकार का सकार हुआ और 'क्त' प्रत्यय आने पर सिध्+क्त बना। 'क्' इत् संज्ञा तथा क् का लोप होने पर सिध्+त् रहा। 'त्' का 'ध्' और सिध् के ध् का द् तथा सब को मिलाने पर 'सिद्ध' ऐसा रूप बनता है। कहा है कि—

ध्मातं सितं येन पुराणकर्म,
यो वा गतो निर्वृत्ति सौधमूर्ध्नि।
ख्यातोनुशास्ता परिनिष्ठितार्थो,
यः सोऽस्तु सिद्धः कृतमंगलं मे॥

जो अनेक भवों के परिभ्रमण से बाँधे हुए पुराने कर्मों को भस्मीभूत कर चुके हैं अथवा जो मुक्ति रूपी महल के उच्च विभाग पर जा चुके हैं, या जो प्रख्यात हैं, शास्ता हैं, कृतकृत्य हैं वे सिद्ध मेरे लिये मङ्गल करने वाले हों।

जिन्होंने अनादिकालीन संसार के भ्रमण-मूलक निखिल कर्मों का सर्वथा सर्वविनाश कर दिया है, जो मोक्ष के स्थान में पहुंच गये हैं, अब जिनको संसार में आने का, पुनर्जन्म लेने का और पुनः मोक्ष में जाने का प्रयोजन नहीं रहा है उन्हें ही **'सिद्ध'** कहा जाता है।

सिद्ध का अर्थ है परिपूर्ण। जो संसार के सब प्रकार के सुखों और दुःखों से, विभावदशा और परपरिणति से तथा राग-द्वेषादिक रिपुओं से मुक्त होकर, स्वभाव दशा और स्वपरिणति को प्राप्त होते हैं, वे सिद्ध, बुद्ध, निरंजन-निराकार कहलाते हैं और ज्योतिस्वरूप भी कहलाते हैं।

सिद्धभगवन्त के आठ गुण

श्रीसिद्धभगवन्त ज्ञानावरणीयादि चार घनघाति और चार अघनघाति कर्मों का सर्वथा क्षय कर के सम्पूर्ण-रूपेण आठ गुणों से समलंकृत सिद्धात्मा-मुक्तात्मा हैं। क्रमशः उनके आठ गुण इस प्रकार हैं-

नाणं च दंसणं चिय, अव्वाबाहं तहेव सम्मत्तं।
अक्खय ठिइ अरुवी, अगुरुलहुपीरियं हवइ॥

(१) अनन्तज्ञान, (२) अनन्तदर्शन, (३) अव्याबाध सुख, (४) अनन्त चारित्र, (५) अक्षयस्थिति, (६) अरुपित्व, (७) अगुरुलघु और (८) अनन्तवीर्य, ये उक्त आठ गुण सिद्धभगवन्तों के हैं।

(१) अनन्तज्ञान-

ज्ञानावरणीय कर्म का सर्वथा क्षय होने पर आत्मा को यह **अनन्तज्ञान** अर्थात् **केवलज्ञान गुण** प्राप्त होता है। जिससे वह लोकालोक के स्वरूप को समस्त प्रकार से जान

सकता है । इस ज्ञान को अप्रतिपाति (सर्वदा रहने वाला) ज्ञान भी कहा जाता है ।

(२) **अनन्तदर्शन–**

दर्शनावरणीय कर्म का सर्वथा क्षय होने पर आत्मा को यह **अनन्तदर्शन** अर्थात् **केवलदर्शन गुण** प्राप्त होता है। इससे वह लोकालोक के स्वरूप को समस्त प्रकार से देख सकता है ।

(३) **अव्याबाध सुख–**

वेदनीय कर्म का सर्वथा क्षय होने पर आत्मा को यह **अव्याबाध सुख** अर्थात् सर्व प्रकार की पीड़ा रहित-निरुपाधिकपना प्राप्त होता है ।

(४) **अनन्त चारित्र–**

मोहनीय कर्म का क्षय होने पर आत्मा को यह **अनन्त चारित्र** गुण प्राप्त होता है। इसमें क्षायिक सम्यक्त्व और यथाख्यात चारित्र का समावेश होता है। इसलिए श्रीसिद्ध-भगवन्त स्वस्वभाव में सर्वदा अवस्थित रहते हैं, वहाँ पर यही चारित्र है । उसको अनन्त चारित्र कहते हैं ।

(५) **अक्षय स्थिति–**

आयुष्य कर्म का क्षय होने पर आत्मा का विनाश नहीं होवे ऐसी यह अनन्त स्थिति-अक्षयस्थिति प्राप्त होती है ।

अर्थात् सिद्धात्माओं का जन्म और मरण नहीं होने से वे सर्वदा स्वस्थिति में ही रहते हैं। इसलिए वह स्थिति **अक्षयस्थिति** कहलाती है, जो गुण रूप में है।

सिद्ध स्थिति की आदि तो है, किन्तु अन्त नहीं है। उसे सादि अनन्त स्थिति कहते हैं।

(६) अरूपित्व (अमूर्तपना)–

नामकर्म का क्षय होने पर आत्मा को यह **अरूपित्व (अरूपीपणा) गुण** प्राप्त होता है।

अरूपित्व अतीन्द्रिय है अर्थात् इन्द्रियाँ जिसे ग्रहण करने में असमर्थ रहती हैं, ऐसी अग्राह्य वस्तु को अरूपी कहते हैं।

श्रीसिद्धभगवन्त के शरीर नहीं होने से वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श भी नहीं हैं, इसलिए अरूपीपना प्राप्त होता है।

(७) अगुरुलघुत्व–

गोत्र कर्म का क्षय होने पर आत्मा **अगुरुलघुत्व** गुण प्राप्त करता है जिससे आत्मा में न गुरुत्व रहता है और न लघुत्व तथा ऊँच-नीचपने का व्यवहार भी नहीं रहता है। इसलिए उसे अगुरुलघु भी कहते हैं।

(८) अनन्तवीर्य–

अन्तराय कर्म का क्षय होने पर आत्मा को अनन्त-वीर्य (अनन्तदान, अनन्तलाभ, अनन्तभोग, अनन्तउपभोग तथा अनन्तवीर्य) गुण प्राप्त होता है।

समस्त लोक को अलोक करना हो या अलोक को लोक करना हो ऐसी शक्ति स्वाभाविक रूप से सिद्ध परमात्मा में विद्यमान होने पर भी कभी उन्होंने अपने वीर्य-शक्ति का उपयोग किया नहीं है और करने वाले भी नहीं, कारण कि– पुद्गल के साथ होने वाली प्रवृत्ति इनका धर्म नहीं है। ये तो इस गुण से अपने आत्मिक गुणों को जिस तरह से हैं उसी तरह से धारित रखते हैं, फेरफार नहीं होने देते।

इस तरह सिद्धभगवन्त आठों गुणों से युक्त हैं।

सिद्धभगवन्तों के इकतीस गुण

'इगतीसाए सिद्धाइगुणेहिं'-- सिद्धभगवन्तों के इकतीस गुण हैं। वे इस प्रकार हैं— संस्थान ५, वर्ण ५, गन्ध २, रस ५, स्पर्श ८ और वेद ३, इनका सर्वथा अभाव होने से २८ गुण, कायरहितपना २९, संगरहितपना ३० और जन्मरहितपना ३१। अर्थात् **मोक्ष में विद्यमान सिद्धभगवन्त**

(१) चौरस संस्थान रहित हैं।

(२) त्रिकोण संस्थान रहित हैं।

(३) लम्बगोल संस्थान रहित हैं।

(४) थाली की भाँति गोल संस्थान से रहित हैं।

(५) बंगड़ी की भाँति गोल संस्थान से रहित हैं।

(६) श्वेतवर्ण से रहित हैं।

(७) रक्तवर्ण से रहित हैं।

(८) पीतवर्ण से रहित हैं।

(९) नीलवर्ण से रहित हैं।

(१०) कृष्णवर्ण से रहित हैं।

(११) सुगन्ध रहित हैं।

(१२) दुर्गंध रहित हैं।

(१३) तिक्तरस रहित हैं।

(१४) कटुरस रहित हैं।

(१५) कषायरस रहित हैं।

(१६) आम्लरस रहित हैं।

(१७) मधुररस रहित हैं।

(१८) शीतस्पर्श रहित हैं।

(१९) उष्णस्पर्श रहित हैं।

(२०) रूक्षस्पर्श रहित हैं।

(२१) स्निग्धस्पर्श रहित हैं।
(२२) गुरुस्पर्श रहित हैं।
(२३) लघुस्पर्श रहित हैं।
२४) कर्कशस्पर्श रहित हैं।
२५) मृदुस्पर्श रहित हैं।
२६) पुरुषवेद रहित हैं।
२७) स्त्रीवेद रहित हैं।
२८) नपुंसकवेद रहित हैं।
२९) शरीर रहित हैं।
३०) संग रहित हैं।
३१) जन्म रहित हैं।

ये इकतीस गुण सिद्धभगवन्तों के हैं। दूसरे प्रकार से भी इकतीस गुण इस तरह हैं–

(१) ज्ञानावरणीय	–	५
(२) दर्शनावरणीय	–	९
(३) वेदनीय	–	२
(४) दर्शनमोहनीय	–	१
(५) चारित्रमोहनीय	–	१
(६) शुभनाम	–	१
(७) अशुभनाम	–	१
(८) उच्चगोत्र	–	१

(९) नीचगोत्र	–	१
(१०) अन्तराय	–	५
(११) आयुष्यकर्म	–	४
		३१

इन आठ कर्मों को ३१ प्रकृतियों के क्षय होने से सिद्धभगवन्तों के ३१ गुण भी जानना।

सिद्धभगवन्तों के नाम

मोक्ष में विद्यमान सिद्धभगवन्तों के अनेक नाम हैं। कहा भी है कि–

सिद्ध त्ति य बुद्ध त्ति य,
पारगय त्ति य परम्परागयत्ति।
उम्मुक्क कम्मकवया,
अजरा अमरा असंगा य॥

[आवश्यक निर्युक्ति गाथा–६८७]

अर्थ– सिद्ध, बुद्ध, पारगत, परम्परागत, कर्मवचोन्मुक्त, अजर, अमर और असङ्ग ये नाम सिद्धभगवन्तों के हैं।

सिद्धों के भेद

सिद्धों के पन्द्रह भेद हैं। वादिवेताल आचार्य श्री

शान्तिसूरीश्वरजी महाराज ने **जीवविचार प्रकरण** में कहा है कि --

सिद्धा पनरस-भेया,
तित्था-ऽतित्था-ऽऽइ-सिद्ध-भेएणं ।
एए संखेवेणं,
जीव-विगप्पा समक्खाया ।। २५ ।।

अर्थ– तीर्थ, अतीर्थ इत्यादि भेदों की अपेक्षा सिद्ध पन्द्रह प्रकार के हैं। जीवों के ये भेद संक्षेप में स्पष्ट समझाये हैं। **नवतत्त्वप्रकरण** में भी श्रीसिद्धभगवन्त के पन्द्रह नाम तथा उनके उदाहरण के नाम भी प्रतिपादित किये हैं --

जिण अजिण तित्थऽतित्था,
गिहि अन्न सलिंग थी नर नपुंसा ।
पत्तेय सयंबुद्धा,
बुद्धबोहिय इक्क-णिक्का य ।। ५५ ।।

अर्थ-- (१) जिनसिद्ध, (२) अजिनसिद्ध, (३) तीर्थसिद्ध, (४) अतीर्थसिद्ध, (५) गृहस्थलिंगसिद्ध, (६) अन्यलिंगसिद्ध, (७) स्वलिंगसिद्ध, (८) स्त्रीलिंगसिद्ध, (९) पुरुषलिंग सिद्ध, (१०) नपुंसकलिंग सिद्ध, (११) प्रत्येकबुद्ध सिद्ध, (१२) स्वयंबुद्ध सिद्ध, (१३) बुद्धबोधित सिद्ध, (१४) एक सिद्ध, और (१५) अनेक सिद्ध ।

अब क्रमशः उदाहरण युक्त नाम कहते हैं--

जिणसिद्धा अरिहन्ता,
अजिणसिद्धा य पुंडरिआ पमुहा ।
गणहारि तित्थ सिद्धा,
अतित्थ सिद्धा य मरुदेवा ।। ५६ ।।

गिहिलिंग सिद्ध भरहो,
वक्कलचीरी य अन्नलिंगम्मि ।
साहु सलिंग सिद्धा,
थी सिद्धा चंदणा पमुहा ।। ५७ ।।

पुंसिद्धा गोयमाइ,
गांगेयाइ नपुंसया सिद्धा ।
पत्तेय सयंबुद्धा,
भणिया करकंडु कविलाइ ।। ५८ ।।

तह बुद्धबोहि गुरुबोहिया य,
इगसमये इग सिद्धा य ।
इग समयेऽवि अणेगा,
सिद्धा तेऽणेग-सिद्धा य ।। ५९ ।।

अर्थ–

(१) **जिनसिद्ध**-- वह अरिहन्त आदि है ।
(२) **अजिनसिद्ध**-- वह पुंडरीक स्वामी आदि है ।
(३) **तीर्थसिद्ध**-- वे सामान्य केवली ऐसे गणधर हैं ।

(४) **अतीर्थसिद्ध**-- वह मरुदेवी माता आदि है ।
(५) **गृहस्थलिंगसिद्ध**-- वह भरतचक्रवर्त्ती आदि है ।
(६) **अन्यलिंगसिद्ध**-- वह वक्कलचीरी आदि है ।
(७) **स्वलिंगसिद्ध**-- वह साधुवेश में सिद्ध है ।
(८) **स्त्रीलिंगसिद्ध**-- वह चन्दनबाला आदि है ।
(९) **पुरुषलिंगसिद्ध**-- वह गौतमस्वामी आदि है ।
(१०) **नपुंसकलिङ्गसिद्ध**-- वह गांगेय आदि है ।
(११) **प्रत्येकबुद्धसिद्ध**-- वह करकण्डु आदि है ।
(१२) **स्वयंबुद्धसिद्ध**-- वह कपिल आदि है ।
(१३) **बुद्धबोधितसिद्ध**-- वे जो गुरु से बोध पाकर सिद्ध हुए हैं ।
(१४) **एकसिद्ध**-- एक समय में एक ही आत्मा मोक्ष में जाती है । जैसे- प्रभु महावीर ।
(१५) **अनेकसिद्ध**-- एक समय में अनेक आत्माएँ मोक्ष में जाती हैं । जैसे-- श्रीऋषभदेव भगवान के साथ १०८ सिद्ध हुए हैं ।

इस तरह सिद्ध भगवन्तों के पन्द्रह भेद होते हैं ।

श्रीसिद्धपद का वर्ण लाल क्यों ?

श्रीसिद्धपद की आराधना लालवर्ण से होती है, इसलिए उनका लालवर्ण कहा है ।

(१) विश्व भर में सम्पूर्ण सुखी केवल **श्रीसिद्धभगवन्त** ही हैं। जैसे व्यवहार में कहा जाता है कि जिनके

देह और वदन पर लालिमा तखरती हो उनको सुखो कहते हैं। सभी वर्णों में लालवर्ण सुख का चिह्न है। इससे ख्याल आ जाता है कि वह सुखी है। **'सम्पूर्ण सुखी सिद्धभगवन्त ही हैं।'** अन्य कोई नहीं। लालवर्ण सुख का ख्याल दिखलाता है। वह ख्याल श्रीसिद्धभगवन्तों के बारे में भी आ जाना चाहिए। इसलिए उनकी आराधना लालवर्ण से है।

(२) श्रीसिद्धभगवन्तों ने अग्नि जैसे लालचोल बन कर कर्मरूपी काष्ठ को भस्म किया है। यह भान कराने वाला लालवर्ण है, इसलिए श्रीसिद्धभगवन्त को लालवर्ण कहा है।

(३) रतिरक्त का सूचक वर्ण लाल कहा है। रक्त का अर्थ लाल भी होता है। मुक्तिरूपी वधू के साथ रक्त बन कर सतत रमण करते हुए श्रीसिद्धभगवन्त रक्त यानी लाल हो हैं।

(४) मन्त्रशास्त्र में भिन्न-भिन्न कार्यों को सफल-सिद्ध करने के लिए भिन्न-भिन्न वर्ण बताये हैं। उनमें किसी को वशीकरण करना हो तो वह काम लाल-वर्ण द्वारा होता है। सिद्धपद की आराधना करने वाले आत्मा को मुक्तिरूपी रमणी का वशीकरण करना है, इसलिए उसे सिद्धपद की आराधना

लालवर्ण से करने की है। ऐसे अन्य भी अनेक कारण मिलते हैं। आगमादि शास्त्रों में सिद्धभगवन्तों का लालवर्ण ही प्रतिपादित किया गया है।

श्रीसिद्धभगवन्तों को प्रथमतः नमस्कार क्यों नहीं ?

प्रश्न– श्री अरिहन्तदेवों की अपेक्षा श्रीसिद्धभगवन्त आठों कर्मों पर विजय प्राप्त कर चरम सीमा के स्थान मोक्ष को भी प्राप्त कर चुके हैं, अतः श्रीअरिहन्तदेवों से पहले श्रीसिद्धभगवन्तों को नमस्कार क्यों नहीं करना चाहिए ?

उत्तर– श्रीसिद्धचक्र-नवपदजी में तथा श्रीनमस्कार-महामन्त्र में श्रीसिद्धभगवन्तों का नमस्कार रूप में द्वितीय स्थान है। श्रीअरिहन्त भगवन्तों से श्रीसिद्धभगवन्त विशेष होने पर भी श्रीअरिहन्तदेव हमारे विशेष उपकारक हैं। श्रीसिद्धभगवन्तों की अपेक्षा श्री अरिहन्त भगवन्तों का हम पर निकट का भी उपकार ज्यादा है क्योंकि धर्मतीर्थ प्रवर्तने वाले श्रीअरिहन्त भगवान हैं। उन्हीं के तीर्थ-शासन में रहकर हम हमारी आत्म-साधना का मङ्गलमय कार्य सर्वदा करते हैं। अरिहन्त भगवान ही तो हमें श्रीसिद्धभगवान की स्थिति आदि के सम्बन्ध में समझाते हैं।

विश्व में वस्तु-पदार्थ का चाहे जितना अधिक मूल्य होवे तो भी उसकी पहिचान-जानकारी बिना, अमूल्य होते हुए भी उसका लाभ नहीं ले सकते हैं। इसलिए वस्तु-पदार्थ की अपेक्षा भी उसकी जानकारी करने वाला विशेष महत्ता को पाता है। विश्व में जो श्रीअरिहन्तदेवों की विद्यमानता न होती तो जगत् के जीवों को श्रीसिद्धभगवन्तों की जान-पहिचान नहीं हो सकती थी।

श्रीसिद्धभगवन्त शक्ति और प्रभाव में अधिक होने पर भी उनकी जानकारी दिखाने वाले श्रीअरिहन्त परमात्मा ही हैं। इसलिए उन्हीं को प्रथम नमस्कार किया है। पश्चात् श्रीसिद्धभगवन्तों को दूसरा नमस्कार किया है।

श्रीसिद्धपद का आराधन

सकलसिद्धिदायक श्रीसिद्धचक्र के नवपद में महत्त्व-पूर्ण इस द्वितीय **श्रीसिद्धपद का आराधन** उनके आठ गुणों की अनुपमता में विशिष्ट रूप में होने से आठ भेदों से होता है।

(१) ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से आत्मा में **'अनन्त ज्ञान गुण'** प्रगट होता है।

(२) दर्शनावरणीय कर्म के क्षय से आत्मा में **'अनन्त दर्शन गुण'** प्रगट होता है।

(३) वेदनीय कर्म के क्षय से आत्मा में **'अव्याबाध सुख गुण'** प्रगट होता है।

(४) मोहनीय कर्म के क्षय से आत्मा में **'क्षायिक सम्यक्त्व'** और **'अनन्त चारित्र गुण'** प्रगट होता है।

(५) आयुष्य कर्म के क्षय से आत्मा में **'अक्षय स्थिति** (अर्थात् पुनर्जन्म न लेने रूप शाश्वत स्थान) **गुण'** प्रगट होता है।

(६) नाम कर्म के क्षय से **'अनन्त अवगाहनयुक्त अमूर्त गुण'** प्रगट होता है।

(७) गोत्र कर्म के क्षय से **'अनन्त अवगाहनायुक्त अगुरुलघु गुण'** प्रगट होता है।

(८) अन्तराय कर्म के क्षय से **'अनन्त आत्मवीर्यादि गुण'** प्रगट होता है।

श्रीसिद्धभगवन्तों में इन्हीं आठ गुणों की प्रधानता है। ये गुण अपनी आत्मा में प्रगट करने के लिए आराधक को श्रीसिद्धभगवन्त की आराधना आठ भेदों से करनी चाहिए।

जो समस्त कर्म का क्षय करके चौदहवें गुणस्थानक के अन्त में सादि अनन्तवें भागे लोकान्त में स्थित हैं ऐसे श्रीसिद्धभगवन्त के अनेक गुणों का ध्यान करना, द्रव्य-भाव-

पूर्वक उनकी भक्ति करना, इत्यादि से इस पद की आराधना होती है।

श्रीसिद्धपद की आराधना का ध्येय

लालवर्ण से श्रीसिद्धपद की आराधना करने वाली आत्मा का अन्तिम ध्येय सिद्ध बन करके सिद्धि का शाश्वत सुख प्राप्त करना होना चाहिए। यही ध्येय रखने वाला व्यक्ति विश्व में अच्छे-अच्छे कार्यों में सिद्धि प्राप्त करते हुए एक समय सम्पूर्ण सिद्धि के शाश्वत सुख को अवश्य प्राप्त करेगा।

श्रीसिद्धपद की आराधना के दृष्टान्त

इस सिद्धपद की आराधना से ही श्रीपुण्डरीक स्वामीजी, पाण्डवों और रामचन्द्रजी ने मोक्ष-सिद्धि के शाश्वत सुख को प्राप्त किया है।

श्रीसिद्धभगवन्तों का शरण

शास्त्र में चार शरण प्रतिपादित किए गए हैं। उनमें श्रीसिद्धभगवन्त भी एक शरण हैं।

मुझे सिद्धपरमात्माओं का शरण हो! इसके लिए कहा है कि–

तरिऊण भवसमुद्दं, रुद्ददुहलहरिलक्खदुल्लंघं ।
जे सिद्धिसुहं पत्ता ते सिद्धा हुंतु मे सरणं ।। १ ।।

अर्थ– लाखों दुःखोंरूपी लहरों से दुर्लंघ्य एवं रौद्र ऐसे संसार रूपी सागर को उत्तीर्ण कर जिन्होंने सिद्धिसुख प्राप्त किया है, उन सिद्ध भगवन्तों का शरण मुझे प्राप्त हो ।। १ ।।

जे भंजिऊण तवमुग्गरेण, निबिडाइं कम्मनिअलाइं ।
संपत्ता मुक्ख सुहं, ते सिद्धा हुंतु मे सरणं ।। २ ।।

अर्थ– तपरूपी मुद्गर से निबिड़ कर्मरूपी बेड़ियों को भंग कर जिन्होंने मोक्षसुख प्राप्त किया है, उन सिद्धभगवन्तों का शरण मुझे प्राप्त हो ।। २ ।।

झाणानलजोगेण, जाओनिदड्ढसयलकम्ममलो ।
कणगं व जाण अप्पा, ते सिद्धा हुंतु मे सरणं ।। ३ ।।

अर्थ– ध्यानरूपी अग्नि के योग से सकल कर्म मल भस्मीभूत अर्थात् जल जाने से जिनकी आत्मा सुवर्ण जैसी निर्मल हुई है, उन सिद्धभगवन्तों का शरण मुझे प्राप्त हो ।। ३ ।।

जाण न जम्मो न जरा,
न वाहिणो न मरण न वा बाहा ।

न य कोहाइ कसाया,
ते सिद्धा हुंतु मे सरणं ।। ४ ।।

अर्थ– जिनके जन्म, जरा, व्याधियाँ और मरण नहीं हैं तथा पीड़ा व क्रोधादि कषाय नहीं हैं वे सिद्ध परमात्मा मुझे शरण प्रदान करें ।। ४ ।।

(१) चार पदार्थ मंगलरूप हैं । उनमें सिद्धभगवन्त का भी स्थान है–

'सिद्धा मंगलं' सिद्ध मङ्गलरूप हैं ।

(२) चार पदार्थ लोक में उत्तम हैं । उनमें सिद्धभगवन्त का भी स्थान है–

'सिद्धा लोगुत्तमा' सिद्ध लोकोत्तम हैं ।

(३) चार शरण में भी सिद्ध भगवन्त का स्थान है ।

'सिद्धे सरणं पव्वज्जामि' सिद्धों का शरण स्वीकार करता हूँ ।

अन्त में–बीजरूप श्री अरिहन्तपद के फलभूत श्रीसिद्ध-पद है । सिद्धगति के लिए इस सिद्धपद की आराधना श्रीअरिहन्त परमात्मा द्वारा फरमाये हुए मार्ग से ही होती है । इसलिए श्रीनवपद में श्रीसिद्धभगवन्त दूसरे पद से पूज्य हैं ।

सिद्धपद की भावना

हे सिद्धभगवन्त ! आप अरूपी हैं। निरंजन निराकार हैं। आपका प्रभाव अचिन्त्य और अलौकिक है। आप चौदह राज लोक के ऊपर आई हुई ईषत्प्राग्भार पृथ्वी-सिद्धशिला पर विराजमान हैं। आपने अक्षय, अविनाशी और अनन्त स्वरूप को प्राप्त किया है। आपने चार घाती और चार अघाती कर्मों का सर्वथा क्षय किया है। आपने अनन्त ज्ञान गुण, अनन्त दर्शन गुण, अनन्त चारित्र गुण, अनन्त वीर्य, अगुरुलघुता, अरूपीपन, अव्याबाध सुख और अक्षय स्थिति इन आठ गुणों को प्राप्त किया है। आपका स्वरूप वचनातीत है और आपका सुख अनिर्वचनीय है।

आप कृतकृत्य होने के कारण **'सिद्ध'** हैं। समस्त विश्व को जानने के कारण **'बुद्ध'** हैं। भवसिन्धु के पार होने के कारण **'पारगत'** हैं। सम्यक्त्व, ज्ञान और चारित्र के क्रमशः सेवन से मोक्ष पाने के कारण **'परम्परागत'** भी हैं। समस्त कर्मों से रहित होने के कारण **'मुक्त'** हैं। जरादि का अभाव होने के कारण **'अजर'** हैं। आयुष्यकर्म का अभाव होने के कारण **'अमर'** हैं। निखिल क्लेश के संग से मुक्त होने के कारण **'असंग'** हैं।

ऐसे गुणों के योग से श्रीसिद्धभगवन्त कल्याणकामी आत्माओं के लिए एकान्त रूप से आराधने योग्य हैं।

भव्यजीवों को मोक्ष के रागी बनाने वाले, भव्यात्माओं के अन्तःकरण में मोक्षमार्ग के पथिक बनने की वृत्ति को जगाने वाले और सिद्धि की साधना में इसी वृत्ति को तल्लीन-एकतान बनाने के लिए सहायक होने वाले महान् उपकारी सिद्धभगवन्त की आराधना द्वारा हम भी अरिहन्त बन कर सिद्ध बनें और सिद्धिस्थान में सिद्धभगवन्तों का सदा सर्वदा सान्निध्य प्राप्त करें।

[३] श्रीआचार्यपद

卐 नमो आयरियाणं 卐

प्रतिरूपाद्याश्चतुर्दश, क्षान्त्यादिदर्शविधश्रमणधर्मः ।
द्वादश भावना इति, सूरिगुणा भवन्ति षट्त्रिंशत् ॥१॥

सूरीण दूरीकयकुग्गहाणं, नमो नमो सूरसमप्पभाणं ।
संदेसणादाणसमायराणं, अखंडछत्तीसगुणायराणं ॥२॥

न तं सुहंदेइ पिया न माया, जे दिंति जीवाणिह सूरिपाया ।
तम्हाहु ते चेव सया महेह, जं मुक्खसुक्खाइं लहुं लहेह ॥३॥

श्रीआचार्यपद की पहिचान

श्रीनवपद में आचार्यपद का तीसरा स्थान है। ऐसे ही श्रीनमस्कार-महामन्त्र में भी इसका तीसरा स्थान है। श्रीअरिहन्त परमात्मा और श्रीसिद्धभगवन्त दोनों का पद देवतत्त्व में है। बाद में गुरुतत्त्व में सर्वप्रथम आचार्य का

का स्थान है। जैनशासन में सूर्य समान श्री जिनेश्वरदेव और चन्द्र समान श्रीकेवली भगवन्त के अभाव में दीपक के समान **श्रीआचार्य महाराज** शासन के सम्राट् या शासन के शिरोमणि हैं। सर्वज्ञ विभु श्रीतीर्थंकर परमात्मा के हस्ते दीक्षित बने हुए और त्रिपदी के द्वारा श्रीद्वादशांगी की सम्पूर्ण रचना करने वाले आचार्य महाराज **गणधर** तरीके कहे जाते हैं। द्वादशांगी की प्राप्ति मोक्षार्थी आत्माओं को गणधर महाराजा के पुण्यप्रताप से होती है। श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवन्तों की दश विशेषणों से समलंकृत आज्ञा का लोक में प्रचार करने के लिए आचार्य महाराज अधिकारी हैं।

श्रीअरिहन्त-तीर्थंकरदेवों की आज्ञा दश विशेषणों से समलंकृत है। वे विशेषण इस प्रकार हैं—

सुनिउणमणाइनिहणं, भूयहियं भूयभावणमहग्घं।
अमियमजियं महत्थं, महाणुभावं महाविसयं॥

श्रीअरिहन्त-तीर्थंकरदेवों की आज्ञा

(१) विश्व के सूक्ष्मद्रव्य इत्यादि (वस्तु-पदार्थों) को दर्शाने वाली होने से **उत्तम निपुणवती** है।

(२) सर्वदा स्थायी होने से **अनादि अनन्त** है।

(३) सभी जीवों को अनाशक तथा हितकारिणी होने से **'भूतहिता'** है ।

(४) सत्य वस्तु को प्रगट करने वाली होने से **'भूतभावना रूप'** है ।

(५) कल्पवृक्ष और चिन्तामणि रत्न से भी अधिक फल देने वाली होने से **'अमूल्य'** है ।

(६) अपरिमित अर्थ को कहने वाली होने से **'अमिता'** है ।

(७) अन्य प्रवचनों की आज्ञा द्वारा अजेय होने से **'अजिता'** है ।

(८) महान् अर्थ वाली होने से **'महार्था'** है ।

(९) महा सामर्थ्य सम्पन्न होने से **'महानुभावा'** है ।

(१०) विश्व के समस्त द्रव्यादिक का प्रतिपादन करने वाली होने से **'महाविषया'** है ।

श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवन्तों की इन्हीं दस आज्ञाओं को श्रुतकेवली व श्रीगणधर भगवन्तों ने श्रीद्वादशांगी में गूँथा है ।

आचार की सुन्दर और श्रेष्ठ व्यवस्था की सुरक्षा करने वाले आचार्य महाराज हैं ।

अन्तिम श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामी ने 'श्री आवश्यक सूत्र' की 'निर्युक्ति' में आचार्य के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि–

पंचविहं आयारं, आयरमाणा तहा पभाया संता ।
आयारं दंसंता, आयरिया तेण वुच्चंति ।। ९९४ ।।

पाँच प्रकार के आचारों का स्वयं पालन करने वाले, प्रयत्नपूर्वक अन्य के समक्ष उनको प्रकाशित करने वाले तथा साधुओं को उन पाँच प्रकार के आचारों को दिखलाने वाले अर्थात्–ज्ञानाचारादि पंचविध आचारों के सम्यग्-परिपालन के लिए उत्सर्ग तथा अपवादादि विधिमार्गों के प्रति सूक्ष्म अर्थों को प्रयत्नपूर्वक समझाने वाले आचार्य कहलाते हैं ।

ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार इन सर्वप्रधान पञ्चाचारों का यथोचित स्वयं पालन करना और दूसरों से भी कराना यह आचार्य महाराज का नैतिक उत्तरदायित्व है । इन आचारों के पालन और प्रचार के लिए इन्द्रियों का निग्रह, कषायों का जय, ब्रह्मचर्य की गुप्ति का पालन, पंच समिति और तीन गुप्ति रूप अष्टप्रवचनमाता का सेवन, आचार्य महाराज के लिए अवश्य विहित है । पंचाचार के पालन में ही पंचसमिति और तीन गुप्ति की पालना आ जाती है ।

श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा के द्वारा अर्थ रूप में प्रकाशित और श्रुतकेवली गणधर महाराजा के द्वारा सूत्र रूप में गूँथी हुई द्वादशांगी के तत्त्वों का जगत् में जनता समक्ष जिनप्रवचन द्वारा प्रचार करना, साधु-साध्वी एवं श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ को श्रीअरिहन्त केवली भगवन्त भाषित धर्ममार्ग पर चलाना, साधुओं को अपनी आत्म-साधना में आती हुई अनेक प्रकार की स्खलनाओं से सावधान करने के लिए अहर्निश जागृत रहना तथा आत्म-साधना के पुनीत पन्थ से चलित हो गए हों, उनको वापिस मूलमार्ग में लाने के लिए सावधान करना इत्यादि कार्य तृतीय पद में प्रतिष्ठित आचार्य महाराज करते हैं।

आचार का शिक्षण अति गहन है। उसे पाने के लिए अनेक भव्य जीव आचार्य महाराज की शुभ निश्रा में आकर रहते हैं, इतना ही नहीं किन्तु अपना जीवन सर्वस्व उन्हीं के चरणों में समर्पित कर देते हैं।

आचार्य महाराज इस बात का पूर्ण ख्याल रख कर, शिष्यादिक को पुनः पुनः उनके आचार का स्मरण कराते हैं, स्खलना को सुधारते हैं, भूलों को रोकते हैं, प्रेरणा कर आचार में जोड़ते हैं; इतना ही नहीं आवश्यकता पड़ने पर कटु वचन कह कर भी शिष्यों को आचार में स्थिर

करते हैं। इस तरह अपने गच्छ-समुदाय का सुन्दर संरक्षण करते हैं। आगमशास्त्र में कहे हुए उत्सर्ग और अपवाद के रहस्य को पूर्णतया ध्यान में रखते हैं। अपवाद के प्रसंग में उत्सर्ग और उत्सर्ग के प्रसंग में अपवाद का उपदेश नहीं करते हैं। अपवाद के प्रसंग में अपवाद का और उत्सर्ग के प्रसंग में उत्सर्ग का आदेश करते हैं।

आचार्य महाराज स्वयं आत्म-साधना में संलग्न रहते हैं और दूसरों को उपदेश देकर आत्म-साधना में संलग्न करते हैं। स्वयं तीर्थ का रक्षण करते हैं और दूसरों को भी तीर्थ-रक्षण कार्य में प्रेरित करते हैं। वे श्रीसंघ की उन्नति के मार्ग प्रदर्शित करते हैं तथा आत्म-साधना से विचलित साधकों को साधना की विशिष्टता और उपादेयता समझा कर पुनः संयमादि धर्ममार्ग में प्रवृत्त करते हैं।

सूर्य के समान जिनेश्वरदेव और चन्द्र के समान केवली भगवन्त के अभाव में आचार्य ही अज्ञानरूपी अँधेरे में भटकी हुई जनता को ज्ञान के प्रकाश में लाने के लिए दीपक का कार्य करते हैं; मोक्ष का मार्ग बताते हैं और जिनप्रवचन का दान कर मानवादि सभी के जीवन को आनन्दमय बना देते हैं।

ऐसे आर्यदेश, आर्यकुल और उत्तम जाति में जन्म पाए हुए तथा कुलीनता रूप-सौन्दर्य और पंच इन्द्रियों से परि-

पूर्ण भव्य काया वाले, स्व-पर जीवन के सफल निर्माता स्व-पर सिद्धान्त पारगामी, समयज्ञ आचारवान् द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के ज्ञाता, शासन की अनुपम प्रभावना करने वाले, शासन के आधारस्तम्भ एवं परम माननीय, सौम्य प्रकृति वाले आचार्य महाराज को 'गच्छाचार पयन्ना' में तीर्थंकर के समान कहा गया है।

"तित्थयर समो सूरि, सम्मं जो जिणमयं पयासेइ"

"जो आचार्य सम्यग् प्रकार से जिनेश्वरदेव के धर्म की प्ररूपणा करता है वह तीर्थंकर के समान है।"

'**श्रीमहानिशीथ सूत्र**' के पाँचवें अध्ययन में भी कहा है कि—**"से भयवं ? किं तित्थयरं संतियं आणं नाइक्कमिज्जा उदाहु आयरिय संतियं ?**

गोयमा ? चउविहा आयरिया भवन्ति। तं जहा—नामायरिया, ठवणायरिया, दव्वायरिया, भावायरिया, तत्थ णं जे ते भावायरिया ते तित्थयरसमा चेव दट्ठव्वा, तेसिं संतियं आणं नाइक्कमेज्ज ति।"

'हे भगवन्! तीर्थंकर सम्बन्धी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए कि आचार्य सम्बन्धी आज्ञा का ?

'हे गौतम! नामाचार्य, स्थापनाचार्य, द्रव्याचार्य और

भावाचार्य इस तरह चार प्रकार के आचार्य कहे गए हैं। उनमें से भावाचार्य तीर्थंकर के समान होने से उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।'

ऐसे भावाचार्य माता-पिता और बन्धु आदि से भी, जीवों के अधिक हितसाधक हैं। शासन का साम्राज्य चलाने के लिए उन्हीं के पास अनेक शक्तियों, लब्धियों, और सिद्धियों आदि का विशेष बल है। धर्मसाम्राज्य के स्वामी आचार्य महाराज के चरणों में देवगण एवं चक्रवर्ती आदि सम्राट् भी अपना सिर झुका कर और हाथ जोड़ कर नमस्कार करते हैं। उन्हीं के सेवक बनने में जीव अपना गौरव समझते हैं। उन्हीं की कृपा अनेक जीवों को योग्य बनाती है और धर्ममार्ग में जोड़ती है।

'आचार्य' शब्द की व्याख्या, व्युत्पत्ति और अर्थ

व्याकरण के नियमानुसार आङ्पूर्वक चर् धातु से आचार्य शब्द बनता है। आङ्+चर्, ङ् की इत् संज्ञा और लोप होने पर आचर् बना। उससे ण्यत् प्रत्यय होकर आचर्+ण्यत् बना, ण् और त् की इत् संज्ञा तथा लोप होने पर आचर्+य बना। अजन्तांग को वृद्धि तथा सबको मिलाने पर रेफ् का ऊर्ध्वगमन हो जाने पर **'आचार्य'**

बनता है । इसकी व्याख्या इस प्रकार है–

'आङ्–चर् भक्षणे च, चकाराद् गतौ' आचर्यते इति आचार्यः ।

(१) प्रवचन के अभिलाषी शिष्यों के द्वारा जिनकी सेवा की जाती है वे आचार्य कहलाते हैं ।

(२) आचार में जो स्वयं साधु हों अर्थात् स्वयं पंचाचार को पालें और दूसरों से भी पालन करावें, वे आचार्य कहलाते हैं ।

(३) मर्यादापूर्वक नवकल्पविहार-आचार में जो उत्तम हों, वे आचार्य कहलाते हैं ।

(४) चरपुरुष के समान गीतार्थ जो शिष्य वह आचार कहलाता है । उसमें जो साधु हो अर्थात् उसके प्रति हितकारी हो, वह आचार्य कहलाता है ।

इस तरह आचार्य शब्द की व्याख्या, व्युत्पत्ति और अर्थ होता है ।

आचार्य के छत्तीस गुण

शास्त्र में जिस प्रकार अरिहन्त परमात्मा के बारह गुण और सिद्ध भगवन्त के आठ गुण बतलाये हैं, उसी प्रकार

आचार्य महाराज के भी छत्तीस गुण शास्त्रकारों ने बतलाये हैं। **'पंचिदिय सुत्तं'** याने 'गुरुस्थापना सूत्र' में कहा है कि–

पंचिदिय-संवरणो, तह नवविह-बंभचेर-गुत्ति-धरो।
चउविह-कसाय-मुक्को, इअ अट्ठारस गुणेहिं संजुत्तो ।। १ ।।

पंच-महव्वय-जुत्तो, पंचविहायार-पालण-समत्थो।
पंच-समिओ त्ति-गुत्तो, छत्तीस गुणो गुरू मज्झ ।। २ ।।

अर्थ– पाँचों इन्द्रियों के विषयों को वश में रखने वाले, नव प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्ति को धारण करने वाले, चारों कषायों से मुक्त, इन अट्ठारह गुणों से युक्त; तथा पाँच महाव्रतों को धारण करने वाले, पाँच प्रकार के आचारों का पालन करने में समर्थ, पाँच समितियों और तीन गुप्तियों से युक्त, इस प्रकार छत्तीस गुणों वाले गुरु (अर्थात् आचार्य महाराज) हमारे गुरु हैं।

सारांश यह है कि–

५ – स्पर्शनेन्द्रिय आदि पाँच इन्द्रियों का संवरण,

९ – वसति आदि नव प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्ति (बाड़) का संरक्षण,

४ – क्रोध आदि चार कषायों से मुक्त,

५ – प्राणातिपातविरमण आदि पञ्च महाव्रतों से युक्त,

५ – ज्ञानाचारादि पञ्च आचारों से युक्त,

५ – ईर्यासमिति आदि पञ्च समितियों सहित,

३ – मनोगुप्ति आदि तीन गुप्तियों से युक्त,

—

३६ इन छत्तीस गुणों से समलंकृत आचार्य महाराज हैं।

'**श्रीसंबोध प्रकरण**' में भी आचार्य महाराज के छत्तीस गुणों का वर्णन किया गया है। '**श्री गच्छाचार पयन्ना**' में भी आचार्य महाराज की महत्ता आदि का विशेष विवेचन उपलब्ध है।

छत्तीस गुणों के वर्णन के सम्बन्ध में शास्त्र में छत्तीस छत्तीसियाँ आती हैं। पंडित श्री पद्मविजयजी गणी ने श्रीनवपदजी की पूजा में भावाचार्य का वर्णन करते हुए कहा है कि–

आचारज त्रीजे पदे, नमीये जे गच्छ धोरी रे,
इन्द्रिय तुरंगम वश करे, जे लही ज्ञाननी दोरी रे;
शुद्ध प्ररूपक गुण थकी, जे जिनवर सम भाख्या रे,
छत्रीश छत्रीशी गुणे, शोभित समयमां दाख्या रे;
उत्कृष्टा त्रीजे भवे, पा ले अविचल ठाण रे,
भावाचार्य ज वंदना, करीये थइ सावधान रे।

जो मुनियों के समुदाय के मुख्य संचालक हों, ज्ञान की

डोरी से इन्द्रियरूपी तूफानी अश्व को वश में करने वाले हों, शुद्ध प्ररूपणा नाम के महान् गुण से जिनेश्वरदेवों के समान हों, जिनमें आगमादिशास्त्रों में कहे अनुसार छत्रीश छत्रीशो याने बारह सौ छन्नुं (१२९६) गुण हों, जो उत्कृष्ट तीसरे भव में अवश्य मोक्ष में जाने वाले हों ऐसे भावाचार्य को (हम) सावधान होकर सर्वदा भावपूर्वक वन्दना करते हैं।

(१) ऐसे आचार्य भगवन्त नव प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्ति (बाड़) को धारण करते हैं, नव प्रकार के पापरूपी नियाणा को वर्जते हैं, नव कल्पीविहार करते हैं और नवतत्त्व के ज्ञाता हैं। इस तरह छत्तीस गुणों (९+९+९+९=३६) से युक्त हैं।

(२) साधु के २७ गुणों से सुशोभित जिनका शरीर है और जो नवकोटि शुद्ध आहार लेते हैं, ऐसे आचार्य भगवन्त छत्तीस (२७+९=३६) गुणों से समलंकृत हैं।

(३) श्रेष्ठ २८ लब्धियों को प्रकट करने में अति निपुण और आठ प्रकार के प्रभावकपने को धारण करने वाले, ऐसे आचार्य भगवान छत्तीस (२८+८=३६) गुणों से सुशोभित हैं।

(४) चौदह प्रकार की अभ्यन्तर ग्रन्थियों को तजने वाले और बावीस प्रकार के उपसर्गों को जीतने वाले, ऐसे आचार्य महाराज छत्तीस (१४+२२=३६) गुणों से युक्त हैं ।

(५) मुनिवर की बारह प्रकार की पडिमा-प्रतिमा को वहन करने वाले, बारह प्रकार का तप करने वाले तथा बारह प्रकार की भावना भाने वाले, ऐसे आचार्यदेव छत्तीस (१२+१२+१२=३६) गुणों से युक्त हैं ।

जो गच्छ के भार को वहन करने में वृषभ के समान हैं तथा इन्द्रियरूपो अश्वों को ज्ञानरूपी डोर से ग्रहण कर वश में करने वाले हैं ऐसे अनेक गुणों से समलंकृत आचार्य भगवन्त सर्वदा वन्दनीय हैं ।

आचार्यपद की आराधना पीतवर्ण से क्यों ?

जैसे अरिहन्तपद की आराधना श्वेतवर्ण से और सिद्ध-पद्ध की आराधना लालवर्ण से होती है, वैसे आचार्यपद की आराधना पीत (पीला) वर्ण से होती है । पीतवर्ण से होने का कारण यह है कि–

(१) सूर्य के समान जिनेश्वरदेव और चन्द्र के समान केवली भगवन्त के अभाव में आचार्य महाराज दीपक के समान हैं। जैसे– दीपक की शिखा पीत वर्ण की है वैसे आचार्य महाराज भी पीतवर्ण वाले हैं। इसलिए उनकी आराधना पीतवर्ण से होती है।

(२) जिन-शासन में आचार्य महाराज राजा के समान हैं। राजा स्वर्ण के बनाये हुए मुकुट आदि अलंकारों से समलंकृत होते हैं। स्वर्ण का वर्ण पीत होता है। यही भाव समझाने के लिए आचार्यपद की आराधना पीतवर्ण से होती है।

(३) परवादी रूपी हाथियों को भगाने के लिए **आचार्य महाराज केसरी सिंह** के समान हैं। जैसे– केसरी सिंह का वर्ण पीत-पीला है वैसे ही आचार्य महाराज का भी वर्ण पीत-पीला है। यही भाव स्पष्ट करने के लिए आचार्यपद की आराधना पीत वर्ण से होती है।

(४) दूसरे के साथ वाद करते हुए जीत हो जाय तो जीतने वाले को विजयश्री वरती है। आचार्य महाराज परवादी के साथ वाद करके स्वसिद्धान्त का मण्डन और परसिद्धान्त का खण्डन कर विजय प्राप्त करते हैं। विजयश्री के साथ विवाह करने के लिए

पीली-पीठी चोल कर सज्ज बने हुए आचार्य महाराज वरराजा के समान हैं। यह भाव प्रदर्शित करने के लिए आचार्य पद की आराधना पीतवर्ण से होती है।

(५) मन्त्रशास्त्र में किसी को स्तब्ध और स्तम्भित करने के लिए पीतध्यान धरने का विधान है। महाप्रभावशाली आचार्य महाराज प्रसंग आने पर सबको स्तब्ध कर देते हैं। पर तन्त्र को स्तब्ध और स्तम्भित करने में आचार्य महाराज मुख्य हैं, इसलिए उनको पीतवर्ण कहा है। पर तन्त्र को स्तब्ध करने के लिए आचार्यपद का आराधन-ध्यान पीत-पीले वर्ण से ही होता है। ऐसे अनेक कारण पीतवर्ण से आचार्यपद की आराधना में कहे हैं।

आचार्यपद का आराधन

आचार्य महाराज के छत्तीस गुण हैं। **'पंचिंदिय सूत्र'** में छत्तीस गुण प्रतिपादित किए गए हैं। शास्त्र में छत्तीस गुण अनेक रीतियों से बताये हैं। छत्तीस छत्तीसियाँ आती हैं। छत्तीस गुणों से युक्त, पंचाचार का स्वयं पालन करने वाले और अन्य मुनियों द्वारा पालन कराने वाले, जिनभाषित दयामय-सत्यधर्म का शुद्ध सदुपदेश करने वाले,

अहर्निश अप्रमत्त दशा में वर्त्तने वाले, धर्मध्यानादि शुभ-ध्यान को ध्याने वाले, गच्छ-समुदाय के साधुओं को चार प्रकार की शिक्षा देने वाले, इत्यादि गुणों से विभूषित आचार्य महाराज की द्रव्य और भाव से भक्ति करने से इस तीसरे आचार्यपद का आराधन हो सकता है।

आचार्यपद का आराधक

महामन्त्र और शुभध्यान द्वारा सुन्दर आचार्यपद का ध्यान करने वाले मनुष्य की आत्मा ही सूरिमन्त्र के पंच प्रस्थान प्राप्त कर आचार्य बन सकती है। आचार्यपद की आराधना करते हुए आराधक आत्मा ऐसी भावना अपने हृदयकमल में रखे कि मैं जैनशासन साम्राज्य का सम्राट् बनने के लिए उपस्थित हूँ। तथा सम्राट् के योग्य गुण प्राप्त करने के लिए मैं आराधना कर रहा हूँ जिस तरह इस आचार्यपद की आराधना कर परदेशी राजा सूर्याभदेव हुए उसी तरह मैं भी इस आराधना से अपनी पूर्ण योग्यता प्रकट कर यह पद प्राप्त करूँ। इस प्रकार की भावना आराधक आत्मा को करनी चाहिये।

आचार्यपद की भावना

हे विश्ववंद्य ! हे शासन के सम्राट् ! हे भवसिन्धु-तारक आचार्य भगवन्त ! आपके पवित्र चरणों में मैं

सादर सविनय बहुमानपूर्वक भक्तिभाव से अहर्निश वन्दन-नमस्कार-प्रणाम करता हूँ। आप **'अरिहन्तादि पंचपरमेष्ठियों'** में तृतीय-तीसरे पद पर प्रतिष्ठित हैं। आपकी आत्मा जिनेन्द्रदेव के शासन को सर्वदा समर्पित है। आपने अपने जीवन को संयम की सुन्दर आराधना से आदर्श एवं पवित्र बनाया है। आप स्वयं पञ्चाचार आदि का पालन करते हैं और अन्य अनेक आत्माओं से भी करवाते हैं। आपकी शरण में आने वालों को आप **'योग'** और **'क्षेम'** प्रदान करने वाले हैं। आप स्वभाव से **'भीम'** और **'कान्त'** हैं। आप षट्काय के जीवों के **संरक्षक** हैं। आप पञ्चमहाव्रतों का सम्यक् परिपालन करने वाले हैं। आप विषय और कषाय से दूर हैं। आप पञ्च समितियों और तीन गुप्तियों के पालक हैं। आप आचार्य के छत्तीस गुणों से समलंकृत हैं। आप शासन के स्तम्भरूप और दिग्गज समान हैं। आपकी असीम कृपा से मैं भी आपके ही समान बनूँ; यही प्रार्थना एवं शुभ भावना है।

[४] श्रीउपाध्याय पद

卐 नमो उवज्झायाणं 卐

उपाध्याय महाराजों को नमस्कार हो।

सुत्तत्थविच्चारणतप्पराणं,
नमो नमो वायगकुंजराणं।

गणस्स संधारणसायराणं,
सव्वप्पणावज्जियमच्छराणं ।। १ ।।

सुत्तत्थसंवेगमयं सुएणं,
संनीरखीरामयविस्सुएणं ।
पीणंति जे ते उवज्झायराए,
झाएह निच्चंपि कयप्पसाए ।। २ ।।

अङ्गान्येकादश वै,
पूर्वाणि चतुर्दशापि योऽधीते ।
अध्यापयति परेभ्यः,
पञ्चविंशतिगुण उपाध्यायः ।। ३ ।।

श्रीउपाध्यायपद की पहिचान

श्रीसिद्धचक्र के नवपदों में प्रथम पद श्रीअरिहन्तपद तथा द्वितीय पद श्रीसिद्धपद– ये दोनों पद देवतत्त्व में गिने जाते हैं। उन्हीं के स्वरूप को सदा स्थायी रखने वाला गुरुतत्त्व है। इसी गुरुतत्त्व में क्रमशः प्रथम और परमेष्ठि-पद में तृतीय श्रीआचार्य महाराज का संक्षिप्त वर्णन किया। अब गुरुतत्त्व में दूसरे क्रम पर तथा परमेष्ठिपद में चतुर्थ श्रीउपाध्याय महाराज का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

भावाचार्यरूप महाराजा के मन्त्रिपद को दिपाने वाले और मुनिवृन्द को आगम-सिद्धान्त का दान करने वाले

श्रीउपाध्यायजी महाराज पंचपरमेष्ठियों में चौथे पद पर प्रतिष्ठित हैं। सर्वज्ञ श्रीतीर्थंकरदेशित और श्रुतकेवली श्रीगणधर गुम्फित श्रीआचारांग आदि द्वादशांगी सूत्रों के स्वाध्याय के पारगामी, उन्हीं के अर्थों के धारक तथा सूत्र और अर्थ उभय का विस्तार करने में सदा रक्त श्रीउपाध्यायजी महाराज हैं।

श्रुतकेवली **श्रीभद्रबाहुस्वामी** ने **आवश्यक निर्युक्ति** में कहा है कि–

बारसंगो जिणक्खाओ, सज्झाओ कहियो बुहेहिं।
तं उवइ सन्ति जम्हा, उवज्झाया तेण वुच्चंति ॥१००१॥

श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर परमात्मा के द्वारा प्ररूपित बारह अङ्गों (द्वादशाङ्गी) को पण्डित पुरुष स्वाध्याय कहते हैं। उनका उपदेश करने वाले उपाध्याय कहलाते हैं।

श्रीश्रमणसंघ में आचार्य भगवान के पश्चात् उपाध्यायजी महाराज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार्य भगवन्त की अनुपस्थिति में शासन का भार उन्हीं पर रहता है। यह भार वहन करने में तथा अपनी समस्त शक्ति का सदुपयोग करने में वे अंश मात्र भी पीछे नहीं रहते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु अपने जीवन को शास्त्ररूप सुधासिन्धु में ही मग्न रख कर, प्रत्येक अर्थीजन को उसमें निमग्न करने के

लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं। मिले हुए इस पद की सार्थकता इसी में है, अन्तःकरणपूर्वक ऐसा मान कर उपाध्याय परमेष्ठी अपने श्रुतज्ञानरूपी उपवन को नवपल्लवित रख कर ज्ञान प्रदान करके पत्थर-पाषाण जैसे जड़-बुद्धि शिष्यों को भी सुविनीत बनाने की शक्ति धारण करने वाले होते हैं अर्थात् जिनके द्वारा शिष्य भी सूत्र के ज्ञानरूप प्राण को धरने वाले हो जाते हैं। इस तरह शिष्यों को भी सूत्रार्थ के ज्ञाता बना कर सर्वजनपूजनीय बना देते हैं। इसलिए वे पूजनीय एवं वन्दनीय हैं।

अनेक उपमाओं से समलंकृत

श्री उपाध्यायजी महाराज अनेक उपमाओं से समलंकृत हैं—

(१) **गारुड़ी समान— श्री उपाध्यायजी महाराज** महा-गारुड़ी-जांगुली मन्त्रवादी के समान हैं क्योंकि वे मोहरूपी सर्प के दंश से ज्ञानरूप चेतना से हीन हुए जीवों में चेतना प्रगट कर सकते हैं और उसी के द्वारा स्व-पर के हित साधन बना सकते हैं। अर्थात्— मोहरूपी विषधर के दंश से व्याप्त विष वाला और आत्मज्ञान से हीन बना हुआ जीव उपाध्यायजी महाराज के समागम में आते ही

मोहरूपी विष से रहित होकर आत्मसजग बनता है। इसलिए अनुपम श्रुतज्ञान के दाता उपाध्यायजी महाराज को विषवैद्य गारुड़ी के समान कहा गया है।

(२) **धन्वन्तरि वैद्य समान– श्री उपाध्यायजी महाराज** सच्चे धन्वन्तरि वैद्य के समान हैं क्योंकि वे अज्ञानरूप व्याधि से पीड़ित प्राणियों को श्रुतज्ञानरूपी रसायन-औषधि द्वारा सच्चा ज्ञानी बना कर वास्तविक आरोग्य का आस्वाद कराते हैं।

(३) **ज्ञान-अंकुश देने वाले–** मनरूपी मदोन्मत्त हाथी आत्मा के गुणरूपी वन को छिन्न-भिन्न कर देता है, उसे काबू-वश में रखने के लिए मात्र ज्ञानरूपी अंकुश ही समर्थ है। अमोघ शस्त्ररूप श्रुतज्ञान अंकुश का दान करने वाले और उसका प्रयोग करने की कला भी सिखाने वाले उपाध्यायजी महाराज हैं।

मानरूपी महामद से मदोन्मत्त बने हुए प्राणियों को नम्र बनाने की कला में उपाध्यायजी महाराज अतिकुशल हैं। उनकी विनयशीलता से ही शिष्य समुदाय बिना उपदेश ही विनयशील बन जाता है। उनके साहचर्य मात्र से मानरूपी हाथी पर आरूढ़ आत्मायें मानमुक्त हो जाती हैं तथा

अनेक भव्यात्माएँ सम्यग्ज्ञानादि द्वारा मुक्ति रमणी की भोक्ता बन जाती हैं।

(४) **अंध नयनों को उघाड़ने वाले–** विश्व में उपाध्यायजी महाराज महादानी हैं। वे सब पदार्थों से विलक्षण अद्भुत ज्ञान वस्तु का दान करते हैं। यह ज्ञान ही जीव मोक्ष में जावे वहाँ तक अक्षय रहता है। ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो दीर्घकाल तक जीव के पास टिक सके। खानपान या भोगविलास आदि साधन-सामग्री भी किसी को दी होवे तो वह भी दिनपर्यंत, मासपर्यंत, वर्षपर्यंत या विशेषरूप में जीवनपर्यंत तक रहे; पीछे तो उसका भी विनाश हो जाता है। इसलिए उपाध्यायजी महाराज मुक्तिपर्यंत पहुँचाने वाले ज्ञान को ही देने में सदा उद्यमशील रहते हैं। उनका दिया हुआ ज्ञानरूपी धन उत्तरोत्तर बढ़ता है, कभी खूटता नहीं है।

अज्ञान से अन्धी बनी हुई सनेत्र जीवात्मा को कुछ भी सूझता नहीं है, इसलिए वह भव-वन में अटकते हुए इधर-उधर भटकती रहती है।

उपाध्यायजी महाराज स्वयं ऐसी आत्मा के नेत्र-रोग की चिकित्सा करते हैं। प्रशस्त शास्त्ररूपी शस्त्र से उसके

नेत्रपटल का छेदन करते हैं तब अज्ञान पटल दूर हो जाता है, ज्ञान-नयन खुल जाते हैं। इससे उनको हिताहित का भान होता है। तब यह जीव हित को स्वीकारता है और अहित को तजता है। श्रुतज्ञान के दान जैसा उत्तम दान सम्पूर्ण विश्व में कहीं भी नहीं है। श्रुतज्ञान के दाता उपाध्यायजी महाराज के प्रताप से ज्ञान लोचन प्राप्त की हुई आत्मा जो आनन्द पाती है अथवा आनन्द का अनुभव करती है वह तो यही आत्मा जानती है।

(५) **पापरूपी ताप का शमन करने वाले**– श्रुतज्ञान के दाता उपाध्यायजी महाराज ने श्रुतज्ञान दान की कला को बहुत सुन्दर रीति से अपनी आत्मा के साथ एक कर दिया है। इसी कला द्वारा उन्होंने श्रुत में आए हुए बावन अक्षरों को बावना-चन्दन बना कर तथा उसको घिस कर रसरूप कर दिया है।

इन्हीं बावन अक्षररूप बावनाचन्दन के रस से उपाध्यायजी महाराज विश्व के लोगों के पापरूपी ताप को शीघ्रतर शमा देते हैं–शान्त कर देते हैं।

सारांश यह है कि–'अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ' ये **चौदह (१४) स्वर**, तथा 'क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, य

र ल व, श ष स ह' ये **तैंतीस** (३३) **व्यंजन**, 'ल् क्ष ज्ञ' ये तीन बहुमान वर्ण, 'अनुस्वार और विसर्ग' ये सब मिल कर (१४+३३+३+२=५२) बावन वर्ण के अंग वाला शास्त्ररूप बावना चन्दन है। उस का अर्थरस पापताप को शमाने में समर्थ है। उपाध्यायजी महाराज इसी बावना चन्दन रस से लोकों के पापताप को शमाते हैं।

विश्व के पापरूप ताप से तप्त बन कर, उद्वेग पाए हुए जीव उपाध्यायजी महाराज की शरण में आकर, पाप के ताप को उपशान्त करके, उपशम रस के अनुपम आस्वाद का अनुभव करने वाले हो जाते हैं। इसलिए पापरूपी ताप को शमाने के लिए शास्त्ररूपी बावना चन्दन रस का अनुपम आस्वादन कराने वाले महादानी उपाध्यायजी महाराज सदैव अर्चनीय-वन्दनीय हैं।

(६) **युवराज समान तथा आचार्य पद के योग्य**– श्रीवीतरागदेव के शासन में सूर्य और चन्द्र के समान जिनेश्वर और केवली भगवन्तों के अभाव में दीपक समान आचार्य महाराज जैसे शासन के सम्राट् हैं, वैसे युवराज के समान उपाध्यायजी महाराज भी हैं।

जैसे राजकुमार-युवराज भविष्य में राजा बनने के योग्य है, वैसे उपाध्यायजी महाराज भी भविष्य में आचार्य

पद के योग्य हैं अर्थात् आचार्य बनने लायक हैं। ऐसी योग्यता धारण करने वाले उपाध्यायजी महाराज श्रुतज्ञान को अविच्छिन्नप्रवाही बनाने के लिए, अपने गुरुदेव भावाचार्य भगवन्त की शुभ निश्रा में विचरते हुए, गच्छ-गण की चिन्ता में सावधान रह कर, योग्य शिष्य-समुदाय को श्रुतज्ञानरूप सिद्धान्त की वाचना कराने के लिए सर्वदा, सतत प्रयत्नशील, सज्ज रहते हैं।

उपाध्यायजी महाराज के सान्निध्य में शिष्य समुदाय संयम में स्थिर बन कर उद्विग्नता को तिलांजलि देते हैं।

सतत अध्ययन-अध्यापन में तत्पर अर्थात् स्वयं पढ़ने और दूसरों को पढ़ाने में मग्न, स्व-पर के हित की साधना में उद्युक्त, 'हाथी, अश्व, वृषभ, सिंह, वासुदेव-नरदेव, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, भण्डारी (कुबेर), जंबूवृक्ष, सीतानदी, मेरुपर्वत, स्वयंभूरमण समुद्र, सिन्धु, रत्न तथा भूप' इन सोलह उपमाओं से युक्त ऐसे उपाध्यायजी महाराज कल्याणकामी आत्माओं के लिए अहर्निश आराध्य हैं।

'उपाध्याय' शब्द की व्याख्या, व्युत्पत्ति और अर्थ

उप् और अधि उपसर्ग पूर्वक 'इङ्-अध्ययने' धातु से घञ् प्रत्यय होने पर उपाध्याय शब्द बनता है। इसकी व्याख्या इस प्रकार की है– "उप-समीपमागत्याधीयते 'इङ् अध्ययने' इति वचनात् पठ्यते 'इण गता' विति वचनाद्वा अधि-आधिक्येन गम्यते, 'इक् स्मरणे' इति वचनाद्वा स्मर्यते सूत्रतो जिनप्रवचनं येभ्यस्ते उपाध्यायाः।"

[इति श्रीव्याख्याप्रज्ञप्तिः अभयदेवीयावृत्तिः प्रथम शतके प्रोक्तम्]

उप+अधि+इङ्+घञ् बना। उप+अधि में पूर्व पर के स्थान में सवर्ण दीर्घ होने पर उपाधि+इङ्+घञ् बना। पश्चाद् इङ् के ङ् की और घञ् के घ् ञ् की इत् संज्ञा तथा लोप होने पर उपाधि+ई+अ रहा। अजन्तांग को वृद्धि होने पर उपाधि+ऐ+अ रहा। पश्चात् यण् होने से उपाध्यै+अ हुआ। ऐ का आय् हुआ, आ मिला ध्य में य् मिला घञ् के शेष रहे अ में, तब **उपाध्याय** शब्द संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार बना।

प्राकृत व्याकरण में उपाध्याय का उवज्झाय इस प्रकार बनता है–

उपाध्याय में रहे हुए प-कार का व-कार तथा ध्या का झाकार हो जाने से उवझाय बना। पश्चात् झ का द्वित्व तथा प्रथम झ् का ज् होने से **'उवज्झाय'** शब्द बन जाता है।

(१) 'उप्+अधि+इण् गतौ' गमन अर्थ में। जिनके पास सूत्र पढ़ने के लिए जाना हो उन्हें उपाध्याय कहा जाता है।

(२) 'उप्+अधि+इक् स्मरणे' स्मरण अर्थ में– जिनके पास सूत्र का स्मरण होवे वे उपाध्याय कहे जाते हैं।

(३) 'उप्+अधि+इङ् अध्ययने' अध्ययन अर्थ में– जिनके पास सूत्र पढ़ा जावे वे भी उपाध्याय कहे जाते हैं।

(४) जिनके द्वारा श्रुतज्ञान का लाभ हो जाय या जिनका सान्निध्य श्रुतज्ञान के लाभ का कारण हो जाय इत्यादि से भी उपाध्याय शब्द की सार्थकता सिद्ध होती है।

उपाध्याय के अन्य नाम

जैन शास्त्रों में उवज्झाय--उपाध्यायजी महाराज को

अन्य नामों से भी पहिचाना जाता है। जैसे– वाचक, पाठक, स्थविर, कुत्रिकापण, आत्मप्रवादी इत्यादि।

ऐसे उपाध्यायजी महाराज 'उवज्झाय' 'उपाध्याय' आदि पद नाम से समलंकृत होते हुए भी उपयोगपूर्वक पाप का परिवर्जन, उपयोगपूर्वक ध्यान तथा उपयोगपूर्वक ध्यानादि साधनों द्वारा अनादिकाल से आत्मा के साथ लगे हुए कर्मों का अपनयन करने वाले होने से उपाध्याय पद की सार्थकता करते हैं।

उपाध्याय के पच्चीस गुण

शासन के सम्राट् आचार्य भगवान के पश्चात् श्रमण संघ में महत्त्वपूर्ण स्थान उपाध्यायजी महाराज का है। वे संघस्थ मुनियों को द्वादशाङ्गी का मूल से, अर्थ से और तदुभयरूप भावार्थ से भी सुन्दर अध्ययन करवाते हैं।

ऐसे श्री उपाध्यायजी महाराज के पच्चीस गुण शास्त्र में प्रतिपादित किए गए हैं। वे पच्चीस गुण इस प्रकार हैं–

श्रीआचारांगसूत्रादि ग्यारह अङ्ग, श्रीऔपपातिक सूत्रादि बारह उपाङ्ग, चरणसित्तरी तथा करणसित्तरी इन पच्चीस गुणों के धारक श्री उपाध्यायजी महाराज होते हैं।

जिस तरह पुरुष के दो पाँव (चरण), दो जङ्घा (साथल), दो उरु, दो गात्रार्ध (पीठ और उदर), दो हाथ, एक डोक और एक शिर (मस्तक) सर्व मिल कर बारह अंग होते हैं; उसी तरह द्वादशांगीरूप आगमपुरुष के बारह अंग होते हैं।

द्वादशाङ्गीरूप
बारह अंगों के नाम

(१) श्री आचारांग सूत्र
(२) श्री सूत्रकृतांग सूत्र
(३) श्री स्थानांग सूत्र
(४) श्री समवायांग सूत्र
(५) श्री विवाहप्रज्ञप्ति अंग सूत्र (श्रीभगवतीसूत्र)
(६) श्री ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र
(७) श्री उपासकदशांग सूत्र
(८) श्री अन्तकृद्दशांग सूत्र
(९) श्री अनुत्तरोपपातिकदशांग सूत्र
(१०) श्री प्रश्नव्याकरणांग सूत्र
(११) श्री विपाकश्रुतांग सूत्र

(१२) दृष्टिवादांग सूत्र

इन बारह अंगों में से बारहवाँ दृष्टिवादांग लुप्त हो जाने से ग्यारह अंग सूत्र के ज्ञाता श्री उपाध्यायजी महाराज हैं।

बारह उपांग सूत्रों के नाम

(१) श्रीउववाइअं–औपपातिक उपांगसूत्र
(२) श्रीरायप्पसेणिअं–राजप्रश्नीय उपांगसूत्र
(३) श्रीजीवाभिगम उपांगसूत्र
(४) श्रीपण्णवणा–प्रज्ञापना उपांगसूत्र
(५) श्रीजंबुद्दीवपण्णत्ती–जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति उपांगसूत्र
(६) श्रीचंदपण्णत्ती–चन्द्रप्रज्ञप्ति उपांगसूत्र
(७) श्रीसूरपण्णत्ती–सूर्यप्रज्ञप्ति उपांगसूत्र
(८) श्रीकप्पियाणं–कल्पिका उपांगसूत्र
(९) श्रीकप्पवडिसयाणं–कल्पावतंसक उपांगसूत्र
१०) श्रीपुप्फिआणं–पुष्पिता उपांगसूत्र
११) श्रीपुप्फचूलियाणं–पुष्पचूलिका उपांगसूत्र
१२) श्रीवण्हियाणं-वण्हिदसाणं–वृष्णिदशा उपांगसूत्र

इन बारह उपांग सूत्रों के ज्ञाता श्रीउपाध्यायजी महाराज हैं। ११ अंग और १२ उपांग मिल कर २३ होते हैं।

(२४) चरणसित्तरी और (२५) करणसित्तरी मिल कर २५ हुए। अथवा (२४) नन्दीसूत्र और (२५) अनुयोगद्वारसूत्र मिल कर २५ हुए।

इन पच्चीस गुणों से समलंकृत श्रीउपाध्यायजी महाराज हैं। अथवा ग्यारह अंग और बारहवें दृष्टिवादांग में आते हुए चौदह पूर्व मिल कर भी पच्चीस गुण से विभूषित श्रीउपाध्यायजी महाराज हैं।

चौदह पूर्व के नाम

(१) उत्पाद पूर्व
(२) अग्रायणी पूर्व
(३) वीर्यप्रवाद पूर्व
(४) अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व
(५) ज्ञानप्रवाद पूर्व
(६) सत्यप्रवाद पूर्व
(७) आत्मप्रवाद पूर्व
(८) कर्मप्रवाद पूर्व
(९) पच्चक्खाणप्रवाद पूर्व
(१०) विद्याप्रवाद पूर्व
(११) कल्याणप्रवाद पूर्व
(१२) प्राणावाय पूर्व
(१३) क्रियाविशाल पूर्व
(१४) लोकबिन्दुसार पूर्व

ग्यारह अंग और चौदह पूर्व मिलकर पच्चीस भेदे श्रुतज्ञान का अध्ययन करना और कराना श्री उपाध्यायजी महाराज की गुणपच्चीसी की एक विशिष्टता है। इस तरह विशेषता रूप भिन्न-भिन्न पच्चीस-पच्चीसियाँ (श्री उपाध्यायजी महाराज की) शास्त्र में वर्णित हैं। ऐसे श्री उपाध्यायजी महाराज सर्व संघ के आधारभूत हैं, समता-रस के भंडार हैं, सर्व प्रति समभाव रखने वाले हैं, स्वयं श्रुत पढ़ने वाले हैं और अन्य साधुओं को पढ़ाने वाले हैं, गच्छ-समुदाय में सारणा-वारणा-चोयणा-पडिचोयणा आदि करने वाले हैं, 'इच्छा, मिच्छा, आवसिया, निसीहिया, तथाकार, छंदना, पृच्छा, प्रतिपृच्छा, उपसंपदा तथा निमन्त्रणा' रूप दस प्रकार की समाचारी के पालन करने वाले हैं। अपनी आत्मा में रमण करने वाले हैं, पंच महाव्रत की पच्चीस भावना भाने वाले हैं, सर्व समय सावधान रहने वाले हैं, आचार्यरूपी राजा के आगे युवराज के समान हैं, ग्यारह अंग और चौदह पूर्व को अथवा ग्यारह अंग, बारह उपांग तथा नंदी और अनुयोगद्वारसूत्र को धारण करने वाले हैं, बावीस परीषहों को सहन करने वाले हैं तथा तीन गुप्ति से युक्त हैं। जिनशासन को वहन करने में वृषभ के समान श्रेष्ठ मुनि हैं। आगमशास्त्र की वाचना देने में समर्थ शक्तिमान हैं। स्याद्वाद के सदुपदेश से तत्त्वज्ञानका प्रतिपादन करने वाले हैं। जड़ और चेतन के

भेद समझाने वाले हैं। भवभीरु हैं। साधना करने में धीर हैं। श्रुतज्ञान के धारक हैं। पत्थर में भी अंकुरा उगाने में समर्थ हैं। मूर्ख जैसे शिष्य को भी विद्वान् बना सकते हैं। सूत्र-अर्थ सर्व के ज्ञाता हैं। विश्व के बन्धु हैं। तीसरे भव में मोक्षरूपी लक्ष्मी को प्राप्त करने वाले हैं और सर्व-जनों से पूजित हैं।

उपाध्याय पद की आराधना नील वर्ण से क्यों ?

पंच परमेष्ठी के चतुर्थ पद में विराजमान श्री उपाध्यायजी महाराज का नीलवर्ण बताया है। इसलिये उपाध्याय पद की आराधना नील-लीले वर्ण से होती है।

नील-लीले वर्ण से क्यों होती है ? उसके अनेक कारण (सहेतुक) हैं--

(१) जैसे मणियों में नीलमणि यानी नीलम की प्रभा शान्त और आकर्षक होती है वैसे श्री उपाध्यायजी महाराज की कान्ति प्रशान्त और मोहक होती है। नील वर्ण इसी भाव का सूचक है, इसलिये श्री उपाध्यायजी म. का नील वर्ण सहेतुक है।

(२) श्रुतज्ञान का पठन-पाठन करने वाले श्री उपा-

ध्यायजी महाराज का ज्ञानरूपी उद्यान (बाग-बगीचा) सर्वदा नवपल्लवित और अति विकसित रहता है। जैसे उद्यान हरा-भरा (लीलाछम) शोभता है और प्रेक्षकों को नयनरम्य होता है, वैसे ही श्री उपाध्यायजी महाराज का नील-हरा-लीला वर्ण भी उनके श्रुतज्ञानरूपी उद्यान का पूर्ण विकास दिखलाता है। इस हेतु से उपाध्याय पद की आराधना नीलवर्ण होती है।

(३) दो वर्णों को मिलाने से तीसरा वर्ण उत्पन्न होता है। कृष्ण वर्ण में पीत वर्ण का मिश्रण होने से नील वर्ण उत्पन्न होता है।

इस तरह पंचम (मुनि) पद की कृष्णता में तृतीय आचार्य पद की योग्यता की पीतता मिलने पर कृष्ण वर्ण और पीत वर्ण की मिश्रणता से उत्पन्न हुआ नील वर्ण श्री उपाध्यायजी महाराज को अभिनव श्रेष्ठ शोभा देता है। इस हेतु से उपाध्याय पद की आराधना नील-लीला वर्ण से होती है।

(४) मन्त्रशास्त्र में कल्याण-कामना के लिये नील वर्ण से ध्यान करने की बात कही है। श्री उपाध्यायजी महाराज का नील वर्ण भी इसी कारण से है। आराधक के लिये उपाध्याय पद के ध्यान और उनकी आराधना का मुख्य आशय ज्ञान प्राप्त कर अशिवादि को दूर करने का

है। इसलिये उपाध्यायजी महाराज का भी नील वर्ण कहा है। उपाध्याय पद का ध्यान और आराधन भी नील वर्ण से होता है।

उपाध्याय पद का आराधन

इस पद की आराधना साधक के हृदय-मन्दिर में श्रुतज्ञान का दीपक जगा कर जड़-चैतन्य के भेद का दर्शन कराती है। सर्वत्र ज्ञान का प्रकाश फैलाती है। अज्ञान से अन्ध बने हुए को दर्शन और ज्ञान के दिव्य नयन प्रदान करती है तथा आत्मसाधना के साधकों की श्रेष्ठतम साथी है।

ऐसे बहुश्रुत महोपकारी महादानशील श्री उपाध्यायजी महाराज पच्चीस गुणों से समलंकृत हैं। इन गुणों को प्राप्त करने के लिये उनका आराधन पच्चीस भेद से किया जाता है।

उपाध्याय पद का आराधन श्री उपाध्यायजी महाराज की भक्ति करने से होता है। पढ़ने वाले को और पढ़ाने वाले को स्थान, आसन, वस्त्र आदि देते हुए और द्रव्य-भाव से भक्ति करते हुए जीव उपाध्याय पद की आराधना करते हैं।

उपाध्याय पद का आराधक

चौथे उपाध्याय पद की आराधना करते हुए आराधक आत्मा ऐसी भावना अपने हृदय-कमल में रखे कि मैंने भी जैनशासन प्राप्त किया है। पंच परमेष्ठि-भगवन्त की आराधना कर रहा हूँ। उसमें चतुर्थ पदे रहे हुए श्री उपाध्यायजी महाराज को भाँति **"मैं भी उपाध्याय पद के योग्य क्यों न बनूँ ?"** यथार्थ आराधन मनुष्य को उसी भूमिका पर ले जाता है। इस पद की आराधना से श्री वज्रस्वामी महाराज के शिष्यरत्न देव हुए।

उपाध्याय पद की भावना

हे पाठकप्रवर ! हे वाचकवर्य ! हे उपाध्याय भगवन्त ! श्रीनमस्कार महामन्त्र के पंच परमेष्ठियों में तथा श्रीसिद्धचक्र-नवपदजी में आपका चतुर्थ स्थान है और गुरुतत्त्व में आपका द्वितीय-दूसरा स्थान है।

विश्व में अज्ञान से अन्ध बने हुए जीवों को ज्ञान की दृष्टि देने वाले आप हो। नयनों में दिव्य ज्ञान का अंजन आंजने वाले आप हो। विश्व का दर्शन कराने वाले आप हो। आत्मा के साथ सम्बन्ध रखने वाले अष्ट कर्मों के घोर दुःखों का भान कराने वाले आप हो। कर्मों से मुक्त होने का उपाय बताने वाले भी आप हो। उत्तम जल,

दूध तथा अमृत के समान सूत्र, अर्थ तथा वैराग्यमय ज्ञान का पान भव्यजनों को कराने वाले आप ही हो। भविष्य में जैनशासन के सम्राट् समान आचार्य बनने वाले और तीसरे भव में मोक्षलक्ष्मी प्राप्त करने वाले आप हो।

चतुर्थ पद का आराधक आत्मा स्वयं आराधना करते हुए ऐसी भावना भावे कि–'**मैं भी उपाध्याय पद के योग्य क्यों न बनूं** ?' यही प्रार्थना के साथ शुभ कामना है।

[५] पंचम श्रीसाधुपद (मुनिपद)

卐 नमो लोए सव्व-साहूणं 卐

लोक में रहे हुए सर्व साधुओं को नमस्कार हो ।

"साहूण संसाहिअसंजमाणं ,
नमो नमो सुद्धदयादमाणं ।
तिगुत्तिगुत्ताण समाहियाणं ,
मुणिंदमाणंदपयट्ठियाणं ।"

卐

"खंते य दंते य सुगुत्तिगुत्ते ,
मुत्ते पसंते गुणजोगजुत्ते ।
गयप्पमाए हयमोहमाये ,
झाएह निच्चं मुणिरायपाए ।।"

卐

"व्रतषट्कं६ कायरक्षा६ पञ्चेन्द्रिय५-लोभनिग्रहः१ क्षान्तिः१ ।
भावविशुद्धिः१ प्रतिले-खनादिकरणे१ विशुद्धिश्च ।। १ ।।

संयमयोगः१ सुयोगोऽ-कुशलमनो१ वचः१ काय१संरोधः ।
१शीताद्याधिविषहन, मरणा१द्युपसर्गसहनञ्च ।। २ ।।

सप्तविंशतिसुगुणै-रेभिरन्यैश्च यो विभूषितः ।
जिनशासनप्रवेशे, द्वारसमो रम्यगुणनिवहः ।। ३ ।।"

श्रीसाधुपद (मुनिपद) की पहिचान

जो मोक्षमार्ग को साधते हैं वे साधु-मुनि कहलाते हैं। वे ही मोक्षमार्ग की साधना के साधनों को अपनाते हैं। उसमें अनुकूल साधनों को स्वीकारते हैं और प्रतिकूल बाधकों को दूर करते हैं।

मोक्षमार्ग में आगे बढ़ने के लिये संयम में स्थित मुनि सर्व संग को तज कर अपने जीवन को भावाचार्य और उपाध्यायजी महाराज के चरणों में समर्पित करते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूप एक ही रत्नत्रय द्वारा केवल मोक्षमार्ग की आराधना में लीन रहते हैं। आर्त्त और रौद्र रूप दुर्ध्यान का परित्याग कर, धर्म और शुक्लरूप शुभध्यान को स्वीकार करते हैं। ग्रहणशिक्षा और आसेवनशिक्षा को सीखने के लिये उद्यत रहते हैं। रत्नत्रयी का पालन करने के लिये अहर्निश मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति इन तीनों गुप्तियों से युक्त रहते हैं। मायाशल्य, निदानशल्य और मिथ्यादर्शनशल्य इन तीनों से रहित होते हैं। रसगारव, ऋद्धिगारव और शातागारव इन तीनों गारवों से विमुक्त रहते हैं।

उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप त्रिपदी को अनुसरते हैं। राजकथा, स्त्रीकथा, भक्तकथा तथा देशकथा इन चारों विकथाओं को नहीं करते हैं। क्रोध, मान, माया और

लोभ रूप चारों कषायों को जीतते हैं। दान, शील, तप और भाव रूप धर्म के चारों प्रकारों का अधिकार मुजब उपदेश देते हैं। मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा रूप पाँचों प्रमादों को परिहरते हैं।

स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय तथा श्रवणेन्द्रिय; इन पाँचों इन्द्रियों को वश (काबू) में रखते हैं। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वाउकाय, वनस्पतिकाय तथा त्रसकाय, इन षट्कायिक जीवों का रक्षण करते हैं। हास्य, रति, अरति, भय, शोक और जुगुप्सा (दुगंछा) इन छह नोकषायों से दूर रहते हैं। प्राणातिपातविरमण, मृषावादविरमण, अदत्तादानविरमण, मैथुनविरमण, परिग्रहविरमण इन पाँच महाव्रतों और रात्रिभोजनविरमण व्रत इन छह व्रतों के धारक होते हैं। इहलोक भय, परलोक भय, आदान भय, अकस्माद् भय, मरण भय, अपयश भय और आजीविका भय इन सात प्रकार के भयों से रहित होते हैं।

जातिमद, कुलमद, रूपमद, बलमद, लाभमद, श्रुतमद, तपमद और ऐश्वर्यमद इन आठ प्रकार के मदों से परे रहते हैं।

वसति आदि नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्तियों से अर्थात् नव वाडों से सर्वदा सुरक्षित हैं। क्षमा, मृदुता,

सरलता, निर्लोभता, तप, संयम, सत्य, शौच, आकिंचन और ब्रह्मचर्य, रूप दस प्रकार के यति-श्रमणधर्म को आदरते हैं। बारह प्रकार की भिक्षु पडिमा यानी साधु प्रतिमा तथा बारह प्रकार के तप, इन दोनों को आराधते हैं। इस प्रकार मोक्षसाधना की सामग्री द्वारा अनेक प्रकार से साधु महात्मा सुन्दर आत्मसाधना करते हैं।

संसार के सकल प्रपञ्चों को छोड़ कर, पापजन्य समस्त प्रवृत्तियों को त्याग कर, पाँच महाव्रतों की तथा छठे रात्रिभोजन व्रत की पालना रूप भीष्म प्रतिज्ञा कर, विश्व के सभी जीवों पर समभाववृत्ति धारण करने वाले, मन, वचन और काया से भी किसी का अनिष्ट और अहित नहीं चाहने वाले, समभाव साधना में संलग्न और सर्वदा अप्रमत्तदशा में संयमविशुद्ध अपने आदर्श जीवन में अहिंसा की सुन्दर सौरभ-सुगन्ध, सत्य का दिव्य प्रकाश, अचौर्य का नैसर्गिक आनन्द, ब्रह्मचर्य की अद्वितीय अनुपम शक्ति तथा अपरिग्रह का सम्यक् परिपालन, 'देहं वा पातयामि कार्यं वा साधयामि' वाक्य को अन्तःकरण में आत्मसात् कर जिन्होंने आत्मा के अन्तर शत्रुओं का सर्वथा विध्वंस-विनाश करने का दृढ़ निश्चय कर अपने आत्मोन्नतिकारक शुभ कार्य का प्रारम्भ किया है, ऐसी सर्वदा वन्दनीय, अनुमोदनीय एवं प्रशंसनीय साधुता के धारक अनगार-मुनिराज को श्रमण, निर्ग्रन्थ, साधु एवं

भिक्षु आदि अनेक नामों से पहिचाना जाता है।

साधुपद का आराधन सत्ताईस प्रकार से क्यों ?

कारण यही है कि--साधु २७ गुणों से समलंकृत है, इसलिये यह पंचम साधुपद सत्ताईस प्रकार से आराध्य है। शास्त्र में सत्ताईस प्रकार से २७ गुणों का प्रतिपादन किया गया है। उनमें से २७ गुणों का एक प्रकार निम्न-लिखित है--

प्राणातिपातविरमणादि युक्त छह व्रत, पृथ्वीकायादि छह जीवकाय की रक्षा, पाँच इन्द्रियों का निग्रह, लोभ त्याग, क्षमा, भावविशुद्धि, प्रतिलेखनादिक करण विशुद्धि, संयमयोग का सेवन, मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति, क्षुधादि बाईस परीषहों की सहन-तत्परता, तथा मरणान्त उपसर्गों की भी सहन-तत्परता अर्थात् मारणान्तिक पर्यन्त भी अडिगपना। ये सत्ताईस गुण साधु के कहे जाते हैं। इन सत्ताईस गुणों को प्राप्त करने के लिये सत्ताईस प्रकार से साधुपद का आराधन होता है।

पञ्चपरमेष्ठी में साधुपद का स्थान

श्रीनमस्कार महामन्त्र के पञ्चपरमेष्ठियों में साधुपद

का स्थान पाँचवाँ है। पंचपरमेष्ठियों में जैसे मार्गदर्शक गुण के योग से श्री अरिहन्तदेवों को, अविनाशी गुण के योग से श्री सिद्ध भगवन्तों को, आचार के योग से श्री आचार्य महाराजाओं को तथा विनयगुण के योग से श्री उपाध्याय महाराजाओं को पूज्य माना है, वैसे ही संयम की साधना में सहायक बनने के योग से श्री साधु महाराजाओं को भी पूज्य माना है। श्रीवीतरागदेव के जैनशासन में पंचम पदे साधुपद को भी पूज्य गिनते हैं। इसलिये श्रीवीतरागदेव के शासन को प्राप्त किये हुए आत्माओं को साधु परमेष्ठी भी सदा सेव्य ही लगते हैं। श्रीसिद्धचक्र के नौ पदों में भी साधुपद का स्थान पंचम ही है।

साधुपद की आराधना श्यामवर्ण से क्यों ?

जैसे श्री अरिहन्त पद की आराधना श्वेतवर्ण से, श्री सिद्धपद की आराधना लालवर्ण से, श्री आचार्य पद की आराधना पीतवर्ण से तथा श्री उपाध्याय पद की आराधना नीलवर्ण से होती है, वैसे ही श्री साधुपद की आराधना श्यामवर्ण से होती है। श्यामवर्ण से आराधना होने का कारण यह है कि—

(१) पच परमेष्ठी पैकी तृतीय आचार्यपद रूप सुवर्ण-सोना की परीक्षा पचम साधुधर्म रूप कसौटी से होती है। कसौटी का पाषाण श्यामवर्ण का होता है, अतः साधुपद

की आराधना भी श्याम-कृष्णवर्ण से होती है।

(२) जैसे जैनशासन-साम्राज्य के महान् सम्राट् के समान श्री अरिहंतदेव हैं, राष्ट्रध्वज के समान श्री सिद्धभगवन्त हैं, सेना-सैन्य के प्रधान अधिपति के समान श्री आचार्य महाराज हैं तथा नायक प्रधान के समान श्री उपाध्याय महाराज हैं, वैसे ही सैनिक के समान श्री साधु महाराज हैं। वह सैन्य जितना बलवान, मजबूत और विशाल होता है उतना ही जैनशासन-साम्राज्य बलवान, मजबूत और विशाल होता है। सेना-सैन्य की बलवत्ता और मजबूती का सारा आधार उसकी युद्ध-सामग्री पर निर्भर है। सैनिक के सभी शस्त्रास्त्र लोहे के बने हुए लोहमय होते हैं। जब सैनिक अपने शरीर पर लोहे का मजबूत कवच धारण कर शस्त्रधारी बन कर युद्ध के मैदान पर सन्मुख आता है, तब शत्रु को साक्षात् श्यामवर्ण वाला यमराज जैसा लगता है। साधुपद का श्याम-कृष्णवर्ण भी कर्म-साम्राज्य के सुभट राग-द्वेष मोहादि शत्रुओं के सामने यमराज के समान कवचधारी सुभट-योद्धा का भाव प्रदर्शित करता है। पंचम पदे रहे हुए साधुओं में भी अपने अभ्यन्तर के राग-द्वेष-मोहादि शत्रुओं के प्रति पूर्ण विद्वेष वृत्ति जागृत रहती ही है। इस वृत्ति का पोषक वर्ण भी श्याम-कृष्ण है। इसी भाव को प्रदर्शित करने के लिये पंचम साधुपद का वर्ण श्याम-कृष्ण कहा है।

(३) संयमी साधु ज्ञान, ध्यान और क्रिया की साधना में सर्वदा सतत प्रयत्नशील रहते हैं। ज्ञान-ध्यानादिक में सतत श्रमशील ऐसे साधुओं के श्रम को स्पष्ट व्यक्त करने वाला वर्ण श्याम-कृष्ण है। इस कथन से 'श्याम-कृष्णवर्ण श्रमसूचक है' ऐसी प्रतीति सहज भाव से समझ में आ जाती है।

(४) संयम धर्म की आराधना में मग्न ऐसे साधु की बाह्य मलिनता से दुगुंछा-जुगुप्सा नहीं करनी चाहिए। कारण कि—शरीर या वस्त्र मलिन होने से उनकी साधुता में किसी प्रकार की क्षति नहीं आ सकती। साधुता की क्षति तो वहाँ होती है जहाँ शरीर को स्नान कराकर वस्त्र को धोकर, उनकी टापटीप करने में गहरी रुचि होती है। मलिनता से घृणा, चिढ़ दूर करने के लिये साधुओं का अर्थात् साधुपद का वर्ण श्याम-कृष्ण कहा है।

(५) पंच परमेष्ठियों में श्रीअरिहंतदेव, श्रीसिद्धभगवंत, श्रीआचार्यमहाराज, श्रीउपाध्यायमहाराज, तथा श्री साधुमहाराज, पाँचों गुणी हैं। उनमें अन्तिम साधुपद है और वर्णों में अन्तिम श्याम-कृष्णवर्ण है। अन्तिम पद के साथ अन्तिम वर्ण का मेल भी सुयोग-योग्य-उचित है। वर्णों का विकास भी उत्तरोत्तर इस क्रम से होता है। इस अभिप्राय से भी पंचम साधुपद का वर्ण श्याम-कृष्ण ही कहा है, सो योग्य है।

(६) जैसे मन्त्रशास्त्र में भी विद्वेष भाव घातक वृत्ति के लिये श्याम-कृष्णवर्ण समर्थ कहा है, वैसे ही इधर भी राग, द्वेष और मोहादि शत्रुओं के सामने साधुओं में पूर्ण विद्वेष वृत्ति जागृत होने के कारण इस वृत्ति का पोषक वर्ण श्याम-कृष्ण ही साधुपद का माना है, वह उचित है। साधुपद का श्याम-कृष्णवर्ण अतिभाव सूचक है।

साधु शब्द की व्याख्या, व्युत्पत्ति और अर्थ

'राधृंच् साधृंच् संसिद्धौ' 'राध्' और 'साध्' धातुयें संसिद्धि अर्थ में आती हैं। 'साध्' धातु से कृदन्त का उण्' प्रत्यय संयुक्त हुआ, तब साध् + उण् बना। ण् की इत् संज्ञा होकर, ण् का लोप होने पर ध् में उ मिलने पर 'साधु' शब्द बनता है। इस शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ इस तरह है। 'साध्नोतीति साधुः' जो मोक्षमार्ग को साधे वे साधु कहलाते हैं। अर्थात् जो मोक्षमार्ग की साधना के अनुकूल साधनों को स्वीकार करते हैं और प्रतिकूल या बाधक साधनों को दूर करते हैं, वे सभी साधु कहलाते हैं। तथापि कहा है कि---

(१) जो मोक्ष के साधक योगों को साधे वह साधु नाम से कहा जाता है।

(२) जो मोक्ष की साधनभूत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान

और सम्यग्चारित्र रूप रत्नत्रयी को आराधे वह साधु कहा जाता है।

(३) जो मोक्षमार्ग के मुसाफिर-प्रवासियों को सहाय-सहायता करे वह साधु कहा जाता है।

(४) जो विश्व के समस्त जीवों को अर्थात् जीवमात्र को अभय देवे वह साधु कहा जाता है।

(५) जो ज्ञान, ध्यान, तप, जप तथा संयमादिक में सदैव सावधान-तत्पर रहे वह साधु कहा जाता है।

(६) जो पंच महाव्रतों का और छठे रात्रिभोजन व्रत का पालन करे वह साधु कहा जाता है।

(७) जो कंचन और कामिनी आदि का सर्वथा त्यागी हो वह साधु कहा जाता है।

(८) जो सभी प्रकार के उपसर्गों-उपद्रवों और परीषहों को समताभाव से सहन करे वह साधु कहा जाता है।

(९) जो सुख और दुःख में, शत्रु और मित्र में, मान और अपमान में, लाभ और अलाभ में समचित्त रहे वह साधु कहा जाता है।

(१०) जो सयम के सत्ताईस गुणों का धारक हो वह साधु कहा जाता है।

अनेक उपमाओं से समलंकृत साधु-श्रमण

शास्त्रों में साधु-श्रमणों को अनेक उपमाओं से समलंकृत किया गया है। जैसे---

(१) सच्चे साधु-श्रमण **'अहिंसा-सिन्धु'** अर्थात् दया के सागर हैं।

(२) सच्चे साधु-श्रमण **'त्रिभुवन-बन्धु'** अर्थात् स्वर्ग-मृत्यु-पाताल लोक के सभी प्राणियों को बन्धु के समान हैं।

(३) सच्चे साधु-श्रमण अठारह सहस्र शीलांगरथ को वहन करने में **'उत्तम वृषभ'** अर्थात् अच्छे बैल के समान हैं।

(४) सच्चे साधु-श्रमण **'षट्पद-भ्रमर'** के समान हैं। *[जिस तरह पुष्प-फूल पर (रस चूसने के लिये) बैठा हुआ* भ्रमर पुष्प को किलामणा-पीड़ा न पहुंचा कर रस लेकर अपनी आत्मा को तृप्त करता है, उसी तरह साधु-श्रमण भी गृहस्थों के घर से निर्दोष भिक्षा-गोचरी लेते हैं। इसलिये वे भ्रमर के समान कहे गये हैं।]

(५) शास्त्र में सच्चे साधु-श्रमण को **'कुक्षि-संबल'** कहा गया है। कुक्षि-संबल का अर्थ है--अपना उदर ही है संबल जिसका अर्थात् साधु-श्रमण कभी अशन-पान-खादिम

स्वादिम इन चार प्रकार के आहारों का संग्रह नहीं रखते हैं। इसलिये वे **कुक्षिसंबल** कहे जाते हैं।

(६) सच्चे साधु-श्रमण **'अगंधन कुल के सर्प'** समान हैं। [जैसे अगंधनकुल का सर्प वमन किए हुए (अर्थात् उलटी किये हुए) विष को कभी नहीं चूसता है, वैसे ही मुनि-श्रमण भी वमे हुए भोगों को कभी नहीं इच्छते।]

(७) सच्चे साधु-श्रमण **'मेरुपर्वत'** के समान हैं। [जैसे मेरु पर्वत स्थिर और निष्कम्प है, वैसे मुनि-श्रमण भी स्वयं पर आने वाले परीषहों तथा उपसर्गों के बीच भी मेरु पर्वत के सदृश स्थिर और निष्कम्प रहते हैं।]

(८) जैनशासन में साधु-श्रमण महान् शूरवीर, वफादार सैनिक-सुभट के समान हैं। [जैनशासनरूपी महान् साम्राज्य, आचार्यरूपी महाराजा, उपाध्यायरूपी मन्त्रीश्वर होने पर भी चतुर्विधसंघरूपी प्रजा का संरक्षण करने वाले महान् शूरवीर वफादार सैनिक-सुभट की तरह साधु-श्रमण हैं।]

(९) सच्चे साधु-श्रमण आधि, व्याधि, उपाधिरूप संसार के त्रिविध तापों से संतप्त प्राणियों के लिये (विसामा के घटादार) **'विशाल वट वृक्ष'** के समान हैं।

(१०) सच्चे साधु-श्रमण संसारवर्त्ती प्राणियों को

भवसिन्धु यानी संसार-सागर से पार कराने के लिये **'सुन्दर स्टीमर-नौका'** के समान हैं।

(११) सच्चे साधु-श्रमण संसारवर्त्ती प्राणियों को मोक्ष की सच्ची राह बताने वाले, त्यागधर्म की प्रेरणा का पान कराने वाले तथा विश्व के सभी जीवों का परिपालन करने वाले **'उत्तम माता-पिता'** के समान हैं।

(१२) सच्चे साधु-श्रमण सद्धर्मरूपी फैक्ट्री का सर्वोत्तम माल बेचने वाले **'सेल्समेन'** हैं। [सद्धर्म रूपी फैक्ट्री के समान **श्रीअरिहंत परमात्मा** हैं, उस फैक्ट्री में बनते हुए माल के समान **श्रीसिद्धभगवंत** हैं, फैक्ट्री के मैनेजर समान **श्रीआचार्य महाराज** हैं तथा फैक्ट्री के (सूत्रादिक) माल को बेचने वाले **सेल्समेन** के समान साधु-श्रमण हैं।]

ऐसी अनेक उपमाओं से और अनेक सद्गुणों से समलंकृत पंचम पदे रहे हुए साधु-श्रमण संसार के पूर्ण त्यागी, महावैरागी, मुक्ति के अभिलाषी, सुसंयमी, सुज्ञानी, सुतपस्वी, सुध्यानी, मेरु पर्वत के जैसे धीर, समुद्र-सागर के जैसे गम्भीर, सूर्य के जैसे तेजस्वी-प्रतापी, चन्द्र के जैसे सौम्य-शीतल, भारण्ड पक्षी के जैसे अप्रमत्त, विश्व के सच्चे अणगार, सच्चे शरणगार, सच्चे आधार, सच्चे तारणहार, सच्चे उपकारी हैं। इसलिये वे जनता के लिए

वन्दनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सेवनीय, स्मरणीय एवं आदरणीय हैं। इतना ही नहीं, किन्तु स्वर्ग-देवलोक के देवों और देवेन्द्रों को भी वन्दनीय एवं सेवनीय-पूजनीय हैं।

पंच परमेष्ठी में मूल पद कौन सा है ?

श्रीनमस्कार महामन्त्र के प्रारम्भिक श्रीअरिहन्तादिक चारों पदों का मूल 'साधुपद' ही है। अर्थात् **'नमो लोए सव्व साहूणं'** यही मूल पद है। संसारी जीव जहां तक पंचम साधुपद को प्राप्त नहीं करता है वहां तक आगे के अन्य अरिहन्तादि पदों को भी प्राप्त नहीं कर सकता है। प्रथम मूल साधुपद प्राप्त होने के पश्चाद् उपाध्यायपद, आचार्यपद, अरिहन्तपद एवं अन्त में सिद्धपद प्राप्त हो सकता है। साधु से अरिहन्त बन सकते हैं, साधु से सिद्ध बन सकते हैं, साधु से आचार्य बन सकते है और साधु से उपाध्याय भी बन सकते हैं; कारण कि सबका मूल साधु-पद ही है।

साधु के अन्य नाम

जैन शास्त्रों में साहु--साधु महाराज को अन्य नामों से भी पहिचाना जाता है। जैसे--अणगार, निर्ग्रन्थ, श्रमण, भिक्षुक, मुनि, व्रती तथा संयमी इत्यादि।

जैनधर्म–जैनशासन के मुनि आदि नाम से समलंकृत ऐसे साधु महाराज समस्त विश्व के साधुओं में सर्वोत्कृष्ट सर्वोत्तम, सर्वोच्च कोटि के माने गये हैं।

साधु के अनेक भेद

जैनधर्म--जैनशासन में गुणधारक साधु-मुनिराज उपाधिभेद से भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रतिपादित किये गये हैं। जैसे–ज्ञानगुण से वे मति-श्रुतज्ञानी है, एक-दो-तीन-चार-पांच-छह-सात-आठ-नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह-चौदह पूर्व के ज्ञानी हैं; सूत्र, अर्थ और तदुभय के ज्ञान वाले हैं, अवधिज्ञानी हैं, मनःपर्यवज्ञानी हैं तथा केवलज्ञानी हैं। संयम-चारित्र गुण से **सामायिक चारित्रवन्त** हैं, **छेदोपस्थापनीय चारित्रवन्त** हैं, **परिहारविशुद्धि चारित्रवन्त** हैं, **सूक्ष्मसांपराय चारित्रवन्त** हैं और **यथाख्यात चारित्रवन्त** हैं। अर्थात् इन पांचों चारित्रों में से कोई भी चारित्रवन्त हैं। बकुश, कुशील, पुलाक, निर्ग्रन्थ और स्नातक इन पांचों में से किसी भी चारित्र की आराधना करने वाले हैं। ऐसे साधु-महाराजों में से भी कोई उपशम श्रेणी आरूढ़ हो, कोई क्षपकश्रेणी आरूढ़ हो, कोई जंघाचारण हो, कोई विद्याचारण हो, कोई स्वयंबुद्ध हो, कोई प्रत्येकबुद्ध हो, कोई बुद्धबोधित हो, कोई सर्वज्ञ वीतराग श्रीतीर्थंकर परमात्मा हो, श्रुतकेवली गुणवन्त श्री गणधर भगवन्त हो, जिन-

कल्पी हो, युगप्रधान हो, आचार्यदेव हो, उपाध्याय महाराज हो, पंन्यास हो, प्रवर्तक हो, गणावच्छेदक हो, गणी हो, स्थविर हो, सामान्य मुनिपदधारी हो, सालंबन हो, निरालंबन हो, ज्ञानी हो, दर्शनी हो, चारित्री हो, ध्यानी हो, मौनी हो, त्यागी हो, तपस्वी हो, वैयावच्चकारी हो, सेवाभावी हो, भक्तिवन्त हो, क्षुल्लक हो, बाल हो, ग्लान हो, वृद्ध हो, भद्रिक-सरल परिणामी हो, छठे गुणठाणा से चौदहवें गुणठाणा तक में कोई भी गुणठाणे विराजित हो, ढाईद्वीप में तथा पन्द्रह कर्मभूमिक्षेत्रों की १७० विजयों में किसी भी स्थल में हो, उन सभी का मूल संयम-चारित्र की अपेक्षा से पंचम साधुपद में ही है। संक्षेप में उनका नामनिर्देशपूर्वक उल्लेख किया है। भूतकाल में अनंतानंत मुनि महाराजा हो गये हैं, वर्त्तमानकाल में अढ़ीद्वीप में विचरते हैं, और भविष्यकाल में भी अनंतानंत मुनिमहाराजा होने वाले हैं।

सर्वक्षेत्र के और सर्वकाल के श्रीनमस्कार महामन्त्र के पंचम **'नमो लोए सव्व साहूणं'** पद की योग्यता प्राप्त किये हुए ऐसे सर्व भाव साधुओं को सर्वदा हमारा भावपूर्वक कोटि-कोटिशः वन्दन एव नमस्कार हो।

श्री साधुपद का नमस्कारात्मक वर्णन

प्राकृत भाषा में विरचित **'सिरिसिरिवाल कहा'** ग्रंथ में

ग्रंथकार महर्षि विद्वान् **आचार्यश्री रत्नशेखरसूरीश्वर जी महाराजश्री** ने **श्रीनवपद** का वन्दनापूर्वक अति सुन्दर संक्षिप्त वर्णन किया है। उसमें पंचम श्रीसाधुपद का वर्णन करते हुए कहा है कि—

जे दंसणनाणचरित्त,-रूवं रयणत्तएण इक्केण ।
साहंति मुक्खमग्गं, ते सव्वे साहुणो वन्दे ।। ५७ ।।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूप अनुपम रत्नत्रयी द्वारा जो मुक्तिमार्ग का साधन करते हैं ऐसे **सर्व साधुओं** को मैं वन्दन करता हूँ ।। ५७ ।।

गयदुविहदुट्ठझाणा, जे झाइअ धम्मसुक्कझाणाय ।
सिक्खंति दुविह सिक्खं, ते सव्वे साहुणो वंदे ।। ५८ ।।

जो आर्त्त और रौद्र दोनों प्रकार के दुष्टध्यान छोड़ कर, धर्म और शुक्ल दोनों प्रशस्त ध्यान ही ध्याते हैं तथा ग्रहण-शिक्षा व आसेवनशिक्षा का अभ्यास करते हैं, उन **सर्व साधुओं** को मैं वन्दन करता हूँ ।। ५८ ।।

गुत्तित्तएण गुत्ता, तिसल्लरहिया तिगारवविमुक्का ।
जे पालयंति तिपई, ते सव्वे साहूणो वंदे ।। ५९ ।।

तीन गुप्ति से गुप्त, तीन शल्य से रहित और तीन गारव से विमुक्त होते हुए जो जिनाज्ञा का पालन करते हैं, उन **सर्व साधुओं** को मैं वन्दन करता हूँ ।। ५९ ।।

चउविहविगहविरत्ता, जे चउविहचउकसायपरिचत्ता ।
चउहा दिसंति धम्मं, ते सव्वे साहुणो वंदे ।। ६० ।।

चार प्रकार की विकथा से विरक्त तथा सर्व प्रकार के कषायों के त्यागी होते हुए जो दानादिक चार प्रकार के धर्म की देशना देते है उन **सर्व साधुओं** को मैं वन्दन करता हूँ ।। ६० ।।

उज्झियपंचपमाया, निज्जियपंचिंदियाय पालंति ।
पंचेवय समिइओ, ते सव्वे साहुणो वंदे ।। ६१ ।।

पांच प्रकार के प्रमाद के परिहारी होकर पांच इन्द्रियों का दमन करते हुए जो पांच समितियों का पालन करते हैं उन **सर्व साधुओं** को मैं वन्दन करता हूँ ।। ६१ ।।

छज्जीवनिकायरक्खण,-निउणा हासाइछक्कमुक्का जे ।
धारंति य वयछक्कं, ते सव्वे साहुणो वंदे ।। ६२ ।।

छह जीवनिकायों के रक्षण करने में निपुण और हास्यादिक षट्क से मुक्त होते हुए जो छह व्रतों को प्राण की तरह धारण करते हैं ऐसे उन **सर्व साधुओं** को मैं वन्दन करता हूँ ।। ६२ ।।

जे जियसत्तभया मय,-अट्ठमया नवबि बंभगुत्तिओ ।
पालंति अप्पमत्ता, ते सव्वे साहुणो वंदे ।। ६३ ।।

जो सप्त भयों के जेता हैं, आठ मदों को टाले हुए हैं और अप्रमत्त होकर नव प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्तियों का पालन करते हैं ऐसे **सर्व साधुओं** को मैं वन्दन करता हूँ ।। ६३ ।।

दसविहधम्मं तह, बारसेव पडिमाओ जे अ कुव्वंति ।
बारसविहं तवोविअ, ते सव्वे साहुणो वंदे ।। ६४ ।।

दस प्रकार के यतिधर्म को, द्वादश (बारह) प्रकार की पडिमा को तथा द्वादश (बारह) प्रकार के तप को जो आराधते हैं, ऐसे **सर्व साधुओं** को मैं वन्दन करता हूँ ।। ६४ ।।

जे सत्तरसंजमंगा, उव्वूढा ढारससहस्ससीलंगा ।
विहरंति कम्मभूमिसु, ते सव्वे साहुणो वंदे ।। ६५ ।।

सत्रह प्रकार के संयम को पालने वाले तथा अठारह हजार शीलांग को धारण करते हुए जो कर्मभूमि में विचरते हैं ऐसे **सर्व साधुओं** को मैं वन्दन करता हूँ ।।६५।।

मंगलरूप साधुमहाराज

शास्त्र में चार पदार्थ मंगलरूप प्रतिपादित किये गये हैं। उनका नाम-निर्देश इस प्रकार है—"**चत्तारि मंगलं—अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपन्नत्तो**

धम्मो मंगलं।" चार पदार्थ मंगलरूप हैं–(१) अर्हन्त-अरिहन्त मंगलरूप हैं, सिद्ध मंगलरूप हैं, साधु मंगलरूप हैं, तथा सर्वज्ञ-केवलिप्ररूपित श्रुत-चारित्रात्मक धर्म मंगलरूप है। अर्थात्--संसार में अरिहंत, सिद्ध, साधु और सर्वज्ञ-भाषित धर्म महामंगलकारी हैं।

लोकोत्तम साधुमहाराज

शास्त्र में जैसे वे चार पदार्थ मंगलरूप प्रतिपादित किये गये हैं वैसे ही लोकोत्तम भी प्रतिपादित किये गये हैं।

"चत्तारि लोगुत्तमा–अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो।" चार पदार्थ लोक में उत्तम हैं--(१) सर्व अर्हन्त-अरिहन्त लोकोत्तम हैं, (२) सर्व सिद्ध लोकोत्तम हैं, (३) सर्व साधु लोकोत्तम हैं, तथा (४) सर्वज्ञ प्ररूपित धर्म लोकोत्तम है। अर्थात्--विश्व में अरिहंत परमात्मा, सिद्ध भगवन्त, साधु और सर्वज्ञ-केवलिभाषित धर्म लोकोत्तम हैं।

शरण ग्रहण योग्य साधुमहाराज

शास्त्र में जैसे वे चार पदार्थ मंगलरूप तथा लोकोत्तम हैं वैसे ही शरण-ग्रहण योग्य भी ये चार ही प्रतिपादित किये गये हैं।

"चत्तारि सरणं पवज्जामि–अरिहंते सरणं पवज्जामि, *सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलि-पन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ।"* चार पदार्थों का शरण मैं ग्रहण करता हूं। (१) अर्हन्त–अरिहन्त भगवन्तों का शरण मैं अंगीकार करता हूं, (२) सिद्ध भगवन्तों का शरण मैं स्वीकार करता हूं, (३) सुसाधुओं का शरण मैं ग्रहण करता हूं तथा (४) केवलिभगवन्त द्वारा प्ररूपित धर्म का भी शरण मैं स्वीकारता हूँ। अर्थात्–जगत् में अरिहन्त भगवन्तों का, सिद्धभगवन्तों का, साधुमहाराजाओं का, और सर्वज्ञ-केवलि-भाषित धर्म का मैं शरण स्वीकारता हूँ।

सारांश––संसार में अरिहंत, सिद्ध, साधु और सर्वज्ञ-केवलि भाषित धर्म महामंगलकारी, लोकोत्तम और शरण लेने योग्य हैं। इसलिये इन चारों बातों को मैं अपने हृदय में धारण करता हूँ।

साधु-शरण के बारे में और भी कहा है कि––

महुअरवित्ति जे, बायालीसदोसपरिसुद्धं ।
भुंजंति भत्तापणं, ते मुणिणो हुंतु मे सरणं ।। १ ।।

मधुकरवृत्ति से बयालीस दोषों से रहित परिशुद्ध भोजन तथा जल-पानी को जो मुनि वापरते हैं उन मुनियों का शरण मुझे प्राप्त हो ।। १ ।।

पंचिंदियदमणपरा, निज्जिअकंदप्पदप्पपसरा ।
धारंति बंभचेरं, ते मुणिणो हुंतु मे सरणं ।। २ ।।

पंच इन्द्रियों के दमन में तत्पर, कन्दर्प के दर्प को जीतने वाले तथा निर्मल ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले मुनियों का शरण मुझे प्राप्त हो ।। २ ।।

जे पंचसमिइसमिआ, पंचमहव्वयभरुव्वहणवसहा ।
पंचमगइअणुरत्ता, ते मुणिणो हुंतु मे सरणं ।। ३ ।।

जो पंच समितियों से युक्त हैं, पंच महाव्रतों के भार को वहन करने में वृषभ के समान हैं तथा पंचम गति (मोक्ष) के प्रति अनुराग वाले हैं, ऐसे मुनियों का शरण मुझे प्राप्त हो ।। ३ ।।

जे चत्तसयलसंगा, सममणितणमित्तासत्तुणो धीरा ।
साहंति मुक्खमग्गं, ते मुणिणो हुंतु मे सरणं ।। ४ ।।

जिन्होंने सब संग को छोड़ दिया है, जो मणि और तृण तथा मित्र और शत्रु के प्रति समदृष्टिवाले हैं तथा जो धीरता से मोक्षमार्ग को साधते हैं, ऐसे मुनियों का शरण मुझे प्राप्त हो ।। ४ ।।

साधु भगवन्त का स्वरूप और स्थान

हे साधु भगवन्त ! जैनदर्शन के श्रीनमस्कार महामन्त्र

में तथा श्रीसिद्धचक्र-नवपद में आपका पाँचवाँ स्थान है। आप पंच महाव्रतादि संयम के योगों में सर्वदा निमग्न रहते हैं। आपकी साधना का लक्ष्य बिन्दु सत्चिदानंद-स्वरूप शाश्वतसुख शाश्वतपद-परमपद प्राप्ति का है। वहाँ तक पहुंचने के लिये आप सतत प्रयत्न-उद्यतशील रहते हैं। आप अप्रमत्तदशा में और आत्मरमणता में नित्य रमते हैं।

विश्व भर में वर्त्तमान धर्मगुरुओं में मुख्य-टोच के स्थान पर विराजमान आप ही हैं। विश्व के समस्त प्राणियों के हितों की सुरक्षा के बारे में आशा की किरण के समान आप ही हैं। सर्वज्ञ विभु श्री तीर्थंकर परमात्मा प्ररूपित धर्मतीर्थ के अहिंसक मार्ग के रक्षणहार आप ही हैं, इतना हीं नहीं किन्तु उनकी सुव्यवस्था और उनके प्रतीकों को विश्व में चिरस्मरणीय रखने वाले सद्गुरु आप ही हैं। जो आपका सही रूप में ध्यान धरते हैं, उनमें साधुता का प्रगटीकरण हो जाता है।

धन्य है आपको, आपके अनुपम संयम को, अपूर्व समता को और सुन्दर समाधि को। आपकी अद्भुत कोटि की अनुपम साधना और उत्तम आराधना अहर्निश अनुकरणीय एवं अनुमोदनीय-प्रशंसनीय है। आप कर्मों के शिकजे में पड़े हुए प्राणियों को छुड़ाने वाले और पाप में

डूबती हुई दुनिया को बचाने वाले अद्वितीय अणगार-साधु भगवन्त हो। दिन-प्रतिदिन सुवर्ण की भाँति चढ़ते रंग वाले हो।

साधुपद का आराधन

सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र रूप मोक्ष-मार्ग के साधन को अपनाने वाले साधु भगवन्त पंचमहाव्रतों का और छठे रात्रिभोजन त्याग व्रत का पालन जीवन पर्यन्त करते हैं। साधु के सत्ताईस गुणों तथा चरणसित्तरी और करणसित्तरी के गुणों को प्राप्त करने के लिये सर्वदा उद्यमवन्त होते हैं। मात्र संयमसाधन के लिये बयालीस दोष रहित आहार-पानी ग्रहण करते हैं। वीतराग विभु जिनेश्वर-तीर्थंकर परमात्मा की आज्ञा के पालक ऐसे साधु-मुनि महाराज की भक्ति-सेवा करने से इस पंचम साधुपद का आराधन अवश्य हो सकता है।

श्री जैनधर्म की सभी आराधनायें भावों की मुख्यता पर है। भाव की प्राप्ति श्री वीतरागदेव के साधु-मुनिपने बिना प्रायः अशक्य ही गिनी जाती है। मोक्ष में जाने के लिये राजमार्ग जैनमुनिदशा ही समझना चाहिये।

साधुपद के आराधक की भावना

श्रीसिद्धचक्र-नवपद के पंचम साधुपद की आराधना

करने वाला आराधक अपने अन्तःकरण हृदय में हार्दिक तीव्र अभिलाषा रखते हुए **'शुद्ध साधुपद मुझको कब प्राप्त हो?'** ऐसी भावना अहर्निश करे। इसके समर्थन में पंन्यास श्री पद्मविजयजी महाराज विरचित श्री नवपदजी की पूजा के अन्तर्गत आठवीं 'चारित्रपदपूजा' में भी कहा है कि—

'संयम कब मिलेश ? सनेही प्यारा हो ?'

हे स्नेही मित्र ! मुझको संयम (चारित्र) कब मिलेगा ?

साधुपद की आराधना से मुझमें साधुपद प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त हो। समस्त गुणों का आधारभूत यही पद है। इसलिये कहा जाता है कि साधुपद के समान कोई भी पद विश्व में नहीं है। इस पद की विधिपूर्वक योग्य-उचित आराधना करने वाले आराधक को ऐसी ही योग्यता प्राप्त हो जाय, तभी वह आराधन सफल होता है। इस पद की आराधना से **रोहिणी** सती-शिरोमणि हुई।

विश्व के सभी प्राणी साधुपद के आराधक बन कर और उसका ही अनुसरण कर आत्मा की उन्नति एवं स्वतन्त्रता प्राप्त कर, परमपद को प्राप्त करें, यही भावना है।

[६] श्रीदर्शनपद

卐 नमो दंसणस्स 卐

'जिणुत्तातत्ते रुइलक्खणस्स,
नमो नमो निम्मलदंसणस्स ।'

[जिनेश्वर भगवान द्वारा कहे हुए तत्त्वों में रुचि रूप लक्षण वाले निर्मल दर्शन-सम्यक्त्व को वारंवार नमस्कार हो ।]

श्रद्धा४ लिङ्ग ६ विनयाः१० शुद्धि३ दोषाः५ प्रभावना८ भणिताः।
भूषण५-लक्षण५-यतना६ आकारा६ भावना६ ध्येयाः ।।१।।

स्थाना६ न्येतैर्भेदै-रलङ्कृतं दर्शनमतिविशुद्धम् ।
ज्ञानक्रिययोर्मूलं, शिवसाधनमात्मसौख्यमिदम् ।। २ ।।

जं दव्वछक्काइसु सद्दहाणं, तं दंसणं सव्वगुणप्पहाणं ।
कुग्गाहवाही उवयंति जेणं, जहा विसुद्धेण रसायणेणं ।।३।।

श्रीदर्शनपद का स्वरूप

श्रीसिद्धचक्र के नवपद पैकी का यह **'श्री सम्यग् दर्शन पद'** छठा है । आत्मा के समस्त गुणों में मुख्य गुण यही **'सम्यग् दर्शन'** है । सम्यक्त्वहीन ज्ञान अज्ञान कहा जाता

है। सम्यक्त्वहीन चारित्र संसार का अन्त कभी नहीं कर सकता है। सम्यक्त्वहीन की तपश्चर्या आत्मकल्याण के बदले स्व और पर का अकल्याण करने वाली होती है। सम्यक्त्व बिना विनय और विवेक भी संसार की वृद्धि के कारण होते हैं।

सम्यक्त्व बिना आचार्य आचार्य नहीं कहलाते हैं, उपाध्याय उपाध्यायपदे स्थित नहीं रह सकते हैं तथा साधु साधुता को नहीं साचव सकते हैं। कारण यही है कि श्रीगुरुतत्त्व का मूल आधार अर्थात् आचार्य, उपाध्याय और साधु इन तीनों पदों का मूल आधार यही सम्यग्-दर्शन गुण है। सम्यग्दर्शन का इतना अनुपम प्रभाव है कि इसके बिना कभी किसी आत्मा की मुक्ति नहीं हो सकती है। विश्व में तात्त्विक संपत्ति रूप सुदेव, सुगुरु और सुधर्म हैं। उनके प्रति अन्तरंग रुचि होना, उसका नाम **'सम्यक्त्व या सम्यग्दर्शन'** है। इस सम्बन्ध में कहा है कि—

"देवत्वधीर्जिनेष्वेव, मुमुक्षुषु गुरुत्वधीः।
धर्मधीरार्हतां धर्मे, तत्स्यात् सम्यक्त्वदर्शनम् ।। १ ।।"

[श्रीउपदेशप्रासाद, व्याख्यान-२, श्लोक-१]

जिनेश्वरों के प्रति देवबुद्धि रखना तथा संसार से अपनी आत्मा को मुक्त करने की इच्छा रखने वाले मुमुक्षुओं में

गुरु स्थापन करना और दुर्गति में पड़े हुए जीवों को उबारने वाले ऐसे जिनेश्वर भाषित धर्म में ही धर्मपन की श्रद्धा रखना, वह **'सम्यग्दर्शन'** कहलाता है ।

जैनदर्शन में शुद्धदेव (सत्यदेव), शुद्धगुरु (सत्यगुरु) और शुद्धधर्म (सत्यधर्म) के तत्त्व का जो संशयादिक रहित सम्यग्ज्ञान होता है, उसे ही सम्यग्दर्शन कहते हैं । वह ज्ञान और दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय, उपशम या क्षयोपशम से प्राप्त होता है । अर्थात् विपर्यास और कदाग्रह की वासना रूप अनादिकालीन मिथ्यात्व जिससे दूर होता है तथा जिनेश्वरकथित जीवाऽजीवादि तत्त्वों पर सहज भाव से श्रद्धा होती है, वह उत्कृष्ट निधानरूप सम्यग्दर्शन कहा जाता है । जब आत्मा के साथ अनादिकाल से लगे हुए कर्म की स्थिति अन्तः कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण होती है, तब ही [卐] **सम्यक्त्व** प्राप्त होता है । अर्थात् मिथ्यात्व

[卐] आत्मा को अपने कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति को तोड़ने के लिए जोरदार पुरुषार्थ करना पड़ता है । मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ७० कोटाकोटि सागरोपम ज्ञानावरणीयकर्म-दर्शनावरणीयकर्म-वेदनीयकर्म तथा अंतरायकर्म की ३० कोटाकोटि सागरोपम एवं नाम कर्म और गोत्र कर्म की २० कोटाकोटि सागरोपम की होती है । इन सभी उत्कृष्ट स्थितियों का ह्रास-विनाश करके जब आत्मा ज्ञानावरणीयादि इन सातों कर्मों की स्थिति को एक अन्तः कोटाकोटि सागरोपम की कर दे तब आत्मा यथाप्रवृत्तिकरण-अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण करके निर्मल श्रीसम्यग्दर्शन गुण प्राप्त करता है ।

मोहनीय कर्म का अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय एवं मिथ्यात्व मोहनीय इन सात प्रकृतियों का उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षय होता है तब सम्यक्त्व मिलता है। उससे आत्मा अपने को आत्मसाक्षात्कार से देख सकता है। आत्मा का भवभ्रमण भी मर्यादित हो जाता है। उसको अर्ध पुद्गल परावर्त से अधिक संसार में नहीं रहना पड़ता। जिनका अर्ध पुद्गल परावर्त से कम भी संसार हो उनको भी राग-द्वेष रूप ग्रन्थि का छेदन किये बिना सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हो सकती है। राग-द्वेष के गाढ़ परिणाम जहाँ तक आत्मा में रहे हुए हैं वहां तक आत्मा सम्यग्-दर्शन प्राप्त करने की योग्यता भी नहीं पा सकता क्योंकि सम्यग्दर्शन गुण की घातक-विनाशक राग-द्वेष की तीव्रता है। राग-द्वेष की मंदता को धरने वाला आत्मा सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने की समस्त सामग्री सहजता से प्राप्त कर सकता है और उस सामग्री द्वारा अति सुन्दर आराधना कर सम्यग्दर्शन गुण को अवश्य प्राप्त कर सकता है।

श्रीजिनेन्द्रविभु तीर्थंकरदेवों के शासन में औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व इस तरह सम्यग्दर्शन का तीन प्रकार-भेद से वर्णन किया है।

* (१) **'औपशमिक सम्यक्त्व'** दर्शन सप्तक के उपशम से प्राप्त होता है।

* (२) **'क्षायोपशमिक सम्यक्त्व'** दर्शनमोहनीय के क्षयोपशम से प्राप्त होता है।

* (३) **'क्षायिक सम्यक्त्व'** दर्शनसप्तक के क्षय से प्राप्त होता है।

---

* (१) औपशमिक सम्यग्दर्शन में अनन्तानुबन्धी कषाय का विपाकोदय स्थगित होने के साथ मिथ्यात्व मोहनीय कर्म की प्रकृति का विपाकोदय या प्रदेशोदय एक अंतर्मुहूर्त्त काल के लिए स्थगित हुआ हो, तब **औपशमिक सम्यक्त्व** कहा जाता है। वह एक अंतर्मुहूर्त्त पर्यन्त तक रहता है।

* (२) क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन में सातों कर्मों की प्रकृतियों का उदय में आने के बाद विनाश करते हैं। ये सातों प्रकृतियाँ उदय में न आवें किन्तु अपनी सत्ता में रही हुई प्रकृतियों के विपाकोदय को रोके, अर्थात् मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का शोधन कर अशुद्ध-अर्धशुद्ध को दबाकर सम्यक्त्व मोहनीय कर्म के उदय को भोगवता है वह **क्षायोपशमिक सम्यक्त्व** कहा जाता है। वह विशेष में विशेष ६६ सागरोपम तक रहता है।

* (३) क्षाविक सम्यग्दर्शन में इन सातों प्रकृतियों का समूल विनाश हो जाने से उसको क्षायिकसम्यग्दर्शन कहते हैं। वह सर्वदा कायम रहता है। मोक्ष में भी वह क्षायिकसम्यग्दर्शन आत्मा के साथ में सर्वदा ही रहता है।

क्षायिक सम्यक्त्व के अतिरिक्त दूसरे दो सम्यक्त्व– औपशमिक और क्षायोपशमिक प्राप्त होने के पश्चात् वापिस चले भी जाते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होने के पश्चात् कभी नहीं छूटता। इस संसार में समस्त भव चक्र में जीव को **औपशमिक सम्यक्त्व** मात्र पांच बार प्राप्त होता है, **क्षायोपशमिक सम्यक्त्व** असंख्याती बार प्राप्त होता है तथा **क्षायिक सम्यक्त्व** तो मात्र एक बार ही प्राप्त होता है।

सम्यग्दर्शन के भेदों की जानकारी

वस्तु-पदार्थ में दो धर्म रहते हैं। सामान्य धर्म और विशेष धर्म। उसमें जिससे सामान्य धर्म का अवबोध होता है, वह दर्शन गुण की अपेक्षा से होता है। जो दूसरे दर्शनावरणीय कर्म के उदय से आच्छादित है; वह गुण न लेकर, आत्मा का जो सम्यग्दर्शन गुण मोहनीय कर्म के उदय से आच्छादित है, वह दर्शन गुण लेने का है। जिसके द्वारा आत्मा को वीतरागदेव श्रीजिनेश्वर-तीर्थंकर परमात्मा के वचनों पर दृढ़ श्रद्धा प्रगटती है वही **सम्यग्दर्शन** है। उसे '**सम्यक्त्व**' या '**समकित**' नाम से भी पहिचानते हैं।

उसके अनेक भेद जैनागमशास्त्र में प्रतिपादित किये गए हैं। उनमें से इधर आवश्यक भेदों की जानकारी निम्न-लिखित प्रकार से है। सम्यक्त्व के भेद तीन प्रकार से प्रतिपादित किये गये हैं--

(१) निसर्ग सम्यक्त्व और अधिगम सम्यक्त्व।

गुरु का सदुपदेशादिक श्रवण किये बिना आत्मा में जो स्वाभाविक श्रद्धा गुण प्रगट होता है, वह **'निसर्ग सम्यक्त्व'** है तथा गुरु के सदुपदेश-श्रवण द्वारा जो श्रद्धा गुण प्रगट होता है, वह **'अधिगम सम्यक्त्व'** है। यह सम्यक्त्व के दो भेदों का प्रथम प्रकार है।

(२) नैश्चयिक सम्यक्त्व और व्यावहारिक सम्यक्त्व।

ज्ञानदर्शनादिक गुणमय आत्मा का जो शुद्ध परिणाम होता है, वह **'नैश्चयिक सम्यक्त्व'** है तथा जिससे सम्यग्-दर्शन प्रगट होता है ऐसे जिनदेवपूजा और तीर्थयात्रादिक में आत्मा की प्रवृत्ति रूप जो कार्य होते हैं, वह **'व्यावहारिक सम्यक्त्व'** है। यह सम्यक्त्व के दो भेदों का दूसरा प्रकार है।

(३) द्रव्य सम्यक्त्व और भाव सम्यक्त्व ।

'तमेव सच्चं निस्संकं, जं जिणेहिं पवेइयं' श्रीजिनेश्वर-तीर्थंकर भगवन्त ने जो कहा है, वही सच्चा है और शंका रहित है। ऐसे परमार्थ को नहीं जानने वाले भव्य जीव की जो श्रद्धा है वह **'द्रव्य सम्यक्त्व'** है, अथवा जहाँ पर सम्यक्त्व मोहनीय कर्म का रसोदय हो और जो श्रद्धा होती हो ऐसा क्षयोपशम सम्यक्त्व भी **'द्रव्य सम्यक्त्व'** है तथा सर्वज्ञ श्रीजिनेश्वरदेवकथित जीवाजीवादि नौ तत्त्व को जानने पूर्वक श्रीजिनेश्वरदेव के वचन पर जो श्रद्धा हो, वह **'भाव सम्यक्त्व'** है। अथवा दर्शन मोहनीय कर्म के रसोदय और प्रदेशोदय रहित जो औपशमिक सम्यक्त्व तथा क्षायिक सम्यक्त्व है उसे भी **'भाव सम्यक्त्व'** जानना चाहिये। यह सम्यक्त्व के दो भेदों का तीसरा प्रकार है। अब सम्यक्त्व के तीन भेद, दो प्रकार से कहते हैं– **(१) कारक सम्यक्त्व, (२) रोचक सम्यक्त्व और (३) दीपक सम्यक्त्व ।**

(१) सर्वज्ञ विभु श्रीजिनेश्वर-तीर्थंकर परमात्मा द्वारा प्रतिपादित देवपूजा, तीर्थयात्रा, शासन-प्रभावनादिक जो सम्यक्त्व की करणी आत्मा से की जाय, वह **'कारक सम्यक्त्व'** है।

(२) आत्मा मोहनीय कर्म के तीव्रोदय से सम्यग्-

दर्शन-सम्यक्त्व की करणी न कर सके, तो भी सर्वज्ञ विभु श्रीजिनेश्वरदेव के वचनों पर रुचि रखे, वह **'रोचक सम्यक्त्व'** है।

(३) जो आत्मा स्वयं श्रद्धाहीन होने पर भी दूसरे को समझाने में कुशल-होशियार हो, उससे दूसरे को सम्यक्त्व-समकित प्राप्त कराना, वह **'दीपक सम्यक्त्व'** है। जैसे दीपक दूसरे को प्रकाश देता है, लेकिन उसके नीचे अंधेरा है। ऐसे इधर भी श्रद्धाहीन अभव्य जीव हैं। उनको भी यही दीपक सम्यक्त्व होता है। अन्य तीन प्रकार में (१) **औपशमिक सम्यक्त्व,** (२) **क्षायोपशमिक सम्यक्त्व** और (३) **क्षायिक सम्यक्त्व** भी आते हैं।

श्रीसम्यग्दर्शन की उपमाएँ

(१) सम्यग्दर्शन को **'धर्म वृक्ष का मूल'** कहा है। जब वृक्ष का मूल मजबूत होता है तब वृक्ष भी मजबूत होता है। धर्मवृक्ष की मजबूती का आधार दृढ़ सम्यक्त्व ही है। जिस प्रकार मूल की शुद्धि के बिना वृक्ष नहीं खिलता-विकस्वर नहीं होता, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन-सम्यक्त्व बिना आत्मा को वास्तविक सद्धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

(२) सम्यग्दर्शन को **'धर्म नगर का प्रवेश द्वार'** कहा

है। जब तक वह न खुले तब तक धर्म रूपी नगर में प्रवेश नहीं हो सकता। अर्थात् सम्यग्दर्शन रूप द्वार के बिना आत्मा का कभी भी धर्म नगर में प्रवेश नहीं हो सकता है।

(३) सम्यग्दर्शन को **'धर्म रूपी प्रासाद का पीठ'** कहा है। धर्म रूपी प्रासाद-महल का अतिसुन्दर चणतर सम्यक्त्व रूपी पीठ-पाया पर निर्भर है। वह पीठ-पाया मजबूत न हो अर्थात् कच्चा हो तो उस पर धर्म रूपी प्रासाद-महल स्थिर नहीं हो सकता है। सारांश यही है कि जिस महानुभाव को अतिसुन्दर धर्म रूपी प्रासाद-महल स्थिर बनाना हो तो उसे सम्यग्दर्शन रूपी पीठ-पाया को अवश्यमेव मजबूत बनाना चाहिये।

(४) सम्यग्दर्शन को **'धर्म रूप जगत का आधार'** कहा है। जिस तरह पृथ्वी विश्व का आधार है उस तरह **'धर्म रूप जगत का आधार'** सम्यग्दर्शन है।

(५) सम्यग्दर्शन को **'उपशम रस का भाजन'** कहा है। वह भाजन-पात्र बिना उपशम रस ढोला जाता है। अर्थात् उपशम रस के भाजन-पात्र सम्यग्दर्शन बिना अन्य कोई भी चीज-वस्तु नहीं बन सकती।

(६) सम्यग्दर्शन को **'गुणरत्नों का निधान'** कहा है। कारण यही है कि सम्यग्दर्शन रूपी निधान बिना

अहिंसादिक मूल गुण या पिण्डविशुद्धि आदि उत्तरगुण सुरक्षित नहीं रह सकते। इसलिये अनन्त ज्ञानी महापुरुषों ने कहा है कि सम्यग्दर्शनहीन ज्ञान अज्ञान और अप्रमाण है तथा संयम-चारित्र भी निष्फल ही है। जगत के जीवों को परमपद-मोक्ष प्राप्त करने के लिये यह शुद्ध सम्यग्दर्शन सम्यक्त्व ही मुख्य कारण है। उसका श्रद्धा, लक्षण, भूषण इत्यादि भेदों से आत्मा को सही रूप में भान होता है और स्वीकारने से आत्मा की उन्नति, आबादी एवं आजादी प्राप्त होती है। सही रूप में श्रीसम्यग्दर्शनपद को मोक्षपद की प्राप्ति में बीज रूप माना है।

श्रीसम्यग्दर्शन के नाम

शास्त्रों में अनंत ज्ञानी महापुरुषों ने श्रीसम्यग्दर्शन के अनेक नाम प्रतिपादित किये हैं। जैसे—सम्यक्त्व, समकित, मुक्तिबीज, तत्त्वसंवेदन, तत्त्वश्रद्धा, तत्त्वरुचि, दुखांतकार, सुखारंभ एवं सम्यग्दर्शन इत्यादि। ये नाम सही, सार्थक और घटमान गुणनिष्पन्न हैं। सम्यग्दर्शन यानी सत्यदर्शन-यथार्थदर्शन।

श्रीसम्यग्दर्शन के प्रकार

जैनशास्त्रों में श्रीसम्यग्दर्शन का अनेक प्रकार-भेदों से निरूपण किया गया है। उसके ६७ भेद सुप्रसिद्ध हैं—

[४] चार प्रकार की सद्दहणा-श्रद्धा (परमार्थसंस्तव आदि)।

[३] तीन प्रकार का लिङ्ग (शुश्रूषा आदि)।

[१०] दस प्रकार का विनय (अर्हद्विनय आदि)।

[३] तीन प्रकार की शुद्धि (मनःशुद्धि आदि)।

[५] पाँच प्रकार के दूषण (शंका, कांक्षा आदि)।

[८] आठ प्रकार के प्रभावक (प्रवचनप्रभावक आदि)।

[५] पाँच प्रकार के भूषण (कौशल्यभूषण आदि)।

[५] पाँच प्रकार के लक्षण (उपशम गुण आदि)।

[६] छह प्रकार की जयणा (परतीर्थिकादि नमस्कार-वर्जन आदि)।

[६] छह प्रकार के आगार (राजाभियोगाकार आदि)।

[६] छह प्रकार की भावना ('सम्यक्त्वं चारित्र-धर्मस्य मूलम्' आदि)।

[६] छह प्रकार के स्थान ('अस्ति जीव' इति श्रद्धा-नस्थान आदि)।

६७

श्रीसम्यग्दर्शन पद का श्वेत वर्ण क्यों ?

श्रीसिद्धचक्र-नवपद पैकी छठा श्रीसम्यग्दर्शन पद है। शास्त्र में उसका श्वेत वर्ण प्रतिपादित किया गया है। अन्य कोई वर्ण न लेकर उसका श्वेत वर्ण ही क्यों प्रतिपादित किया है ? कारण यही है कि श्रीसम्यग्दर्शन-सम्यक्त्व आत्मा का गुण है। गुणी व्यक्ति में रहे हुए गुण सर्वदा श्वेत-उज्ज्वल ही होते हैं। वर्णों में उत्तम वर्ण श्वेत है। उसका श्रीसम्यग्दर्शन गुण के साथ होना स्वाभाविक सुन्दर है। अनेक प्रकार की उपमाओं से भी यह घटित है। जैसे—

(१) श्रीसम्यग्दर्शन पद (यह गुण) **'सुदर्शन चक्र'** के समान है। जैसे सुदर्शन चक्र शुक्ल-श्वेतवर्णवन्त है वैसे ही श्रीसम्यग्दर्शन पद भी शुक्ल-श्वेतवर्णवन्त है।

(२) श्रीसम्यग्दर्शन पद (यह गुण) **'वज्र'** के समान है। दर्शन पद से सद्धर्म में दृढ़ता-मजबूती पैदा होती है। वह दृढ़ता वज्र के समान है। जैसे वज्र श्वेत-उज्ज्वल है वैसे ही श्रीसम्यग्दर्शन-सम्यक्त्व भी श्वेत उज्ज्वल है।

(३) श्रीसम्यग्दर्शन पद (यह गुण) रक्षण के लिये **'गढ़-किले'** के समान है। जिस तरह नगर आदि के चारों तरफ बनाया हुआ मजबूत गढ़-किला नगरादिक का

संरक्षण करता है, उसी तरह यह सम्यग्दर्शन गुण रूपी गढ़-किला आत्ममन्दिर का चारों तरफ से संरक्षण करता है। जैसे गढ़-किला ईंट चूने का बना शुभ्र श्वेत होता है, वैसे ही यह सम्यग्दर्शन पद गुण भी शुभ्र श्वेत वर्ण का है।

(४) सद्गुणों से आत्मा शान्त होती है। आत्म-शान्ति के लिये ध्यान शुक्ल-श्वेत विहित है। श्रीसम्यग्दर्शन पद का ध्यान शुक्ल-श्वेत वर्ण से करते हैं, इसलिये उसका वर्ण शुक्ल-श्वेत कहा है।

इस प्रकार अनेक उपमाओं से श्रीसम्यग्दर्शन पद गुण का सफेद-उज्ज्वल वर्ण ही श्रीअनन्तज्ञानी महापुरुषों ने प्रतिपादित किया है।

श्रीसम्यग्दर्शन पद की प्राप्ति से क्या लाभ मिलता है ?

संसारचक्र में परिभ्रमण करते हुए आत्मा को श्रीसम्यग्दर्शन पद की प्राप्ति से निम्नलिखित अनेक लाभों की प्राप्ति होती है--

(१) श्रीसम्यग्दर्शन-सम्यक्त्व गुण की प्राप्ति के पश्चात् आत्मा को सही रूप में सुदेव, सुगुरु और सुधर्म की स्पष्ट पहिचान-ओळखाण होती है।

(२) शुद्धदेव, शुद्धगुरु और शुद्धधर्म के प्रति आत्मा में अचल श्रद्धा होती है तथा आदर और बहुमान भी प्रगट होता है।

(३) कुदेव, कुगुरु और कुधर्म प्रति का प्रतिबन्ध सर्वथा विनष्ट हो जाता है।

(४) अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ चले-जाते हैं।

(५) आत्मा को क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होने से सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय भी विनष्ट हो जाते हैं।

(६) राग और द्वेष की ग्रन्थि भेदी जाती है।

(७) अनादि काल के असद्ग्रह निर्मूल हो जाते हैं।

(८) विशुद्ध तत्त्वों की गवेषणा उत्पन्न होती है।

(९) श्रुतज्ञान में तीव्र पिपासा जागृत होती है।

(१०) सुदेव, सुगुरु और सुधर्म ही आत्मा का सर्वस्व समझा जाता है, इतना ही नहीं, किन्तु उनकी उपासना में तन्मयता प्रगट हो जाती है।

(११) गुण और गुणी के प्रति का उपेक्षा भाव अदृश्य हो जाता है।

(१२) सम्यक्त्ववंत व्यक्ति की अभ्यन्तर प्रवृत्ति प्रायः आत्मानुलक्षी होकर मोक्षमार्ग का लक्ष्यबिन्दु केन्द्रित होता है।

(१३) **'तमेव सच्चं निःशंकं जं जिणेहिं पवेइअं'**।

श्रीजिनेश्वर देवों ने जो कहा है वही सच्चा और निःशंक है। उससे श्रीजिनेश्वर देवों के वचनों पर दृढ़ श्रद्धा पैदा होती है।

(१४) श्रीसम्यग्दर्शन-सम्यक्त्व युक्त व्रत और अनुष्ठान आत्मा को हितकर होता है।

(१५) सम्यक्त्व प्राप्त करने वाले आत्मा का संसार-भ्रमण काल मर्यादित हो जाता है। इत्यादि अनेक लाभ श्रीसम्यग्दर्शनवन्त को प्राप्त होते हैं।

श्रीसम्यग्दर्शन पद का आराधन

सुदेव को सुदेव, सुगुरु को सुगुरु और सुधर्म को सुधर्म मानकर, श्रीसर्वज्ञ कथित जीवाजीवादि नव तत्त्वों को भी सही रूप में मानकर एवं सुदेवादि पर और जीवाजीवादि नव तत्त्वों पर दृढ़ श्रद्धा रखकर, श्रीसम्यग्दर्शन के सड़सठ भेदों का स्वरूप समझ कर, मिथ्यात्व का त्याग कर, श्रीसम्यग्दर्शन को विधिपूर्वक स्वीकार कर, उसका

अहर्निश शुद्ध रूप में अवश्य पालन करना चाहिये। इस तरह श्रीसम्यग्दर्शन पद का आराधन कोई भी व्यक्ति कर सकता है।

श्रीसम्यग्दर्शन पद के आराधक की भावना

श्रीसिद्धचक्र-नवपदजी के छठे पद में स्थित श्रीसम्यग्-दर्शन पद का आराधन करते हुए आराधक दृढ़पणे अपनी चित्तवृत्ति इस तरह स्थिर करे कि–**'तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेहिं पवेइयं'** वही सत्य और निःशंक है जो कि जिनेश्वर-तीर्थंकर भगवन्तों ने कहा है। चाहे कितनी ही आपत्ति-विपत्ति या दुःख आदि क्यों न आ जाय, प्राणान्त कष्ट भी आ जाय तो भी धर्मश्रद्धा से चलित या भ्रष्ट न होकर, धर्मश्रद्धा में ही दृढ़-मजबूत रहे। देवता भी उसको धर्मश्रद्धा से चलित करने के लिये अनुकूल या प्रतिकूल अनेक उपसर्ग-उपद्रव करे तो भी चलित न होकर अचल रहे। इससे इन्द्रमहाराजादि भी उसकी भूरि प्रशंसा-अनुमोदना करते हैं।

श्रीसम्यग्दर्शन पद–भावना

हे सम्यग्दर्शन पद ! आप ही मोक्षमार्ग के सुदृढ़ मूल हो। भव्यजीवों की भवमर्यादा निश्चित करने वाले आप ही हो। सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र का संगम-सम्बन्ध

कराने वाले आप ही हो। सुदेव, सुगुरु और सुधर्म की सही रूप में सम्यग् श्रद्धा कराने वाले आप ही हो। जीवाजीवादि नव तत्त्वों की जानकारी संक्षेप से या विस्तार से कराने वाले आप ही हो। भव का निस्तार और शाश्वत सुख की प्राप्ति कराने वाले भी (सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चारित्र के सहयोग से) आप ही हो। जब तक आपके प्रति हमारा पूर्ण विश्वास न हो, हमारो आत्मा आपके प्रति सम्यग् श्रद्धावंत न हो और हमारे हृदयमन्दिर में आपका निवास केवल व्यवहार से ही नहीं किन्तु निश्चय से न हो, तब तक हम हमारी आत्मा में कैसे श्रद्धान कर सकें कि हमारी मुक्ति अवश्यमेव होगी अर्थात् हमारा मोक्ष निश्चित होगा। जैसे श्रमण भगवान महावीर स्वामी परमात्मा के परम भक्त मगध के सम्राट् श्री श्रेणिक महाराजा और बालब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ भगवान के परम भक्त द्वारिकानगरी के श्रीकृष्ण महाराजा, दोनों को अपने हृदयमन्दिर में आपकी स्थापना शाश्वत हुई थी, वैसे ही हमारे हृदयमन्दिर में आपकी स्थापना शाश्वती सदा के लिये हो।

सम्यक्त्ववंत संसारी जीव की विचारणा

समकित दृष्टि जीवड़ा, करे कुटुम्ब परिपाल।
अन्तर से न्यारा रहे, धाय खिलावत बाल॥

सम्यक्त्व-समकितवंत जीव संसार में होते हुए भी उसकी भावना त्यागमार्ग की होती है। वह अपने कुटुम्ब परिवार का प्रतिपालन करते हुए भी आन्तरिक भावना से न्यारा रहता है, अर्थात् अपने कुटुम्ब में तन्मय होता नहीं है। जैसे धायमाता बालक को स्तनपानादि कराती है, लेकिन समझती है कि यह बच्चा-बालक मेरा नहीं है, वैसे ही सम्यक्त्ववंत जीव की विचारणा-भावना अपने कुटुम्ब-परिवार पर रहती है। समकितवंत व्यक्ति निर्दयपने पापकर्म नहीं करता। संयोगवशात् कदाचित् पराधीनतादिक से कुछ भी पापकर्म करना पड़े तो भी न छूटके ही करता है।

श्रीसम्यग्दर्शन पद की आराधना का दृष्टांत

श्रीसम्यग्दर्शन पद की सम्यग् आराधना से श्रमण भगवान महावीर स्वामी परमात्मा की विद्यमानता में सद्धर्म की पूर्ण श्रद्धा और शुद्ध सम्यक्त्व की परीक्षा के बारे में अचल रही हुई महासती **सुलसा श्राविका** की आत्मा भविष्य में तीर्थंकर होगी। यही प्रभाव श्रीसम्यग्दर्शन पद का है।

श्रीसम्यग्दर्शन पद का नमस्कारात्मक वर्णन

'श्रीनवपद प्रकरण' ग्रन्थ में श्रीनवपद पैकी श्रीसम्यग्दर्शन पद को नमस्कार करते हुए वर्णन किया है कि—

जं सुद्धदेवगुरु, धम्मतत्तसंपतिसद्दहणारूवं ।
वन्निज्जइ सम्मत्तं, तं सम्मं दंसणं नमिमो ।। ६६ ।।

शुद्धदेव, शुद्धगुरु और शुद्धधर्म रूप तत्त्व सम्पत्ति की श्रद्धा रूप में जो सम्यक्त्व प्रशंसित है उस **सम्यग्दर्शन** को हम भाव से नमस्कार कर रहे हैं ।। ६६ ।।

जावेगकोडाकोडिसागरसेसा न होइ कम्मठिइ ।
ताव न जं पाविजइ, तं सम्मं दंसणं नमिमो ।। ६७ ।।

जहां तक कर्म की स्थिति न्यून कर एक कोटाकोटि सागरोपम जितनी ही शेष रहे ऐसी स्थिति न हुई हो वहां तक, जिसकी प्राप्ति न हो सकती हो ऐसे **सम्यग्दर्शन** को हम भाव से नमस्कार कर रहे हैं ।। ६७ ।।

सव्वाणमद्धपुग्गल, परियट्टवसेसभवनिवासाणं ।
जं होइ गंठिभेए, तं सम्मं दंसणं नमिमो ।। ६८ ।।

अर्द्धपुद्गल परावर्तन से अधिक संसार की स्थिति जिनकी रही नहीं है ऐसे भव्य जीवों को राग-द्वेषमय ग्रन्थि का छेद होने पर ही जिसकी प्राप्ति होती है ऐसे **सम्यग्दर्शन** को हम नमन कर रहे हैं ।। ६८ ।।

जं च तिहा उवसमिअं, खउवसमिअं व खाइयं चेव ।
भणियं जिणिंदसमए, तं सम्मं दंसणं नमिमो ।। ६९ ।।

औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक इन तीन विशेषताओं वाला सम्यग्दर्शन जिनागम में कहा है ऐसे **सम्यग्दर्शन** को हम नमन कर रहे हैं ।। ६९ ।।

पणवारा उवसमियं, खओवसमिअं असंखसो होइ ।
जं खाइअं च इक्कंसि, तं सम्मं दंसणं नमिमो ।। ७० ।।

औपशमिक सम्यग्दर्शन पांच बार, क्षायोपशमिक असंख्य बार और क्षायिक एक ही बार प्राप्त होता है, ऐसे **सम्यग्दर्शन** को हम नमन कर रहे हैं ।। ७० ।।

जं धम्मद्दुममूलं, भाविज्जइ धम्मपुरपवेसं च ।
धम्मभवणपीढं वा, तं सम्मं दंसणं नमिमो ।। ७१ ।।

जो धर्मवृक्ष का मूल, धर्मनगर का द्वार और धर्ममहल का स्तम्भ कहा जाता है उस **सम्यग्दर्शन** को हम नमन कर रहे हैं ।। ७१ ।।

जं धम्मजयाहारं, उवसमरसभायणं च जं बिंति ।
मुणिणो गुणरयणनिहिं, तं समणं दंसणं नमिमो ।। ७२ ।।

जिसे मुनिजन पृथ्वी की तरह समस्त धर्म का आधार, उपशम रस का भाजन और गुण रूपी रत्नों का निधान कहते हैं उस **सम्यग्दर्शन** को हम नमन कर रहे हैं ।।७२।।

जेण विणा नाणं वि हु, अपमाणं निप्फलं च चारित्तं ।
मुक्खो वि नेव लब्भइ, तं सम्मं दंसणं नमिमो ।। ७३ ।।

जिसके बिना ज्ञान भी अप्रमाण है, चारित्र भी निष्फल है और मोक्ष की प्राप्ति भी नहीं होती ऐसे **सम्यग्दर्शन** को हम नमन कर रहे हैं ।। ७३ ।।

जं सद्दहणलक्ख,-भूसणपमुहेहिं बहु य भेएहिं ।
वन्निजइ समयंमि, तं सम्मं दंसणं नमिमो ।। ७४ ।।

सिद्धान्त में सद्दहणा, लक्षण और भूषण आदि अनेक भेदों द्वारा जिसका वर्णन किया है उस **सम्यग्दर्शन** को हम नमन कर रहे हैं ।। ७४ ।।

न्यायविशारद, न्यायाचार्य, महामहोपाध्याय श्रीयशोविजयजी महाराज ने भी 'श्रीनवपदजी' की पूजा में श्रीसम्यग्दर्शन पद को नमस्कार करते हुए कहा है कि---

जिणुत्ततत्ते रुइलक्खणस्स, नमो नमो निम्मलदंसणस्स ।
मिच्छत्तनासाइसमुग्गमस्स, मूलस्स सद्धम्ममहादुमस्स ।।६।।

जिसका जिनेश्वर भगवन्त कथित जीवाजीवादि नव तत्त्व में या शुद्ध देवादिक तीन तत्त्व में रुचि-श्रद्धान रूप लक्षण है, मिथ्यात्व, कषाय आदि को दूर करने से जिसका आविर्भाव हो सकता है तथा जो ज्ञान-चारित्ररूप महाधर्म का मूल है, ऐसे निर्मल दर्शन-सम्यक्त्व को वारंवार नमस्कार हो ।। ६ ।।

ऐसा श्रीसम्यग्दर्शन आत्मा का एक महान् क्रान्तिकारी गुण है। उसके अचिन्त्य प्रभाव से आत्मा की अनादिकालीन मलिन वृत्ति में एकदम परिवर्तन आ जाता है। जैसे कतक के चूर्ण से मलिन जल निर्मल बन जाता है वैसे ही श्रीसम्यग्दर्शन के संग से आत्मा की मलिन वृत्ति स्वच्छ-निर्मल बन जाती है। महामहिमावन्त श्रीसम्यग्दर्शन पद की अहर्निश उपासना करके अपन शीघ्र भवसिन्धु तीर के—मोक्ष के शाश्वत सुख पावें। संसार के सभी जीवों में शुद्ध देव, शुद्ध गुरु और शुद्ध धर्म के प्रति अन्तरंग रुचि, अन्तरंग प्रेम-स्नेह, अन्तरंग विश्वास जागृत हो और सर्वदा अविचल रहे, यही शुभ भावना है।

[७] श्रीज्ञानपद

卐 नमो नाणस्स 卐

अन्नाणसंमोहतमोहरस्स ,
नमो नमो नाणदिवायरस्स ।

अज्ञान और मोह रूप अन्धकार को दूर करने वाले ज्ञान रूपी सूर्य को वारंवार नमस्कार हो ।

अष्टाविंशतिभेदाढ्या, मतिः पूर्वमितं श्रुतम् ।
षोढा चाप्यवधिर्द्वेधा मनःपर्यवमीरितम् ।। १ ।।

एकं केवलमाख्यात-मेकपञ्चाशदित्यमी ।
ज्ञानभेदा जिनैरुक्ता, भव्याम्भोजविकासकाः ।। २ ।।

ज्ञान की व्युत्पत्ति

'ज्ञांश् अवबोधने' ज्ञा + भावे ल्युट्, जानना । अथवा 'ज्ञायते अनेन इति ज्ञानम्' । जिसके द्वारा जान सके, वह ज्ञान कहा जाता है । अर्थात् विश्व के पदार्थों को समझाने की शक्ति जिसमें हो उसको ज्ञान कहते हैं । ज्ञान पदार्थ-बोधक है ।

(१) भविष्यत् काल के विषय को जनाने वाली **'मति'** है।

(२) वर्त्तमान काल के पदार्थ को जनाने वाली **'बुद्धि'** है।

(३) भूतकाल की एवं भविष्यत् काल की वस्तु को जनाने वाला **'विज्ञान'** है। मति, बुद्धि एवं विज्ञान ये तीनों शब्द ज्ञान के पर्यायवाची हैं।

श्रीज्ञानपद का स्वरूप

विश्व में अनेक प्रकार के पदार्थ हैं। उनमें कितने ही पदार्थ हेय यानी त्यजने योग्य, कितने ही पदार्थ ज्ञेय यानी जानने योग्य और कितने ही पदार्थ उपादेय यानी आदरने-स्वीकारने योग्य है। यह सब ज्ञान से पहिचाना जाता है। ज्ञान के बिना मनुष्य पशु के समान है। आत्मा की कौन सी प्रवृत्ति हितकारी और कौन सी प्रवृत्ति अहितकारी है; यह जानने के लिये आत्मा को सच्चे ज्ञान की आवश्यकता है।

विश्व में दो प्रकार की वस्तुयें हैं। एक यथार्थ और दूसरी अयथार्थ। यथार्थ यानी वास्तविक और अयथार्थ यानी अवास्तविक-मिथ्या। सत्यवस्तु का सत्यज्ञान यथार्थ

है और असत्य वस्तु का असत्यज्ञान अयथार्थ है। यथार्थ ज्ञान ही सत्यज्ञान है और अयथार्थ ज्ञान सत्यज्ञान नहीं किन्तु असत्यज्ञान अर्थात् अज्ञान है।

सर्वज्ञ विभु श्रीजिनेश्वर-तीर्थंकर भगवन्त द्वारा अर्थ-रूपे भाषित तथा श्रुतकेवली श्रीगणधर भगवन्त द्वारा गुंथित द्वादशाङ्गी रूप श्रीआगमशास्त्र में कहे हुए सभी तत्त्व सत्य, यथार्थ और वास्तविक हैं। उनका यथार्थ-वास्तविक बोध ही सम्यग्ज्ञान है। विश्व के जीवों को जो आत्मतत्त्व की पहिचान कराता है, आत्मा को भव के बढ़ते हुए सारे बन्धनों से बचाता है इतना ही नहीं आत्मा के भयंकर शत्रुओं राग-द्वेषादि कषायों और विषयों का भी भान कराता है, आत्मा के सहभावी सद्गुणों ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप रत्नत्रयी की सच्ची ओळखाण कराता है वही **सम्यग्ज्ञान** कहा जाता है।

सम्यग्ज्ञान से आत्मा को भक्ष्य और अभक्ष्य का, पेय और अपेय का, गम्य और अगम्य का, कृत्य और अकृत्य का वास्तविक भान होता है। **'सम्यग्ज्ञानमन्तरेण सम्यग्-दर्शनं न भवति'**।

सम्यग्ज्ञान के बिना सम्यग्दर्शन नहीं मिलता। इस-लिये आत्मा को सम्यग्दर्शन-सम्यक्त्व प्राप्ति के लिये सम्यग्ज्ञान की अति आवश्यकता है। द्रव्य सम्यक्त्व से

भी भाव सम्यक्त्व की विशुद्धि अनंत गुणी आगमशास्त्र में कही गई है। इसलिये भाव सम्यक्त्व-प्राप्ति के बारे में जिनागम-जैनआगमशास्त्रों का ज्ञान अनिवार्य है। श्री अरिहंतादि पञ्च परमेष्ठी का मूल श्रीसम्यग्दर्शन होने पर भी सम्यग्दर्शन का मूल **सम्यग्ज्ञान** है। सम्यग्ज्ञान विना सम्यग्श्रद्धा भी स्थिर नहीं रह सकती है। इसलिये महामहोपाध्याय श्रीयशोविजयजी महाराज ने श्रीनवपदजी की पूजा के अन्तर्गत सप्तम 'श्रीज्ञानपद पूजा' में कहा है कि—

"सकल क्रियानुं मूल जे श्रद्धा,
तेहनुं मूल जे कहीए।
तेह ज्ञान नित नित वंदीजे,
ते विण कहो केम रहीए रे ।।
भविका ! सिद्धचक्र पद वंदो ।। ३ ।।"

सभी क्रियाओं का मूल **'श्रद्धा'** है, उसका मूल जो कहा जाता है वह **'ज्ञान'** है। उसको अहर्निश वन्दन करना। कहिए--उस बिना कैसे रह सकते हो ? ।। ३ ।।

ज्ञानमूलक श्रद्धा दृढ़ और निश्चल रहती है। आत्मा में जो नव तत्त्व का जानपना हो तो श्रद्धा भी स्थिर रह सकती है। अज्ञानी क्या कर सकता है ? उसको तो पुण्य-पाप की जानकारी भी नहीं हो सकती है। ज्ञानी

आत्मा ही पुण्य-पाप को जान सकता है और अपनी आत्मा को निर्मल कर सकता है। **श्रीदशवैकालिक सूत्र** में भी कहा है कि **'पढमं नाणं तहो दया'** प्रथम ज्ञान और पीछे दया। इससे समझना चाहिये कि **सबसे पहले ज्ञान है और बाद में दया याने अहिंसा है।**

आत्मा के सहभावी गुण ज्ञानादि हैं। जिस तरह अग्नि में उष्णता गुण है, कपास में श्वेतता गुण है उस तरह आत्मा में ज्ञानादि गुण हैं। वे गुण कभी भी आत्मा से अलग नहीं पड़ सकते हैं। ज्ञानादि गुण आत्मा के ही होने पर भी सांसारिक पौद्गलिक पराधीनता से आत्मा की सही रूप में पहिचान न समझ कर पौद्गलिक विषयों और कषायों की पुष्टि में अभिवृद्धि करने वाले होने से अज्ञान रूप कहे जाते हैं।

मोक्ष का शाश्वत सुख पाने के लिये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप त्रिवेणी संगम सर्वोत्कृष्ट साधन है। इस साधन में सकल क्रिया का मूल सम्यग्दर्शन रूप श्रद्धा है और श्रद्धा का मूल सम्यग्ज्ञान माना है।

श्रीसिद्धचक्र के नवपद पैकी सातवाँ पद **सम्यग्ज्ञान** है। वस्तु का सम्यग् यानी यथार्थ अर्थात् जैसा हो वैसा स्वरूप जो जनाता है वही **सम्यग्ज्ञान** कहा जाता है। जो ज्ञान आत्मा को मोक्षमार्ग की साधना के लिये उत्साही

करता है वही ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। जो वस्तु का सच्चा स्वरूप नहीं जनाता है वह ज्ञान मिथ्या-असत्य ज्ञान अज्ञान रूप है।

सर्वज्ञ श्रीजिनेश्वर-तीर्थंकर भगवन्त के शासन में सम्यग्ज्ञान के पांच भेद प्रतिपादित किये हैं। वे इस तरह हैं--(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्यवज्ञान और (५) केवलज्ञान। अब इन पाँचों का क्रमशः संक्षेप में वर्णन करते हैं---

(१) मतिज्ञान–

आत्मा को योग्य देश में रही हुई नियत वस्तु का पाँचों इन्द्रियों और मन के द्वारा जो ज्ञान होता है वह **'मतिज्ञान'** कहा जाता है। इसका दूसरा नाम **'आभिनिबोधक'** भी है।

"अभिनिबुध्यते इति आभिनिबोधकम्"---

सन्मुख रहे हुए नियत पदार्थ को जो जनाता है उसको **'आभिनिबोधक ज्ञान'** कहते हैं।

इस मतिज्ञान के अट्ठाईस (२८) भेद हैं। मूल चार भेद हैं (१) अर्थावग्रह, (२) ईहा, (३) अपाय और (४) धारणा। अर्थावग्रह के दो भेद हैं (१) व्यंजनावग्रह और (२) अर्थावग्रह। व्यंजनावग्रह के चार भेद हैं-

(१) स्पर्शेन्द्रिय का, (२) रसनेन्द्रिय का, (३) घ्राणेन्द्रिय का और (४) श्रोत्रेन्द्रिय का।

अर्थावग्रह, ईहा, अपाय और धारणा ये चारों भेद पाँचों इन्द्रियों तथा मन इस तरह छह-छह प्रकार से होते हुए कुल चौबीस होते हैं। उन में व्यंजनावग्रह के चार भेद मिलाने से अट्ठाईस भेद मतिज्ञान के हो जाते हैं। आगमग्रन्थ श्रीनंदीसूत्रादिक से मतिज्ञान के दो भेद, चार भेद, अट्ठाईस भेद, बत्तीस भेद और उत्कृष्ट से तीन सौ चालीस (३४०) भेद भी जानने चाहिये।

मतिज्ञान का वर्णन करते हुए उसके २८ भेद आदि के सम्बन्ध में संक्षेप में कहते हैं--

(१) **व्यंजनावग्रह**--इन्द्रिय और विषय के सम्बन्ध से होते हुए अव्यक्त ज्ञान के उत्तर काल में '**कुछ है**' ऐसा जो अर्थावग्रह होता है, वही '**व्यंजनावग्रह**' कहा जाता है। किसी ने अव्यक्त शब्द किया, वही व्यंजनावग्रह है। चक्षु और मन दोनों (पदार्थ से सम्बन्ध किये बिना का ज्ञान) अप्राप्यकारी होने से उनका व्यंजनावग्रह नहीं होता। इसलिये व्यंजनावग्रह के चार भेद रह जाते हैं।

(२) **अर्थावग्रह**--पाँच इन्द्रियों और मन के सहकार द्वारा '**कुछ है**' ऐसा जो सामान्य ज्ञान होता है, वही

'अर्थावग्रह' कहा जाता है। किसी ने मुझको बुलाया ऐसा ज्ञान, वही अर्थावग्रह है; जिसके छह भेद हैं।

(३) **ईहा**—पाँच इन्द्रियों और मन के सहकार द्वारा अन्वयधर्म की घटना वाला तथा व्यतिरेकधर्म का निराकरण करने वाला जो ज्ञान होता है, वही **'ईहा'** कहा जाता है। जैसे--कोई व्यक्ति जंगल में जाते हुए दूर से वृक्ष के स्थाणु-ठूंठ को देखकर विचार करता है कि यह जंगल अरण्य है, सूर्यास्त हो गया है, मनुष्य का होना सम्भव नहीं है इसलिये 'अयं स्थाणुः' यह स्थाणु होना चाहिये ऐसा अन्वय और व्यतिरेक धर्म की घटना वाला तर्क ज्ञान ही **'ईहा'** है। इसके छह भेद हैं।

(४) **अपाय**—पाँच इन्द्रियों और मन के सहकार द्वारा **'अयं स्थाणुरेव'** यह स्थाणु ही है, ऐसा निश्चयात्मक ज्ञान ही **'अपाय'** कहा जाता है। इसके भी छह भेद हैं।

(५) **धारणा**--अपाय से निर्णीत--निश्चित किए हुए अर्थ को दीर्घकाल पर्यन्त जो धर रखना, वही **'धारणा'** कहा जाता है। इस के तीन भेद हैं—

(१) **अविच्युति**—उपयोग से च्युत न होना अर्थात् प्रवाहरूप से उपयोगरूप में वर्तना सो **'अविच्युति'** है।

(२) **वासना**—अविच्युति से आत्मा में पड़े हुए जो

संस्कार वही **'वासना'** है जो संख्यात-असंख्यात काल पर्यंत भवान्तर में भी रह सकते हैं ।

(३) **स्मृति**–आत्मा में यही संस्कार दृढ होने के पश्चात् कालान्तर में ऐसे किसी भी पदार्थ के दर्शनादिक कारण से पूर्व के संस्कार जागृत होने पर 'यह वही है जो कि मैंने पूर्वे प्राप्त की थी, देखी थी या अनुभवी थी ।' इत्यादि रूप जो ज्ञान होता है, वह **'स्मृति ज्ञान'** कहा जाता है । जाति स्मरण ज्ञान का भी समावेश इसी स्मृति ज्ञान में होता है ।

धारणा में पाँच इन्द्रियों और मन का सहकार होता है, इसलिये धारणा के भी छह भेद कहे हैं । (१) व्यंजनावग्रह के चार भेद, (२) अर्थावग्रह के छह भेद, (३) ईहा के छह भेद, (४) अपाय के छह भेद, (५) धारणा के छह भेद ।

इस तरह मतिज्ञान के अट्ठाईस (२८) भेद होते हैं । उनके भी **बहुग्राही** इत्यादि अनेक भेद शास्त्र में प्रतिपादित किये गए हैं । वे भेद क्रमशः इस माफिक हैं---

(१) **बहुग्राही**–बजते हुए अनेक वाजित्रों का शब्द एक साथ में सुनकर 'यहाँ इतनी **भेरी** और इतने **शंख** बजते हैं' इस तरह सभी भिन्न-भिन्न शब्द को ग्रहण करे, वही **'बहुग्राही मतिज्ञान'** कहलाता है ।

(२) **अबहुग्राही**–'कोई अव्यक्तपने वाजिंत्र बज रहा है' इतना ही सामान्य जाने, न कि विशेष रूप में, वह **'अबहुग्राही मतिज्ञान'** कहा जाता है ।

(३) **बहुविधग्राही**–कोई बहुमंदत्वादि बहुधर्मोपेत जाने, वह **'बहुविधग्राही मतिज्ञान'** कहा गया है ।

(४) **अबहुविधग्राही**–कोई एक दो पर्यायोपेत जाने, वह **'अबहुविधग्राही मतिज्ञान'** कहलाता है ।

(५) **क्षिप्रग्राही**–कोई जल्दी जाने, वह **'क्षिप्रग्राही मतिज्ञान'** कहा जाता है ।

(६) **अक्षिप्रग्राही**–कोई विचार करते-करते लम्बे समय में जाने, वह **'अक्षिप्रग्राही मतिज्ञान'** कहा जाता है ।

(७) **निश्रितग्राही**–जैसे ध्वजा से मन्दिर जाने वैसे कोई लिंग निश्राए जाने, वह **'निश्रितग्राही मतिज्ञान'** कहलाता है ।

(८) **अनिश्रितग्राही**–कोई लिंग निश्रा बिना जाने, वह **अनिश्रितग्राही मतिज्ञान'** कहा जाता है ।

(९) **संदिग्धग्राही**–कोई संशय सहित जाने, उसे **'संदिग्धग्राही मतिज्ञान'** कहा है ।

(१०) **असंदिग्धग्राही**–कोई संशयरहित जाने, वह **'असंदिग्धग्राही मतिज्ञान'** कहलाता है।

(११) **ध्रुवग्राही**–जो एक बार ग्रहण किया हो वह सर्वदा रहे, अर्थात् उसका विस्मरण न हो, वह **'ध्रुवग्राही मतिज्ञान'** कहा जाता है।

(१२) **अध्रुवग्राही**–जो एक बार ग्रहण किया हो वह सर्वदा न रहे, उसे **'अध्रुवग्राही मतिज्ञान'** कहा है।

मतिज्ञान के अट्ठाईस भेदों को उपर्युक्त बारह भेदों से गुणाकार करने पर तीन सौ छत्तीस (३३६) भेद होते हैं। उनमें **औत्पातिकी** (अपनी मेले तत्काल उत्पन्न होने वाली) बुद्धि, **वैनेयिकी** (गुरु सेवा से उत्पन्न होने वाली) बुद्धि, **पारिणामिकी** (वय के परिपाक से उत्पन्न होने वाली) बुद्धि, और **कार्मिकी-कर्मजा** (काम करते हुए उत्पन्न होने वाली) बुद्धि, इन चारों बुद्धियों को मिलाने पर तीन सौ चालीस (३४०) भेद **मतिज्ञान** के होते हैं।

द्रव्यसे–मतिज्ञानवाले सर्वद्रव्य जाणे, किन्तु देखे नहीं।

क्षेत्र से–मतिज्ञानवाले सर्व क्षेत्र लोकालोक जाने, परन्तु देखे नहीं।

काल से–मतिज्ञानवाले सर्व काल जाने, किन्तु देखे नहीं।

भाव से–मतिज्ञानवाले सर्व भाव जाने, परन्तु देखे नहीं। मतिज्ञान का विरोधी मतिअज्ञान है। जो मतिज्ञानावरणीय कहा जाता है। सम्यग्ज्ञान के मुख्य पाँच भेद पैकी प्रथम--पहला भेद यह मतिज्ञान है।

(२) **श्रुतज्ञान**–

आत्मा को इन्द्रिय और मन के सहकार से शब्दार्थ की पर्यालोचना वाला (इस शब्द का यह अर्थ है, ऐसा) जो ज्ञान है, वही **'श्रुतज्ञान'** कहा जाता है। इसके चौदह भेद शास्त्र में प्रतिपादित किये गए हैं। वे भेद क्रमशः निम्नलिखित हैं--

श्रुतज्ञान के चौदह भेद

(१) **अक्षरश्रुत**–अक्षरों से अभिलाप्य भावों को यानी कथनीय पदार्थों को प्रतिपादन करने में मुख्य भाग भजने वाला जो श्रुत, वही **'अक्षरश्रुत'** कहलाता है। उसके तीन भेद हैं--

(क) **संज्ञाक्षर**–अठारह प्रकार की लिपि। हंसलिपि आदि।

(ख) **व्यंजनाक्षर**–अ से ह पर्यन्त के उच्चार्यमाण बावन अक्षर।

(ग) **लब्ध्यक्षर**–अक्षर की उपलब्धि । अर्थात्--शब्द-श्रवणादिक से होते हुए पदार्थ के बोध वाले अक्षर का ज्ञान ।

(२) **अनक्षरश्रुत**–खंखारने तथा सिरकम्पनादिक से मुझको बुलाता है या निषेध करता है इत्यादि अभिप्राय वाला जो जानना है, उसे '**अनक्षरश्रुत**' कहा है ।

(३) **संज्ञिश्रुत**–संज्ञिजीव का श्रुत, वही '**संज्ञिश्रुत**' कहलाता है । संज्ञा जिसको हो वही संज्ञी है । संज्ञा यानी सम्यग् प्रकारे जानना । उसके भी तीन भेद हैं--

(क) **दीर्घकालिकी संज्ञा**–'यह किस तरह करना ?' तथा 'यह कब होगा ?' इत्यादि भूत और भविष्यत्कालीन विचार शक्ति वाली जो सज्ञा, वह '**दीर्घकालिकी संज्ञा**' है । इसका दूसरा नाम '**संप्रधारण सज्ञा**' भी है । संज्ञी पचेन्द्रिय जीव को यह दीर्घकालिकी संज्ञा होती है ।

(ख) **हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा**–वर्त्तमान काल की ही विचारशक्ति वाली जो संज्ञा है, वह '**हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा**' है । विकलेन्द्रिय और असज्ञी जीवों को यह '**हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा**' होती है ।

(ग) **दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा**–विशिष्ट श्रुतज्ञान के क्षयोपशमवाले और हेयोपादेय की प्रवृत्ति वाले सम्यग्-

दृष्टिवंत जीव की जो विचारणा, वही **'दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा'** होती है ।

(४) **असंज्ञिश्रुत**–मनरहित जीव का इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाला श्रुत, **'असंज्ञिश्रुत'** कहा जाता है ।

(५) **सम्यक्श्रुत**–सम्यग्दृष्टिवंत व्यक्ति द्वारा ग्रहण किया हुआ श्रुत, **'सम्यक्श्रुत'** कहलाता है ।

(६) **मिथ्याश्रुत**–मिथ्यादृष्टिवन्त व्यक्ति द्वारा ग्रहण किया हुआ श्रुत, **'मिथ्याश्रुत'** कहा जाता है ।

(७) **सादिश्रुत**–आदि वाला जो श्रुत, वह **'सादिश्रुत'** कहा जाता है ।

(८) **अनादिश्रुत**–आदि बिना का जो श्रुत है, वह **'अनादिश्रुत'** कहलाता है ।

(९) **सपर्यवसितश्रुत**–सान्त अर्थात् अन्तवाला जो श्रुत है, वह **'सपर्यवसितश्रुत'** कहा जाता है ।

(१०) **अपर्यवसितश्रुत**–अनंत अर्थात् अन्त बिना का जो श्रुत है, वह **'अपर्यवसितश्रुत'** कहा जाता है ।

(११) **गमिकश्रुत**–समान पाठ वाला जो श्रुत है, वह **'गमिकश्रुत'** कहलाता है । (यह श्रुत प्रायः दृष्टिवाद में है) ।

(१२) **अगमिकश्रुत**–भिन्न अक्षर के पाठ वाला श्रुत **'अगमिकश्रुत'** कहा जाता है। (यह श्रुत प्रायः कालिक-श्रुत में आता है)।

(१३) **अंगप्रविष्टश्रुत**–द्वादशांगी के आचारांग आदि बारह अंग का जो श्रुत है, वह **'अंगप्रविष्टश्रुत'** कहा जाता है।

(१४) **अनंगप्रविष्टश्रुत**–द्वादशांगी के अतिरिक्त आवश्यक आदि अंग बाह्य जो श्रुत, वह **'अनंगप्रविष्टश्रुत'** कहा गया है।

इस तरह श्रुतज्ञान के चौदह भेद हैं। शास्त्र में जैसे श्रुतज्ञान के उपर्युक्त चौदह भेद प्रतिपादित किये हैं, वैसे उनके बीस भेद भी कहे हैं; जो क्रमशः निम्नलिखित हैं–

श्रुतज्ञान के बीस भेद

(१) **पर्यायश्रुत**–ज्ञान का एक सूक्ष्म अंश। लब्धि अपर्याप्तासूक्ष्म निगोदिया जीव का जो सर्व से जघन्य श्रुत उससे, अन्य जीव में एक ज्ञान का अविभाग-पलिच्छेद-अंश बढ़े, वह **'पर्यायश्रुत'** है।

(२) **पर्यायसमासश्रुत**–दो, तीन आदि ज्ञान के अंश बढ़ें, अर्थात् जीव-आत्मा में अनेक पर्याय का ज्ञान, वह

'**पर्यायसमासश्रुत**' है ।

(३) **अक्षरश्रुत**–अकारादि जो लब्ध्यक्षर, वह '**अक्षरश्रुत**' है ।

(४) **अक्षरसमासश्रुत**–दो, तीन अक्षर का जानना, वह '**अक्षरसमासश्रुत**' है ।

(५) **पदश्रुत**–'अर्थपरिसमाप्तिः पदम्' या 'विभक्त्यन्तं पदम्' इस तरह कहा जाता है, लेकिन यह पद इधर लेने का नहीं है । अपने तो जैनागम के श्रीआचारांगसूत्र में अठारह हजार (१८०००) पद कहे हैं । उन पैकी एक पद का ज्ञान, वही '**पदश्रुत**' है ।

(६) **पदसमासश्रुत**–पदश्रुत में बताये हुए पदों के समुदाय-अनेक पदों का ज्ञान, वह '**पदसमासश्रुत**' है ।

(७) **संघातश्रुत**–'गइ इंदिए अ काए०' इत्यादि गाथा में कहे हुए गत्यादिक का जो एकदेश (देवगत्यादिक) की मार्गणा का ज्ञान, वह '**संघातश्रुत**' है ।

(८) **संघातसमासश्रुत**–गत्यादिक के दो-तीन मार्गणा का ज्ञान, वह '**संघातसमासश्रुत**' है ।

(९) **प्रतिपत्तिश्रुत**–गत्यादिक एक द्वारे जीव की मार्गणा का ज्ञान, वह '**प्रतिपत्तिश्रुत**' है ।

(१०) **प्रतिपत्तिसमासश्रुत**–दो से लगाकर सभी मार्गणा का ज्ञान, वह '**प्रतिपत्तिसमासश्रुत**' है ।

(११) **अनुयोगश्रुत**–'संत-पय-परुवणया०' इत्यादिक अनुयोग पैकी एक का ज्ञान, वही '**अनुयोगश्रुत**' है ।

(१२) **अनुयोगसमासश्रुत**–दो-तीन अनुयोग को जानना, वह '**अनुयोगसमासश्रुत**' है ।

(१३) **प्राभृतप्राभृतश्रुत**–प्राभृत का अन्तरवर्त्ति अधिकार विशेष, वह '**प्राभृतप्राभृतश्रुत**' है ।

(१४) **प्राभृतप्राभृतसमासश्रुत**–दो-तीन प्राभृतप्राभृत का ज्ञान, वह '**प्राभृतप्राभृतसमासश्रुत**' है ।

(१५) **प्राभृतश्रुत**–वस्तु का अन्तरवर्त्ति अधिकार, वह '**प्राभृतश्रुत**' है ।

(१६) **प्राभृतसमासश्रुत**–दो-तीन प्राभृतों का ज्ञान, वह '**प्राभृतसमासश्रुत**' है ।

(१७) **वस्तुश्रुत**–पूर्वान्तरवर्त्ति अधिकार, वह '**वस्तुश्रुत**' है ।

(१८) **वस्तुसमासश्रुत**–दो-तीन का ज्ञान, वह '**वस्तुसमासश्रुत**' है ।

(१९) **पूर्वश्रुत**–उत्पादपूर्वादिक । एक पूर्व का ज्ञान, वह **'पूर्वश्रुत'** है ।

(२०) **पूर्वसमासश्रुत**–दो-तीन का ज्ञान तथा चौदह पूर्व का ज्ञान, वह **'पूर्वसमासश्रुत'** है ।

इस तरह श्रुतज्ञान के बीस भेद भी होते हैं ।

द्रव्य से–श्रुतज्ञानी उपयोगवंतथको सर्व द्रव्य जाने-देखे ।

क्षेत्र से–श्रुतज्ञानी उपयोगवंतथको सर्व क्षेत्र लोकालोक जाने-देखे ।

काल से–श्रुतज्ञानी उपयोगवंतथको सर्व काल जाने-देखे ।

भाव से–श्रुतज्ञानी उपयोगवंतथको सर्व भाव जाने-देखे ।

श्रवण से जो ज्ञान होता है, वह मुख्यपने श्रुतज्ञान है । इसमें श्रोत्रेन्द्रिय और मन का सहकार मुख्य है । मतिज्ञान का क्षयोपशम जैसा होता है वैसा ही श्रुतज्ञान होता है । अन्य चार ज्ञानों से भी श्रुतज्ञान की विशेषता विशेष है । कारण यही है कि चार ज्ञान वाले भी श्रुतज्ञान के द्वारा ही लोकों का उपकार कर सकते हैं । अर्थात् केवलज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और अवधिज्ञान ये तीनों

ज्ञान विशिष्ट हैं। तथापि विश्व के प्राणियों का उपकार वचन द्वारा ही हो सकता है। श्रुतज्ञान द्वारा ही सदुपदेश दिया जाता है, इसलिये शास्त्र में श्रुतज्ञान के अतिरिक्त शेष चारों ज्ञानों को मूक (मूंगे) कहा है। बोलता ज्ञान श्रुतज्ञान ही है। विश्व में व्यवहार मति-श्रुत पूर्वक प्रवर्त्तता है। उसमें भी श्रुतज्ञान अति मार्गदर्शक है, इतना ही नहीं स्व-पर प्रकाशक भी है।

सर्वज्ञ विभु श्रीजिनेश्वर-तीर्थंकर भगवन्त भाषित तथा श्रुतकेवली श्रीगणधर भगवन्त गुंथित सम्पूर्ण द्वादशांगी श्रुतज्ञान का सर्वस्व है। उनके सामर्थ्य से वर्त्तमान में भी तीन लोक के भावों को हस्त में रहे हुए निर्मल जल की भाँति स्पष्ट रूप में जान सकते हैं। ऐसा ही आत्मा विश्व में वन्दनीय, पूजनीय, माननीय एवं वर्णनीय होता है; वह भवसिन्धु से स्वयं तिरता है और दूसरे को भी पार उतारता है।

पाँच ज्ञानों में मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, ये परोक्ष ज्ञान कहे जाते हैं। कारण यह है कि मति और श्रुत दोनों ज्ञान होने में इन्द्रियों की अपेक्षा रहती है तथा अवधि, मनःपर्यव और केवल इन तीनों ज्ञानों के होने में इन्द्रियों की अपेक्षा नहीं रहने से ये तीनों ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान कहे जाते हैं। श्रुतज्ञान का विरोधी श्रुतअज्ञान है। जो श्रुत-

ज्ञानावरणीय कहा जाता है। सम्यग्ज्ञान के मुख्य पाँच भेद पैकी दूसरा भेद यह श्रुतज्ञान है।

(३) अवधिज्ञान–

आत्मा को इन्द्रियों की अपेक्षा बिना रूपी द्रव्य का मर्यादापूर्वक जो ज्ञान होता है, वह **'अवधिज्ञान'** कहा जाता है। अवधिज्ञान के दो भेद हैं। (१) **भवप्रत्ययिक** और (२) **गुणप्रत्ययिक**।

(१) **भवप्रत्ययिक**–उस उस भव की अपेक्षा से होने वाला ज्ञान, **'भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान'** है, जो सम्यक्त्ववंत देवता तथा सम्यक्त्ववंत नारकी जीवों को होता है।

(२) तपश्चर्या प्रमुख गुण की अपेक्षा से होने वाला ज्ञान, **'गुणप्रत्ययिक'** या **'लब्धिप्रत्ययिक'** अवधिज्ञान है।

गुणप्रत्ययिक अवधिज्ञान के छह भेद प्रतिपादित किये गए हैं। क्रमशः वे इस तरह हैं--

(१) **अनुगामी**–चक्षु-आँख की भाँति जहाँ जाय वहाँ पर भी साथ ही रहने वाला ज्ञान, **'अनुगामी अवधि-ज्ञान'** है।

(२) **अननुगामी**–सांकल से बंधे हुए दीपक-दीवा की भाँति, जहाँ उत्पन्न हुआ अवधिज्ञान वहीं पर रहे अन्यत्र

न जा सके, वह **'अननुगामी अवधिज्ञान'** है। शृंखलाबद्ध दीपक की भाँति यह ज्ञान तद्-तद् क्षेत्रनिमित्तक क्षयोपशमवंत माना है।

(३) **वर्द्धमान**–अधिक ईंधन डालने से जैसे अग्नि की ज्वाला बढ़ती है, वैसे ही आत्मा की प्रशस्त-प्रशस्ततर अध्यवसाय समये-समये पूर्व करते बढ़ते रहते हैं, वह **'वर्द्धमान अवधिज्ञान'** है।

(४) **हीयमान**–पूर्व आत्मा के शुभ परिणाम से ज्ञान अति उत्पन्न हो जाय, बाद में तथाविध सामग्री के अभावे पड़ते हुए परिणाम से धीरे-धीरे न्यून-हीन हो जाय, वह **'हीयमान अवधिज्ञान'** है।

(५) **प्रतिपाति**–प्राप्त किया हुआ जो ज्ञान वापिस चला जाय, वह **'प्रतिपाति अवधिज्ञान'** है।

(६) **अप्रतिपाति**–प्राप्त किया हुआ जो ज्ञान चला न जाय, वह **'अप्रतिपाति अवधिज्ञान'** है।

अवधिज्ञान के एक प्रकार को **'परमावधिज्ञान'** कहा जाता है। जिसको यह परमावधिज्ञान होता है, वह आत्मा अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् तत्काल ही **केवलज्ञान** प्राप्त करता है।

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान चारों गतियों के जीवों को होता है।

प्रश्न–**अवधिज्ञानी आत्मा** कितना जान सकता है और देख सकता है ?

उत्तर–इसके विषय में द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से कहा है कि आत्मा---

(१) **द्रव्य से**–जघन्यपने अनंत रूपी द्रव्यों को देख-जान सकता है और उत्कृष्टपने सर्व रूपी द्रव्यों को जान-देख सकता है।

(२) **क्षेत्र से**–जघन्यपने अंगुल के असंख्यातवें भाग को जाने-देखे तथा उत्कृष्टपने अलोक में लोक जैसे असंख्याते खंडुक को जाने-देखे।

(३) **काल से**–जघन्यपने आवलिका के असंख्यातवें भाग को जाने-देखे तथा उत्कृष्टपने असंख्याती उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी लगे अतीत-अनागत काल को जाने-देखे।

(४) **भाव से**–जघन्यपने अनंताभाव को जाने-देखे तथा उत्कृष्टपने भी अनंताभाव को जाने-देखे। सर्व भाव के अनंतवें भाग को जाने-देखे।

विशेष---अवधिज्ञान के विषय में ज्ञान की वृद्धि, क्षेत्र

और काल के अनुसार होती है ।

* अवधिज्ञानी जीव जब क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें भाग को देखता है तब काल से आवलिका के असंख्यातवें भाग पर्यंत देखता है ।

* अवधिज्ञानी जीव जब क्षेत्र से अंगुल का संख्यातवाँ भाग देखता है, तब काल से भी आवलिका का संख्यातवाँ भाग देखता है ।

* अवधिज्ञानी जीव जब क्षेत्र से पूर्ण अंगुल देखता है, तब काल से कुछ न्यून आवलिका देखता है ।

* अवधिज्ञानी जीव जब क्षेत्र से अंगुल पृथक्त्व देखता है, तब काल से पूर्ण आवलिका देखता है ।

* अवधिज्ञानी जीव जब क्षेत्र से एक हस्त प्रमाण को देखता है, तब काल से अन्तर्मुहूर्त्त देखता है ।

* अवधिज्ञानी जीव जब क्षेत्र से एक कोस देखता है, तब काल से दिन में कुछ न्यून देखता है ।

* अवधिज्ञानी जीव जब क्षेत्र से एक योजन देखता है, तब काल से नौ दिन तक की द्रव्यों की विशाल पर्यायों को देखता है ।

* अवधिज्ञानी जीव जब क्षेत्र से पच्चीस योजन पर्यंत जोहता है, तब काल से पखवाड़िया के भीतर तक जोहता है ।

* अवधिज्ञानी जीव जब क्षेत्र से भरतक्षेत्र पूर्ण जोहता है, तब काल से पक्ष पर्यंत जोहता है ।

* अवधिज्ञानी जीव जब क्षेत्र से पूर्ण जम्बूद्वीप जोहता है, तब काल से मास उपरान्त देखता है ।

* अवधिज्ञानी जीव जब क्षेत्र से अढ़ीद्वीप देखता है, तब काल से वर्ष पर्यंत देखता है ।

* अवधिज्ञानी जीव जब क्षेत्र से रुचकद्वीप पर्यंत जोहता है, तब काल से २ से ९ वर्ष जोहता है ।

* अवधिज्ञानी जीव जब क्षेत्र से संख्याता द्वीप देखता है, तब काल से संख्याता काल देखता है ।

* अवधिज्ञानी जीव जब क्षेत्र से असंख्यात द्वीप देखता है, तब काल से असंख्यात काल जोहता है ।

यह ज्ञान आत्मप्रत्यक्ष है और तीनों कालों के पौद्गलिक भावों को अवधिज्ञान से आत्मा जोह सकती है। अवधिज्ञान सम्यक्त्ववंत को होता है और विभंगज्ञान मिथ्यात्ववंत को होता है । अवधिज्ञान की सामे विभंगज्ञान

है जो आवरण के रूप में माना गया है। सम्यग्ज्ञान के मुख्य पांच भेद पैकी तीसरा भेद यह अवधिज्ञान है।

(४) मनःपर्यवज्ञान–

इन्द्रियों और मन की अपेक्षा बिना ढाईद्वीप में रहे हुए संज्ञिपंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जो ज्ञान जानता है, वह '**मनःपर्यवज्ञान**' कहा जाता है। उसके दो भेद हैं। (१)**ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान** और (२)**विपुलमति मनःपर्यवज्ञान**।

(१) **ऋजुमति**–संज्ञिपंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जो सामान्यपने जानता है, वह '**ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान**' है। जैसे–इसने अपने मन में घट का चिन्तन सामान्य रूप से किया। इतना ही ऋजुमति वाला सामान्यपने मन का अध्यवसाय ग्रहण करता है।

(२) **विपुलमति**–संज्ञिपंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जो विशेषपने जानता है, वह '**विपुलमति मनः पर्यवज्ञान**' है। जैसे–इसने अपने मन में घट का चिन्तन विशेष रूप में किया कि यह घट 'सुवर्ण का सुकोमल' इत्यादि है। इस तरह विपुलमति वाला विशेषपने मन के अध्यवसाय को ग्रहण करता है।

(१) **द्रव्य से**–ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान वाले अनंत

प्रदेश से स्कंध जाने-देखे तथा विपुलमति वाले विशुद्धपने जाने-देखे ।

(२) **क्षेत्र से**—ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान वाले नीचे प्रथम नारकी रत्नप्रभा के क्षुल्लक प्रतर तक, ऊंचे ज्योतिषी के ऊपर के तल तक तथा तिर्यक् ढाईद्वीप में दो समुद्र में आये हुए १५ कर्मभूमि, ३० अकर्मभूमि तथा ५६ अन्तर्द्वीप में रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के मनोगत भाव जाने-देखे । इसी तरह विपुलमति वाले वही क्षेत्र ढाई अंगुल अधिक विशुद्ध जाने-देखे ।

(३) **काल से**—ऋजुमति वाले जघन्य से पल्योपम के असंख्यातवें भाग जाने-देखे तथा उत्कृष्ट से पल्योपम के असंख्यातवें भाग अतीत-अनागत काल जाने-देखे । विपुलमति वाले उसे ही अधिक रूप में तथा विशुद्धतर जाने-देखे ।

(४) **भाव से**—ऋजुमति वाले अनंता भाव जाने-देखे । सर्व भावों का अनंतवाँ भाग जाने-देखे । विपुलमति वाले उसे ही अधिक रूप में और विशुद्धतर जाने-देखे ।

इस तरह मनःपर्यवज्ञानी द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से जान सकता है और देख सकता है । यह चतुर्थ मनःपर्यवज्ञान मनुष्य में ही होता है । उसमें भी

संयमी-साधुवेश वाले को ही होता है। ऋजुमति ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् चला जाता है, लेकिन विपुलमति ज्ञान तो उसी भव में पंचम केवलज्ञान प्राप्त हो तब तक रहता है।

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान ये चारों ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से आत्मा को छद्मस्थ अवस्था में प्राप्त होते हैं। इसलिये शास्त्र में मत्यादि चारों ज्ञानों को छाद्मस्थिक ज्ञान कहा है।

(५) केवलज्ञान–

तीनों काल के लोक और अलोक का निखिल स्वरूप हस्त में रहे हुए आँवले की भाँति प्रत्यक्ष रूप में जो जोहता है, वह ज्ञान **'केवलज्ञान'** कहा जाता है।

आत्मा को ज्ञानावरणीय कर्म का जब सर्वथा क्षय हो जाता है तब यह **केवलज्ञान** प्राप्त होता है। इसलिये यह ज्ञान **'क्षायिकज्ञान'** भी कहा जाता है। मत्यादि चारों ज्ञानों के पश्चाद् यह ज्ञान होता है, इसलिये इसको **'पंचमज्ञान'** भी कहा है। सर्व ज्ञानों में श्रेष्ठ-सर्वोत्तम-सर्वोत्कृष्ट होने से उसको **'सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम** या **सर्वोत्कृष्ट ज्ञान'** तरीके भी सम्बोधते हैं। सभी ज्ञानों के अन्त में यह ज्ञान होता है, इसलिये इसे **'अन्तिम ज्ञान'** भी कहते

हैं। इस ज्ञान द्वारा केवली भगवन्त भूतकाल, वर्त्तमानकाल और भविष्यत्काल–इन तीनों कालों सम्बन्धी सर्व द्रव्य के सर्व भावों को एक ही समय में जानते हैं।

(१) **द्रव्य से**–केवलज्ञानी रूपी-अरूपी सर्व द्रव्य को जाने-देखे।

(२) **क्षेत्र से**–केवलज्ञानी लोक-अलोक सर्वक्षेत्र जाने-देखे।

(३) **काल से**–केवलज्ञानी सर्व अतीत-अनागत-वर्त्तमान काल समकाले जाने-देखे।

(४) **भाव से**–विश्व के सर्व जीव-अजीव के सर्व भावों को जाने-देखे।

इस तरह केवली भगवन्त केवलज्ञान से विश्व के सर्व द्रव्य, सर्व क्षेत्र, सर्व काल और सर्व भाव जानते-देखते हैं।

केवलज्ञान की महत्ता–विशिष्टता

इस ज्ञान की महत्ता तथा विशिष्टता अनन्य और अद्भुत है।

(१) केवल यानी एक। मत्यादि चारों ज्ञानों के अनेक भेद हैं, किन्तु केवलज्ञान तो एक ही है। उसका

कोई भेद नहीं। प्रत्येक सम्यक्त्ववंत-समकिती जीव को न्यून में न्यून अर्थात् अल्प में अल्प मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो ज्ञान होते हैं। उनके साथ में किसी को अवधिज्ञान (तीसरा ज्ञान) भी होता है तथा किसी को इन तीनों ज्ञानों के साथ में चौथा मनःपर्यवज्ञान भी होता है। पंचम ज्ञान प्राप्त करने वाले जीव को मात्र केवलज्ञान एक ही होता है। कारण यह है कि—जब केवलज्ञान प्राप्त होता है तब मत्यादि चारों ज्ञान नहीं रहते अर्थात्—अदृश्य हो जाते हैं। केवलज्ञान एक ही रहता है।

(२) केवल यानी **संपूर्ण**। यह केवलज्ञान ज्ञानावरणीयादि चार घाती कर्मों का सर्वथा क्षय होने से आत्मा में एक साथे सम्पूर्णपने उत्पन्न होता है। सभी केवलज्ञानी जीवों का यह ज्ञान सम्पूर्णपने एक समान है। पूर्व के मत्यादि चारों ज्ञान क्षयोपशम भावे अनेक प्रकार के होने से जीवों में न्यूनाधिक होते हैं।

(३) केवल यानी **असाधारण**। केवलज्ञान के समान अन्य कोई भी ज्ञान नहीं होने से उसे **असाधारण** कहा जाता है।

(४) केवल यानी **अव्याघात-अव्याबाध**। केवलज्ञान रूपी सूर्य का सम्पूर्ण प्रकाश सर्वत्र लोक और अलोक में प्रसर जाता है। किसी भी स्थल में उसको व्याघात नहीं

होता है। इसलिये उसे **'अव्याघात'** जानना। इस ज्ञान वाले को किसी प्रकार की पीड़ा, बाधा, दुःख आदि नहीं होते हैं इसलिये **'अव्याबाध'** भी जानना।

(५) केवल यानी **अनंत**। केवलज्ञानी आत्मा अपने केवलज्ञान द्वारा रूपी या अरूपी सर्व द्रव्यों को जो विश्व में अनंतां हैं, सभी को जानते हैं। इसलिये इसे **'अनंत'** कहा गया है तथा यह केवलज्ञान अनंत काल तक रहने वाला है। इसलिये भी **'अनंत'** कहा जाता है।

मत्यादि चार ज्ञानों का काल सादि सान्त है लेकिन केवलज्ञान का काल सादि अनंत है। कारण कि यह ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् कभी भी किसी काल में जाता नहीं है। मोक्ष में भी यही केवलज्ञान आत्मा के साथ में ही रहने वाला है। सम्यग्ज्ञान के मुख्य पाँच भेद पैकी यह **केवलज्ञान** पाँचवाँ भेद है। पाँचों ज्ञान मिलकर के सम्यग्ज्ञान के एकावन भेद होते हैं--

(१) मतिज्ञान के भेद–	२८
(२) श्रुतज्ञान के भेद–	१४
(३) अवधिज्ञान के भेद–	६
(४) मनःपर्यवज्ञान के भेद–	२
(५) केवलज्ञान	१
	५१

ज्ञान की अनेक उपमाएँ

शास्त्र में सम्यग्ज्ञान की अनेक उपमाएँ प्रतिपादित की गई हैं। जैसे–

(१) सम्यग्ज्ञान **'दिव्य चक्षु'** के समान है। आत्मा चर्मचक्षु द्वारा मात्र बाह्य पदार्थों को देख सकती है, किन्तु सम्यग्ज्ञान रूपी दिव्य चक्षु (नयन-नेत्र-आंख) द्वारा बाह्य तथा अतीन्द्रिय दोनों पदार्थों को देख सकती है।

(२) सम्यग्ज्ञान **'अद्वितीय सूर्य'** के समान है। जैसे सूर्य के प्रकाश से अंधकार का विनाश होता है, वैसे ही सम्यग्ज्ञान रूपी अद्वितीय सूर्य से जीवों के अज्ञानरूपी अन्धकार का विनाश होता है।

(३) सम्यग्ज्ञान **'अपूर्व भूषण'** के समान है। जैसे अलंकार–आभूषण द्वारा आत्म सम्बद्ध देह की शोभा है, वैसे ही आत्मा की अनुपम शोभा रूप सम्यग्ज्ञान **'अपूर्व भूषण'** के समान है।

(४) सम्यग्ज्ञान आत्मा के अनंत गुणों पैकी का एक **'अनुपम महान् गुण'** है।

(५) सम्यग्ज्ञान आत्मा का **'अद्भुत खजाना'** है।

(६) सम्यग्ज्ञान कल्पवृक्ष और चिन्तामणि रत्नादिक

से भी अधिक मनोवांछित पूरक है ।

(७) सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्चारित्र के पूर्ण सहकार से आत्मा में लगे हुए कर्मों के बन्धन को हटाने वाला, स्वतन्त्र बनाने वाला, सद्चिदानंद स्वरूप मोक्ष का शाश्वत सुख दिलाने वाला और सद्धर्म के पञ्चपरमेष्ठिरूप **'अजोड़ महामन्त्र'** के समान है ।

(८) मोक्ष में भी आत्मा के साथ सदा काल रहने वाली यही सम्यग्ज्ञानरूप केवलज्ञान **'शाश्वत ज्योति'** है ।

(९) द्वादशांगी रूपी आगम आदि शास्त्र-भंडार के ताले खोलने के लिये सम्यग्ज्ञान **'अलौकिक कुञ्जी'** है तथा उनको सीखने-पढ़ने के लिये **'असाधारण धर्मशास्त्र'** है ।

(१०) किसी से भी न चुराई जा सके, आत्मा की ऐसी **'सच्ची धनमुंडी'** सम्यग्ज्ञान है ।

इस तरह सम्यग्ज्ञान की अनेक उपमाएँ हैं ।

ज्ञान सम्बन्धी विशिष्ट विचारणा

ज्ञान सम्बन्धी विशिष्ट विचारणा में दो मत हैं । (१) एक मत का कहना है कि **'एक केवलज्ञान ही है ।'** कारण यह है कि आत्मा में यह एक केवलज्ञान ही है । उस पर केवलज्ञानावरणीय कर्म का आवरण पड़ा है । उससे वह

केवलज्ञान आच्छादित हो जाता है और आच्छादन से जितने अंश शेष रह जाते हैं उनको ही क्रमशः मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय एवं मनःपर्यवज्ञानावरणीय ये चारों आच्छादित करते हैं अर्थात् ढँकते हैं। केवलज्ञान को केवलज्ञानावरणीय ही ढाँकता है। इस तरह सम्यग्ज्ञान के ये पाँचों आवरण हैं। आत्मा में जब प्रथम के मतिज्ञानावरणीयादि चारों आवरणों का क्षयोपशम होता है तब केवलज्ञान के अंश रूप मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान एवं मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होते हैं। केवलज्ञानावरणीय कर्म सर्वघाती होने से उसका कभी क्षयोपशम नहीं होता है। जब इन आवरणों का विनाश हो जाता है, तब आत्मा में आत्मा का मूल गुण रूप लोकालोक-प्रकाशक (ऐसा) पंचमज्ञान-केवलज्ञान प्रगट होता है। **'केवलं शुद्धम्, तदावरणापगमात्'**।

जिस प्रकार सूर्यास्त हो जाने पर चन्द्र, तारा एवं दीपकादिक प्रकाश करते हैं, उसी प्रकार केवलज्ञानावरण में मत्यादिक आवरण के क्षयोपशम होने पर जीवाजीवादि पदार्थों का कंईक प्रकाश होता है। सूर्योदय होने पर जैसे चन्द्रादिक का प्रकाश अन्तर्भूत होता है, वैसे केवलज्ञान का आवरण दूर होने पर मत्यादिक सर्व ज्ञान का प्रकाश उसमें ही अन्तर्भूत हो जाता है।

प्रश्न–'अत्र कश्चिद् वक्ति' इधर कोई कहते हैं कि मत्यादिक आप-आपके आवरण के क्षयोपशम से प्रगट होते हैं, वे सर्वथा क्षय होने पर अति विशुद्ध ही होते हैं ?

उत्तर–जैसे अति घन पटल में सूर्य का प्रकाश कटकूट आवरण विवर में प्रवेश करता हुआ घटादिक को प्रकाशता है, वैसे केवलज्ञानावरण होते हुए मत्यावरणादिक का क्षयोपशम (होते हुए) कांइक प्रकाश करता है वे मत्यादिकज्ञान कहे जाते हैं तथा सर्वावरण दूर हो जाने पर सूर्य की भाँति केवलज्ञान ही कहा जाता है, लेकिन अनेरे ज्ञान नहीं कहे जाते हैं।

(२) दूसरा मत है कि मत्यादि पाँच ज्ञान हैं। उनको आच्छादित करने वाले भी पाँच प्रकार के ज्ञानावरणीय कर्म हैं। जब उन कर्मों का विनाश होता है तब मति आदि पाँचों ज्ञान प्रगट होते हैं। परन्तु पंचम केवलज्ञान के आगे वे मत्यादि चारों ज्ञान निरर्थक होने से उनकी विवक्षा नहीं की है। इस विषय में शास्त्र में केवलज्ञान को सूर्य की उपमा दी गई है और मतिज्ञानादि चारों ज्ञानों को चन्द्र की, ग्रह की, नक्षत्र की एवं तारा की उपमा दी गई है। कारण यह है कि जब सूर्य का उदय होता है तब उसके प्रकाश के आगे भले चन्द्र आदि का प्रकाश हो तो भी वे सभी निरर्थक होने से उनकी गिनती

नहीं होती है । इस तरह 'ज्ञान एक है' और 'ज्ञान पाँच हैं ?' ये दो मत प्रतिपादित किये गये हैं ।

विशेष–ज्ञान आत्मा का ही गुण है । प्रत्येक आत्मा में ज्ञान गुण है । ज्ञानावरणीय कर्म से यह गुण आच्छादित किया गया है अर्थात् ढँका गया है, तो भी प्रत्येक आत्मा में उस कर्म का न्यूनाधिक क्षयोपशम तो होता ही है, इसलिये न्यूनाधिक ज्ञान का अंश प्रगट रहता है ।

प्रत्येक जीव में मतिज्ञान का एवं श्रुतज्ञान का अंश प्रगट है । जीवों में मिथ्यात्व के उदय से सम्यग्दर्शन नहीं है, उनका ज्ञान अज्ञान स्वरूप में होने से मतिअज्ञान एवं श्रुतअज्ञान कहा जाता है । जगत के प्रत्येक मिथ्यात्वी जीव में मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान ये दोनों होते ही हैं, इतना ही नहीं किन्तु कितनेक अवधिलब्धिवन्त मिथ्यात्वी जीवों के विभंगज्ञान भी होता है । इसलिये मिथ्यात्वी जीवों में तीन अज्ञान प्रतिपादित किये गये हैं । इस अज्ञान के कारण मिथ्यात्वी जीव यथार्थपने वस्तुस्वरूप को नहीं जान सकते हैं ।

सम्यक्त्ववन्त-समकिती जीवों में मत्यादि पाँचों ज्ञान होते हैं । उनमें से प्रत्येक सम्यक्त्ववन्त जीव को मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दोनों ज्ञान अवश्य होते हैं । अवधि-लब्धिवन्त जीव को अवधिज्ञान होने से मति-श्रुत-अवधि

ये तीनों ज्ञान होते हैं। किसी जीव के मति और श्रुत के साथ मनःपर्यवज्ञान होने से मति-श्रुत-मनःपर्यव ये तीनों ज्ञान भी होते हैं। किसी जीव के मति-श्रुत-अवधि एवं मनःपर्यव ये चारों ज्ञान भी होते हैं। ऐसे ज्ञानवन्त जीवों को जब केवलज्ञान प्राप्त होता है तब अन्य ज्ञानों का अन्तर्भाव केवलज्ञान में हो जाने से एक केवलज्ञान ही रहता है।

सम्यग्ज्ञान के विषय में सारांश यह हुआ कि संसार में सम्यग्ज्ञानवन्त कितनेक जीवों को मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के पश्चाद् केवलज्ञान होता है। कितनेक आत्माओं को मतिज्ञान, श्रुतज्ञान एवं अवधिज्ञान के पश्चाद् या मतिज्ञान, श्रुतज्ञान एवं मनःपर्यवज्ञान के पश्चाद् केवलज्ञान होता है तथा कितनेक जीवों को मतिज्ञानादि चारों ज्ञानों के पश्चाद् केवलज्ञान होता है। परन्तु सभी श्रीतीर्थंकर भगवन्तों को क्रमशः मत्यादि चारों ज्ञान होने के बाद ही केवलज्ञान होता है।

श्रीसम्यग्ज्ञान के प्रकार

सम्यग्ज्ञान के मतिज्ञानादि मुख्य पाँच प्रकार हैं तथा उन्हीं के उत्तरभेद एकावन हैं। जिनका संक्षिप्त वर्णन पूर्व में आ गया है। प्रकारान्तरेण अन्य भी तीन

प्रकार ज्ञान के हैं। (१) **विषय प्रतिभास ज्ञान,** (२) **आत्म-परिणतिमत् ज्ञान** और (३) **तत्त्वसंवेदन ज्ञान**।

(१) **विषय प्रतिभास**–श्रद्धा और प्रवृत्तिहीन जो ज्ञान होता है, वह '**विषय प्रतिभास ज्ञान**' कहा जाता है। जो ग्रंथि-भेद पूर्व का है। यह ज्ञान जीव और अजीवादि तत्त्वों का भास मात्र कराता है, किन्तु उस ज्ञान का उसके जीवन पर कोई असर नहीं होता।

(२) **आत्मपरिणतिमत्**–श्रद्धायुक्त आत्म - परिणति वाला ज्ञान '**आत्मपरिणतिमत् ज्ञान**' कहा जाता है। हेय-उपादेय की जवाबदारी वाला ज्ञान भी '**आत्मपरिणतिमत् ज्ञान**' कहा जाता है। आत्मा में परिणाम पाया हो, किन्तु आचरण में नहीं उतरा हो वह भी '**आत्मपरिणतिमत् ज्ञान**' कहा गया है।

(३) **तत्त्वसंवेदन**–श्रद्धा और प्रवृत्तियुक्त ज्ञान '**तत्त्व-संवेदन ज्ञान**' कहा जाता है। ज्ञानवन्त जैसा जाने वैसा आचरते हैं। जैसे सर्प के ज्ञान वाला व्यक्ति सर्प को देखते ही दूर भागता है, वैसे यह ज्ञानवंत व्यक्ति पापरूपी सर्प से दूर भागता है।

इन तीनों ज्ञानों में से पाप-भयविहीन ज्ञान '**विषय प्रतिभास ज्ञान**' मिथ्याज्ञान है। पाप के भय वाला ज्ञान

'आत्मपरिणतिमत् ज्ञान' और पाप के त्याग वाला ज्ञान 'तत्त्वसंवेदन ज्ञान' है; ये दोनों ज्ञान सम्यग्ज्ञान हैं।

श्रीजिनेश्वरदेव द्वारा कथित आगमशास्त्र में सम्यग्-ज्ञान की मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान एवं केवलज्ञान ये पाँच प्रकारे प्रसिद्धि सुप्रसिद्ध है।

ज्ञानपद के एकावन गुण (भेद)

शास्त्र में ज्ञानपद के एकावन (५१) गुण (भेद) प्रतिपादित किये गये हैं। वे निम्नलिखित हैं—

(१) स्पर्शनेन्द्रिय - व्यञ्जनावग्रहमतिज्ञान।

(२) रसनेन्द्रिय - व्यञ्जनावग्रहमतिज्ञान।

(३) घ्राणेन्द्रिय - व्यञ्जनावग्रहमतिज्ञान।

(४) श्रोत्रेन्द्रिय - व्यञ्जनावग्रहमतिज्ञान।

(५) स्पर्शनेन्द्रिय - अर्थावग्रहमतिज्ञान।

(६) रसनेन्द्रिय - अर्थावग्रहमतिज्ञान।

(७) घ्राणेन्द्रिय - अर्थावग्रहमतिज्ञान।

(८) चक्षुरिन्द्रिय - अर्थावग्रहमतिज्ञान।

(९) श्रोत्रेन्द्रिय - अर्थावग्रहमतिज्ञान।

(१०) मानसार्थावग्रहमतिज्ञान ।

(११) स्पर्शनेन्द्रिय - ईहामतिज्ञान ।

(१२) रसनेन्द्रिय - ईहामतिज्ञान ।

(१३) घ्राणेन्द्रिय - ईहामतिज्ञान ।

(१४) चक्षुरिन्द्रिय - ईहामतिज्ञान ।

(१५) श्रोत्रेन्द्रिय - ईहामतिज्ञान ।

(१६) मनईहामतिज्ञान ।

(१७) स्पर्शनेन्द्रिय - अपायमतिज्ञान ।

(१८) रसनेन्द्रिय - अपायमतिज्ञान ।

(१९) घ्राणेन्द्रिय - अपायमतिज्ञान ।

(२०) चक्षुरिन्द्रिय - अपायमतिज्ञान ।

(२१) श्रोत्रेन्द्रिय - अपायमतिज्ञान ।

(२२) मनअपायमतिज्ञान ।

(२३) स्पर्शनेन्द्रिय - धारणामतिज्ञान ।

(२४) रसनेन्द्रिय - धारणामतिज्ञान ।

(२५) घ्राणेन्द्रिय - धारणामतिज्ञान ।

(२६) चक्षुरिन्द्रिय - धारणामतिज्ञान ।

(२७) श्रोत्रेन्द्रिय - धारणामतिज्ञान ।

(२८) मनोधारणामतिज्ञान ।

(२९) अक्षरश्रुतज्ञान ।

(३०) अनक्षरश्रुतज्ञान ।

(३१) संज्ञिश्रुतज्ञान ।

(३२) असंज्ञिश्रुतज्ञान ।

(३३) सम्यक्श्रुतज्ञान ।

(३४) मिथ्याश्रुतज्ञान ।

(३५) सादिश्रुतज्ञान ।

(३६) अनादिश्रुतज्ञान ।

(३७) सपर्यवसितश्रुतज्ञान ।

(३८) अपर्यवसितश्रुतज्ञान ।

(३९) गमिकश्रुतज्ञान ।

(४०) अगमिकश्रुतज्ञान ।

(४१) अंगप्रविष्टश्रुतज्ञान ।

(४२) अनंगप्रविष्टश्रुतज्ञान ।

(४३) अनुगामी अवधिज्ञान ।

(४४) अननुगामी अवधिज्ञान ।

(४५) वर्धमान - अवधिज्ञान ।

(४६) हीयमान - अवधिज्ञान ।

(४७) प्रतिपाति - अवधिज्ञान ।

(४८) अप्रतिपाति - अवधिज्ञान ।

(४९) ऋजुमतिमन:पर्यवज्ञान ।

(५०) विपुलमतिमन:पर्यवज्ञान ।

(५१) लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान ।

ज्ञानपद के ये उपरि कथित एकावनगुण(भेद)जानना ।

श्रीज्ञानपद का आराधन

श्रीज्ञानपद की आराधना एकावन प्रकार से होती है । कारण यही है कि सम्यग्ज्ञान के भेद एकावन (५१) हैं । इसलिये इन सब की आराधना करने के लिये आराधक महानुभाव एकावन प्रकार से सम्यग्ज्ञान का आराधन करते हैं । इस ज्ञान की प्राप्ति के लिये भव्यजनों को ज्ञानाचार के निरतिचारपने पालन पूर्वक, पढ़ना-पढ़ाना, लिखना-लिखाना, सुनना-सुनाना, पूजना-पुजाना, प्रचार करना-कराना एवं छपाना इत्यादि कार्य अवश्य करने

चाहिये। जिससे ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय हो ऐसी कोई भी योग्य प्रवृत्ति अहर्निश होनी चाहिये। ज्ञान और ज्ञानी की आशातना न हो इस तरह से उनकी भक्ति और बहुमान होना चाहिये। इस प्रकार इस पद का विधिपूर्वक आराधन हो सकता है।

ज्ञानपद का वर्ण श्वेत-उज्ज्वल क्यों ?

(१) आत्मा के जो-जो गुण हैं वे सभी श्वेत-शुक्ल, उज्ज्वल-सफेद वर्ण वाले हैं। इसलिये ज्ञानपद का वर्ण श्वेत कहा है।

(२) ज्ञान प्रकाश है और अज्ञान अन्धकार है। अन्धकार काला है और प्रकाश उज्ज्वल-धोळा है। ज्ञान रूपी प्रकाश से अज्ञान रूपी अन्धकार का विनाश होता है। प्रकाश का वर्ण शुक्ल-श्वेत होने से ज्ञान गुण का भी शुक्ल-श्वेत वर्ण है।

(३) ज्ञान स्फटिक के समान निर्मल है। इसलिये ज्ञान का श्वेत-उज्ज्वल वर्ण कहा है।

(४) ज्ञान का ध्यान करने वाली आत्मा शान्ति पाती है। श्वेत वर्ण युक्त ध्यान शान्ति के लिये है। अर्थात् ज्ञान का ध्यान आत्मा को शान्त करता है। श्वेत ध्यान

शान्ति के लिये ही है। इसलिये ज्ञान शुक्ल है और शुक्ल ध्यान आत्मा का ध्येय है।

उपर्युक्त कारणों से सम्यग्ज्ञान पद का वर्ण श्वेत-शुक्ल, उज्ज्वल-सफेद-धोळा माना है।

श्रीज्ञानपद का वर्णन

श्रीसिद्धचक्र-नवपद पैकी सप्तम श्रीज्ञानपद का वर्णन करते हुए **'श्रीनवपद प्रकरण'** में कहा है कि---

सव्वन्नुपणीयागम,-भणियाणजहट्ठियाणतत्ताणं।
जो सुद्धो अवबोहो, तं सन्नाणं मह पमाणं ॥ ७५ ॥

सर्वज्ञ प्रणीत आगम में प्रतिपादित किये हुए यथास्थित तत्त्वों का जो शुद्ध अवबोध है वह **सम्यग्ज्ञान** मेरे प्रमाण है ॥ ७५ ॥

जेणं भक्खाभक्खं, पिज्जापिज्जं अगम्म अवि गम्मं।
किच्चा किच्चं नज्जइ, तं सन्नाणं मह पमाणं ॥ ७६ ॥

जिसके द्वारा भक्ष्य और अभक्ष्य अर्थात् भक्ष्याभक्ष्य, पेय और अपेय अर्थात् पेयापेय, गम्य और अगम्य अर्थात् गम्यागम्य तथा कृत्य और अकृत्य अर्थात् कृत्याकृत्य ज्ञात है वह **सम्यग्ज्ञान** मेरे प्रमाण है ॥ ७६ ॥

सकलकिरियाण मूलं, सद्धा लोयंमि तीइ सद्धाए ।
जं किर हवइ मूलं, तं सन्नाणं मह पमाणं ।। ७७ ।।

लोक में सकल क्रिया का मूल श्रद्धा है और जो श्रद्धा का भी मूल (कारण) है वह **सम्यग्ज्ञान** मेरे प्रमाण है ।। ७७ ।।

जं मइसुयओहिमयं, मणपज्जवरूवं केवलमयं च ।
पंचविहं सुपसिद्धं, तं सन्नाणं मह पमाणं ।। ७८ ।।

मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवलज्ञान इन पांच प्रकारों से जो सुप्रसिद्ध है, वह **सम्यग्ज्ञान** मेरे प्रमाण है ।। ७८ ।।

केवलमणोहिणंपि हु, वयणं लोयाण कुणइ उवयारं ।
जं सुयमइरूवेणं, तं सन्नाणं मह पमाणं ।। ७९ ।।

केवलज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी तथा अवधिज्ञानी के भी वचन जो मतिश्रुत रूप से लोकों का उपकार करते हैं वह **सम्यग्ज्ञान** मेरे प्रमाण है ।। ७९ ।।

सुयनाणं चेव दुहा,-लसंगरूवं परूवियं जत्थ ।
लोयाणुवयारकरं, तं सन्नाणं मह पमाणं ।। ८० ।।

द्वादशांगरूप श्रुतज्ञान (ही) जिसे जिनागम में जग-उपकारी कहा है वह **सम्यग्ज्ञान** मेरे प्रमाण है ।। ८० ।।

तत्तुच्चिय जं भव्वा, पढंति पाढंति दिंति निसुणंति ।
पूयंति लिहावंति य, तं सन्नाणं मह पमाणं ।। ८१ ।।

जिन्हें इसलिये ही भव्यजन पढ़ते, पढ़ाते हैं, निश्रवण करते हैं, पूजते हैं और लिखाते हैं वह **सम्यग्ज्ञान** मेरे प्रमाण है ।। ८१ ।।

जस्स बलेणं अज्जवि, नज्जइ तियलोयगोयरवियारो ।
करगहियामलयं पिव, तं सन्नाणं मह पमाणं ।। ८२ ।।

जिसके बल से आज भी तीन लोक के भाव हाथ में रखे हुए आँवले की भाँति (स्पष्ट) ज्ञात होते हैं वह **सम्यग्ज्ञान** मेरे प्रमाण है ।। ८२ ।।

जस्स पसाएण जणा, हवंति लोयंमि पुच्छणिज्जा य ।
पुज्जाय वन्नणिज्जा, तं सन्नाणं मह पमाणं ।। ८३ ।।

जिसके पसाय (प्रसाद) से भव्यजन लोक में पूछने योग्य, मानने योग्य और प्रशंसा के योग्य होते हैं वह **सम्यग्ज्ञान** मेरे प्रमाण है ।। ८३ ।।

इस तरह इन गाथाओं से सिद्ध होता है कि **'सम्यग्-ज्ञान मेरे प्रमाण है'**। विश्व में ज्ञान का प्रचार सबसे ज्यादा है। लेकिन आत्मिक विकास और आत्मा की मुक्ति **सम्यग्ज्ञान** से ही होती है; मिथ्याज्ञान से कभी नहीं।

इसलिये **'सम्यग्ज्ञान मेरे प्रमाण है'** इस वाक्य को अहर्निश स्मरण करना, कभी भी भूलना नहीं ।

श्रीज्ञानपद की भावना

विश्व में दो प्रकार का ज्ञान प्रवर्त्तता है । सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान । **आत्मिक विकास के लिये सम्यग्ज्ञान ही वास्तविक है ।**

हे ज्ञानपद ! अर्थात् हे सम्यग्ज्ञान ! मेरे आत्म-मन्दिर में आपके बिना सर्वत्र अज्ञान रूपी अन्धेरा छा रहा है । अनादि काल से मेरी आत्मा जब निगोदस्थान में थी उस समय मुझे किसी भी प्रकार का भान नहीं था । फिर मैं निगोदस्थान में से अर्थात् अव्यवहार राशि में से निकल कर व्यवहार राशि में आया और क्रमशः एकेन्द्रिय-रूपे, बेइन्द्रियरूपे, तेइन्द्रियरूपे, चउइन्द्रियरूपे और पंचे-न्द्रियरूपे भी उत्पन्न हुआ । उनमें भी देवगति में, तिर्यंच-गति में, नरकगति में और मनुष्यगति में परिभ्रमण करता ही रहा । इस चतुर्गतिमय भव में भटकते हुए मैं आपको नहीं पहिचान सका । ओघ दृष्टि से मैं सम्यग् को मिथ्या और मिथ्या को सम्यग् समझता रहा ।

'संसार हेय (त्याज्य) है और मोक्ष उपादेय है' ऐसी भावना ही सम्यग्ज्ञान है । चाहे कितने भी ग्रन्थ पढ़ लें,

भले ग्यारह अंग और बारह उपांग पढ़ लें तो भी चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम बिना ज्ञान कभी सम्यग् नहीं हो सकता।

हे ज्ञानपद ! मैं प्रार्थना करता हूँ कि अब मेरी आत्मा में सम्यग्ज्ञान का दीप जला दो। कभी न बुझने वाला हो, ऐसा **केवलज्ञान** का **'रत्नदीप'** ; जो सदा ही साथ में मेरे आत्ममन्दिर में रहे।

श्रीज्ञानपद का आराधक

श्रीज्ञानपद की सम्यग् विशिष्ट आराधना करने वाले आराधक आत्मा की स्वयं यह दृढ़ मान्यता होनी चाहिये कि **मैं अज्ञानी नहीं हूँ, किन्तु पूर्ण ज्ञानी हूँ। अनन्त ज्ञान का खजाना (भण्डार) मेरी आत्मा में है।** ज्ञानावरणीयादि कर्मों का सर्वथा विनाश करने की अनन्त शक्ति मेरी आत्मा में ही है। लोकालोकप्रकाशक केवलज्ञान रत्नदीपक की अखण्ड ज्योति सर्वत्र सर्वदा ही प्रकाशित होती हुई मेरी आत्मा में भी अहर्निश प्रकाश करती रहे। यही सर्वज्ञ विभु परमात्मा से प्रार्थना है।

श्रीसम्यग्ज्ञान का आराधक आत्मा अज्ञानियों के अज्ञानमायाजाल में कभी भी फँसने वाला नहीं। अज्ञान के प्रति उसका आकर्षण भी नहीं। उसकी विवेकदृष्टि सर्वदा सतत

जागृत रहती है। सत्यासत्य का उसको भान रहता है। वह प्रत्येक प्रवृत्ति कर्मों से और भव से मुक्त होने के लिये करता है। वह समझता है कि सम्यग्ज्ञान की मुख्य परिणति-परिणाम समस्त वस्तु को जनाने वाली है। जिसका विशिष्ट लक्षण जानपनारूप भाव है। निर्मल मतिज्ञानादि उसके पाँच प्रकार हैं। मोक्ष के साधन रूप जिसका लक्षण है। वह प्रतिदिन स्याद्वाद-अनेकान्तवाद को प्रतिपादन करने वाला है। जीवाजीवादि नव तत्त्वों से रंगा हुआ है। भेद और अभेद का सूचन करने वाला है। सविकल्प और निर्विकल्प पदार्थों का ज्ञापन करने वाला है तथा सर्व संशय का छेदन करने में समर्थ यह **सम्यग्-ज्ञान** अद्वितीय है।

श्री ज्ञानपद की उपासना से भव का निस्तार

शास्त्र में समस्त क्रियाओं के मूल स्वरूप वर्णवाती श्रद्धा को भी निर्मलादि बनाने में सहायक **सम्यग्ज्ञान** ही है। जिनशासन में सम्यग्ज्ञान की मत्यादि पाँच ज्ञान-भेद से प्रसिद्धि है। इन पाँच ज्ञानों में मतिपूर्वक का **श्रुतज्ञान** अत्यन्त ही उपकारक है।

जिस तरह मतिज्ञान श्रुतज्ञान को स्फुट बनाने वाला है, उस माफिक श्रुतज्ञान भी मतिज्ञान को सुसंस्कारित

बताने वाला है। विश्व पर अजोड़ उपकार करने वाला श्रुतज्ञान है। वह द्वादशाङ्गी रूप अर्थात् श्रीआचाराङ्ग आदि अंग रूप है। महाज्ञानी पुरुषों ने इस श्रुत को उपाङ्ग आदि रूपे अति विकसित किया है। भव्यजीव आज भी इस श्रुतज्ञान का विधि-बहुमानपूर्वक पठन-पाठन इत्यादि उपासना में सदुपयोग कर रहे हैं। इस तरह श्रीसम्यग्ज्ञान की उपासना करने वाले पुण्यशाली महानुभाव भवसिन्धु-संसारसागर से शीघ्र निस्तार पा सकते हैं। ज्ञान की उपासना में जो अनादर बुद्धि होती है वह बहुल संसारिता का लक्षण है। जो ज्ञान किसी भी आत्मा को लोक में पूछने योग्य, पूजनीक और प्रशंसनीय बनाकर भवसिन्धु से शीघ्र निस्तार कराता है, वह ज्ञान किसी भी विवेकी आत्मा के लिये अवश्यमेव आराधनीय है। अहर्निश कोटिशः वन्दन हो उस प्रकाशपूर्ण ज्ञानसूर्य को !

श्रीज्ञानपद की आराधना का उदाहरण

(१) श्रीसिद्धचक्र-नवपदपैकी इस सप्तम ज्ञानपद की आराधना का ज्वलंत उदाहरण **सती शीलवती** का है जो ज्ञानपद की आराधना से प्रकृष्ट पुण्यभाक् हुई।

(२) **'मा रुस'** और **'मा तुस'** इन दो पदों के अध्ययन से **मासतुस मुनि** केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष को गये। उनका भी उदाहरण ज्वलंत है।

(३) ज्ञानपंचमी तप की सम्यग् आराधना करने वाले **वरदत्त** और **गुणमंजरी** के भी ज्वलंत उदाहरण हैं।

विश्व के सभी प्राणी ज्ञानपद की सम्यग् आराधना करके अपनी आत्मा में सत्य और सम्पूर्ण ज्ञानमय रत्नदीपक की ज्योति प्रगटाकर मुक्त बनें, यही शुभ कामना है।

[८] श्रीचारित्रपद

卐 नमो चरित्तस्स 卐

आराहि-अखंडिअ-सक्किअस्स,
नमो नमो संजम-वीरिअस्स ।।

卐

सुसंवरं मोहनिरोधसारं, पंचप्पयारं विगयाइयारं ।
मूलोत्तराणेगगुणं पवित्तं, पालेह निच्चंपि हु सच्चरित्तं ।।१।।

卐

व्रत५-धर्म१०-संयमा१७स्विह,
वैयावृत्यानि१० गुप्तयोऽ नव वै ।
ज्ञानादि३ त्रिकमिह तपः१२,
क्रोधादि४ निरोधनं च चारित्रम् ।। १ ।।

श्रीचारित्रपद का स्वरूप

जिस आत्मा ने सम्यग्ज्ञान प्राप्त किया, उसे सत्यासत्य का भान हुआ, हेय ज्ञेय और उपादेय की भी समझ हुई, लेकिन उस ज्ञान को अपने आचरण में लाना अति

दुर्लभ है। जीवाजीवादि तत्त्वों में से त्याग करने योग्य, ग्रहण करने लायक तथा आत्मा को हितकारी और अहितकारी तत्त्व कौन-कौन से हैं तथा कौनसी क्रिया अपने लिए हितकर या अहितकर है इत्यादि भले जान सकें, समझ भी सकें, लेकिन जब तक सम्यक्ज्ञानवन्त आत्मा उस ज्ञान को अपने आचरण में नहीं लाता है तब तक वह भी मोक्ष के मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकता है। **'ज्ञान-क्रियाभ्यां मोक्ष.'** ज्ञान और क्रिया द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिये ज्ञान द्वारा वस्तु को जानने के पश्चात् आचरण भी तदनुरूप ही होना चाहिए। **'विशुद्ध आचरण ही चारित्र है'** आत्मा की शुद्ध आचरण में प्रवृत्ति **चरण-चारित्र** है और अशुद्ध आचरण का त्याग **विरति** है।

आत्मा में सम्यग्दर्शन द्वारा मोक्षमार्ग की श्रद्धा होती है, सम्यग्ज्ञान द्वारा आत्मा मोक्षमार्ग को जान सकता है और सम्यग्चारित्र द्वारा मोक्ष में जाने के लिये प्रवृत्ति करता है। ज्ञानी भगवन्तों ने भव्यजीवों को मोक्ष में जाने के लिये दो मार्ग दिखाये हैं— (१) **देशविरति** और (२) **सर्वविरति**। अशुद्ध आचरण का अंशतः अंशतः त्याग करना वह **देशविरति** है तथा अशुद्ध आचरण का सम्पूर्ण सर्व प्रकार से त्याग करना वह **सर्वविरति** है। देशविरति गृहस्थों के लिये है और सर्वविरति साधुओं (मुनियों) के

लिये है। भव्यजीवों को मोक्ष में पहुँचने के लिये सीधा और मुख्य मार्ग सर्वविरति का है, किन्तु वह मार्ग अति क्लिष्ट और कठिन होने से उसमें प्रवृत्ति करने वाले अल्प जीव होते हैं। सर्वविरति मार्ग में जाने के लिये जो असमर्थ हैं, उनके लिये प्रारम्भ में देशविरति मार्ग दिखाया है। इस मार्ग में चलने वाले जीवों को भी अन्ततः मुख्य मार्ग रूप सर्वविरति धर्म में अवश्य आना ही पड़ता है। कारण यह है कि **सर्वविरति चारित्र बिना आत्मा की कभी मुक्ति नहीं हो सकती है।** इससे यह सिद्ध होता है कि जिसकी मोक्ष में जाने की भावना है उसे अवश्य ही **सर्वविरति चारित्र** स्वीकारना चाहिये अर्थात् संसार को तजकर-छोड़कर पारमेश्वरी प्रव्रज्या-भागवती दीक्षा लेनी चाहिये।

सागर के जल में तैर कर सामने दूसरे पार किनारे पहुँचने की पूर्ण रुचि हो, जल में तैरने की कला भी आती हो, लेकिन जब तक जल में प्रवेश कर अपने हाथ-पाँव चलाकर तैरने की क्रिया न की जाय, तब तक दूसरे किनारे पर नहीं पहुँच सकते। इस तरह अपने को भले सम्यग्दर्शन से संसार असार-अकारा लगता हो, उससे छुटकारा किस तरह हो उसका ज्ञान भी हो, किन्तु जब तक अपन आचरण-क्रिया नहीं करेंगे तब तक सम्पूर्ण फल मिलना मुश्किल है अर्थात् आत्मा को मुक्ति नहीं मिल

सकती। संयम-चारित्र से ही भव्यजीवों को पूर्ण फल रूप मोक्ष मिलता है, मुक्ति प्राप्त होती है।

शास्त्र में सर्वविरति चारित्र के दो भेद प्रतिपादित किये गये हैं–(१) **द्रव्यचारित्र** और (२) **भावचारित्र**। द्रव्यचारित्र में साधु के वेश की तथा क्रिया की मुख्यता है तथा भावचारित्र में आत्मा के विशुद्ध अध्यवसायों अर्थात् विशुद्ध परिणामों की मुख्यता है।

द्रव्यचारित्र वाले को भी जब तक भावचारित्र रूप आत्मा के विशुद्ध अध्यवसाय-परिणाम न आ जायें तब तक उसे भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। भावचारित्रवन्त को भी परम्पराए बढ़ते-बढ़ते विशुद्ध अध्यवसाय अर्थात् आत्मा के विशुद्ध परिणाम मोक्ष में पहुँचाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि **मोक्ष में जाने के लिये भावचारित्र ही अन्तिम मार्ग है**। द्रव्यचारित्र बिना भी मात्र भावचारित्र से श्री ऋषभदेव भगवन्त की माता मरुदेवी मोक्ष गई, यह तो एक अपवाद मार्ग है। राजमार्ग तो यही है कि द्रव्यचारित्र द्वारा भावचारित्र प्राप्त करने वाले को मोक्ष मिलता है। इसलिये तो द्रव्यचारित्र भी भावचारित्र के लिये मुख्य कारण-हेतु कहा है।

अनेक भव्यजीवों ने द्रव्यचारित्र द्वारा भावचारित्र पाकर मोक्ष प्राप्त किया है। अन्य वेश में रहकर भाव-

चारित्र द्वारा केवलज्ञान प्राप्त करने वाले महापुरुष जब साधु-मुनि का वेश ग्रहण करते हैं, तब इन्द्रादिक देव उन्हीं को वन्दन-नमस्कार करते हैं। यही साधु-मुनि वेश की विशिष्टता एवं पूज्यता है। संसारी जीव चाहे कितना ज्ञानी हो तो भी वह जब साधु-मुनि का वेश ग्रहण करता है तब ही पूज्य बनता है। इसलिये मोक्ष में जाने की अभिलाषावन्त महानुभावों को अवश्य ही साधु-मुनि वेश रूपी द्रव्यचारित्र स्वीकारना चाहिये तथा भावचारित्र की ओर लक्ष्य केन्द्रित कर, आत्मा के विशुद्ध अध्यवसायों द्वारा अष्ट कर्मों का क्षय करने के लिये, केवलज्ञान प्राप्त करने के लिये और मोक्ष में जाने के लिये अहर्निश संयम में अप्रमत्त विशेष उद्यमवंत-प्रयत्नशील रहना चाहिये।

'चारित्र बिना आत्मा की मुक्ति नहीं' यह श्री जैन-शासन का, जैनधर्म का अबाधित नियम है। इसलिये गृहस्थ वेश या अन्य वेश में रहे हुए भव्यात्मा भी सम्यग्-दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप रत्नत्रयी की विशुद्ध आराधना से केवलज्ञान प्राप्त होने के पश्चाद् भी जो दो घड़ी (४८ मिनिट) से अधिक आयुष्य शेष हो तो वे सभी द्रव्यचारित्र यानी साधुवेश स्वीकार किये बिना नहीं रहते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि **चारित्र मोक्षप्राप्ति का अद्वितीय-अजोड़ राजमार्ग है।**

इस सर्वविरति रूप चारित्र-संयम को तद्भव मोक्ष-

गामी ऐसे श्री तीर्थंकर भगवन्त भी स्वीकारते हैं, उसका विशुद्धिपूर्वक सम्यक् पालन करते हैं, धर्मतीर्थ की स्थापना करते हुए संयम-चारित्र धर्म की मुख्यपने प्ररूपणा करते हैं, इतना ही नहीं किन्तु अनेक भव्यजीवों को चारित्र रूपी महान् रत्न अर्पण करते हैं।

भवसिन्धु तारक श्री तीर्थंकर भगवन्तों के सदुपदेश से षट्खंड के अधिपति चक्रवर्ती षट्खंड की ऋद्धि-सिद्धि को भी क्षण में तिलांजलि देकर आत्मकल्याण के पवित्र मार्ग रूप सर्वोत्तम चारित्र को अपने जीवन में अपनाते हैं; चारित्र महाराजा के सैनिक बनने में गौरव अनुभवते हैं। लोक में हड़हड़ होता हुआ और सर्वत्र तिरस्कार पामता हुआ रंक, दरिद्र या दुर्भागी भी जब चारित्र धर्म का शरण स्वीकारता है तब वह भी जन-जन का वन्दनीय और पूजनीय हो जाता है। विशुद्ध-निर्मल, अखण्ड चारित्र का पालन करने वाले पूज्य मुनिवरों के चरणों में देवलोक निवासी देव-देवेन्द्र तथा सुर-असुरेन्द्र भी नमन करते हैं और आनन्द का अनुभव करते हैं।

केवल भोजन की इच्छा से भी द्रव्यचारित्र को ग्रहण करने वाला रंक-भिखारी मृत्यु पाकर चारित्र के प्रभाव से **महाराजा सम्प्रति** हुआ। संसारसागर से तारने वाला और मोक्ष के शाश्वत सुख को दिलाने वाला यह महा-प्रभावशाली चारित्र अवश्यमेव आदरणीय है।

चारित्र शब्द की व्युत्पत्ति-अर्थ

'चर्यते अनेन इति चारित्रम्' जिसके द्वारा मुक्ति की ओर गमन किया जाय, उसका नाम **'चारित्र'** है। प्राकृत भाषा में **'चरित्त'** शब्द आता है तथा संस्कृत भाषा में **'चारित्र'** शब्द आता है। 'चय' और 'रिक्त' दोनों मिलकर **'चरित्त'** शब्द बनता है। उसका अर्थ है–**'चय'** यानी संचय, एकत्र-इकट्ठा करना, अर्थात् मोक्षगमन के लायक अच्छी वस्तु को ग्रहण कर एकत्र करना तथा **'रिक्त'** खाली करना, अर्थात् संसार वर्धक खराब वस्तु का त्याग करना।

सारांश यह है कि आत्मा में अष्ट कर्मों के चय समूह को जो रिक्त-खाली-खत्म करता है, वह **'चारित्र'** कहलाता है। इस तरह चरित्त-चारित्र शब्द का निरुक्तार्थ है।

चारित्र के पर्यायवाचक शब्द

चारित्र के पर्यायवाचक शब्द अनेक हैं ; जैसे–संयम, दीक्षा, प्रव्रज्या इत्यादि।

चारित्रपद की महिमा

चारित्रपद की महिमा अनुपम है। शास्त्रों में कहा है कि––

(१) **चारित्रपद**–सर्व नय का **'उद्धार रूप'** है।

(२) **चारित्रपद**–प्रतिकूल आस्रवों के **'त्याग रूप'** है।

(३) **चारित्रपद**–इन्द्रियों के दमनपूर्वक तत्त्व में **'स्थिरता रूप'** है।

(४) **चारित्रपद**–पवित्र उत्कृष्ट क्षमा, निर्लोभता इत्यादि **'दश पद वाला'** है।

(५) **चारित्रपद**–पाँच प्रकार के संवर के **'संचय वाला'** है।

(६) **चारित्रपद**–सामायिक से यथाख्यात की पूर्णता पर्यन्त **'पंच भेद वाला'** है।

(७) **चारित्रपद**–कषाय और क्लेश रहित है।

(८) **चारित्रपद**–निर्मल और उज्ज्वल है।

(९) **चारित्रपद**–काम रूपी मल को चूर्ण करने रूप स्वभाव वाला है।

तत्त्व में रमणता यही जिसका मूल है ऐसे चारित्रपद के प्रभाव से परवस्तु में रमणता का स्वभाव दूर होता है और विश्व की सर्व सिद्धियाँ अनुकूल हो जाती हैं। रंक एवं दरिद्रनारायण मनुष्य भी क्षण में सम्राट्-राजा बन जाता

है; पापी आत्मा भी निर्मल निष्पाप हो जाता है, इतना ही नहीं किन्तु कर्मों का पार पाकर सिद्ध होता है।

चारित्र मोहनीय कर्म का क्षयोपशम रूप अभाव हो जाने से आत्मा में **देशविरति** और **सर्वविरति** प्राप्त होती है अर्थात्---अनंतानुबन्धी चार कषाय और अप्रत्याख्यानी चार कषाय ये दोनों मिलकर आठ कषाय दूर होने से मन में **'देशविरति भाव'** स्थिर होता है। अनंतानुबन्धी चार कषाय, अप्रत्याख्यानी चार कषाय और प्रत्याख्यानी चार कषाय ये तीनों मिलकर बारह कषाय दूर होने से मन में गुण के समूह-रूप **'सर्वविरति भाव'** प्रगट होता है। देशविरति से सर्वविरति में अनंतगुणी विशुद्धि का समास होता है। एक वर्ष जितनी शुद्ध चारित्र की पर्याय से संयमी को अनुत्तर विमान के देवों से भी विशेष आत्मिक सुख प्राप्त होता है। संयम-चारित्र से ही शुक्ल परिणाम की वृद्धि हो जाने से जीव मोक्षपद को भी प्राप्त कर सकता है।

अरिहन्त परमात्मा भी सर्वसंवररूप चारित्र पाकर मुक्ति साम्राज्य को प्राप्त करते हैं। निश्चय से मोक्षपद का अनंतर कारण चारित्र ही है। उसको पालने वाले श्रमण-संयमी-मुनिराज ही हैं। ऐसी अनुपम महिमा चारित्र पद की है। सर्वविरति चारित्र का महत्त्व अजोड़ है। पंचमहाव्रतधारी-चारित्रवंत ऐसे मुनि भगवंत अह-निश त्रिभुवन वंदनीय-पूजनीय हैं।

चारित्र की उपमाएँ

संयम यानी चारित्र अनेक उपमाओं से समलंकृत है। जैसे—

(१) **सम्यक्चारित्र**—आत्मा का '**अत्युत्तम गुण**' है।

(२) **सम्यक्चारित्र**—आत्मा के कर्मशत्रुओं का सर्वथा विनाश करने वाला '**महान् शस्त्र**' है।

(३) **सम्यक्चारित्र**—आत्मा की कर्म-निर्जरा का '**अनुपम साधन**' है।

(४) **सम्यक्चारित्र**—आत्मा को सम्पूर्णपने अहिंसक जीवन जीने का '**असाधारण स्थान**' है।

(५) **सम्यक्चारित्र**—सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान द्वारा संसार-सागर तिराके मुक्ति किनारे पहुँचाने वाला '**अलौकिक (स्टीमर) जहाज**' है।

(६) **सम्यक्चारित्र**—भव्यात्मा को मुक्तिपुरी में शीघ्र ले जाने वाला '**अजोड़ विशेष दिव्य विमान**' है।

(७) **सम्यक्चारित्र (दीक्षा)**—मुक्तिवधू की '**महान् दूती**' है।

(८) **सम्यक्चारित्र**—आत्मा को पंच महाव्रत और छठे

रात्रिभोजनव्रत का जीवन भर पालन करने की **'भीष्म प्रतिज्ञा'** है।

(९) सम्यक्चारित्र–आत्मा को अष्ट कर्म रूप बन्धन की बेड़ी से मुक्त करा कर स्वतन्त्रता दिलाने वाला, अपना अनंतज्ञानादि अखूट खजाना दिखाने वाला तथा मोक्ष का शाश्वत सुख प्राप्त कराने वाला **'अद्वितीय महामन्त्र'** है।

(१०) सम्यक्चारित्र–जगत् में जैनधर्म का-जैनशासन का **'अद्भुत आधार स्तम्भ'** है।

(११) सम्यक्चारित्र–सर्व सुख का **'मजबूत मूल'** है और सिद्धि का **'सच्चा सोपान'** है।

(१२) सम्यक्चारित्र–पंच महाव्रतों का, दस प्रकार के यतिधर्म का, सत्तर प्रकार के संयम का, दस प्रकार की (जणनी) वैयावच्च का, नव प्रकार के ब्रह्मचर्य की गुप्ति का, तीन रत्नत्रयी का, बारह प्रकार के तप का तथा चार कषायनिग्रह का एवं चरणसित्तरी-करणसित्तरी इत्यादि गुणरत्नों का **'अमूल्य खजाना-भण्डार'** है।

इस तरह सम्यक्चारित्र को अनेक उपमाओं से समलंकृत किया जाता है।

चारित्र के भेद

श्रीजिनेश्वरदेव के शासन में श्रीसिद्धचक्र के नवपद पैकी आठवें पद तरीके **श्रीचारित्र पद** सुप्रसिद्ध है। उसके मुख्यपने दो भेद हैं—(१) **देशविरति** और (२) **सर्व-विरति**।

(१) **देशविरति चारित्र**—सम्यक्त्व युक्त श्रावक के पालने योग्य चारित्र को **देशविरति चारित्र** कहा जाता है। यह चारित्र पाँचवें गुणस्थानक में वर्तते श्रावक को होता है। वहाँ पर श्रावक को देश से अर्थात् (अमुक) अंशे विरति का पालन होता है—जघन्य से एक अणुव्रत का और उत्कृष्ट से बारह व्रतों का। बारह व्रतों में स्थूलप्राणाति-पात विरमणादि पाँच अणुव्रतों का, दिशापरिमाण विर-मणादि त्रण गुणव्रतों का तथा सामायिकव्रतादिक चार शिक्षाव्रतों का समावेश होता है। पंच महाव्रतधारी साधु-मुनि महाराजाओं के पाँच महाव्रतों की अपेक्षा से इन बारह व्रतों का पालन व्रतधारी श्रावकों को स्थूल रूप से होता है। इसलिये वे अणुव्रत कहे जाते हैं। देशविरति चारित्र के भी अनेक भंग (भेद) शास्त्र में प्रतिपादित किये गये हैं।

(२) **सर्वविरति चारित्र**—प्राणातिपातादि अर्थात् हिंसादि पाप मात्र का जीवन पर्यंत प्रतिज्ञापूर्वक त्याग कर

पंचाचार का पालन करना, **'सर्वविरति चारित्र'** यानी **'सम्यक्चारित्र'** कहा जाता है। पंच महाव्रतधारी साधु-मुनिभगवन्तों के संयम-चारित्र को ही **सर्वविरति चारित्र** कहते हैं। इसके पाँच प्रकार अर्थात् पाँच भेद निम्न-लिखित हैं—

(१) सामायिक चारित्र, (२) छेदोपस्थापनीय चारित्र, (३) परिहार विशुद्धि चारित्र, (४) सूक्ष्मसम्पराय चारित्र तथा (५) यथाख्यात चारित्र।

(१) **सामायिक चारित्र**—**'सम'** यानी राग-द्वेष रहित-पना, उसका **'आय'** यानी लाभ जिसमें हो जाय वह **'सामा-यिक चारित्र'** कहा जाता है। अथवा **'सम'** यानी ज्ञान-दर्शन-चारित्र, उसका **'आय'** यानी लाभ वह भी **'सामायिक चारित्र'** कहा है। अर्थात् अनादि काल से आत्मा की विषम स्थिति वर्तती है। उसे सम स्थिति में लाने का **साधन**, वह **सामायिक चारित्र** है। सावद्य योग का त्याग, निरवद्य योगों का सेवन, आत्मा की जागृति, ये सम स्थिति के साधन हैं। इसके दो भेद हैं (i) **इत्वर कथिक** और (ii) **यावत् कथिक**।

(i) **इत्वर कथिक**—भरतादिक दस क्षेत्रों में आद्य और अन्तिम तीर्थंकर भगवन्त के शासन में जो प्रथम **लघु दीक्षा** दी जाती है वह तथा श्रावक के बारह व्रतों पैकी शिक्षाव्रत

में सामायिक, पौषध प्रतिक्रमणादिक ये सब इत्वरिक सामायिक चारित्र के अन्तर्गत हैं। यह अतिचार सहित होता है और उत्कृष्ट छह मास का है।

(ii) **यावत् कथिक**–बावीश तीर्थंकर भगवन्तों के शासन में तथा महाविदेह क्षेत्र में सर्वदा प्रथम से ही निरतिचार चारित्र के पालन रूप **बड़ी दीक्षा** होती है। इसलिये यह यावत् कथिक सामायिक चारित्र निरतिचार तथा याव-ज्जीव-जीवन पर्यन्त का है। सामायिक चारित्र के बिना अन्य चार चारित्र का लाभ नहीं होता।

(२) **छेदोपस्थापनीय चारित्र**–पूर्व चारित्र पर्याय का छेद करके पुनः पंच महाव्रतों का उपस्थापन यानी आरोपण करना, वह **'छेदोपस्थापनीय चारित्र'** कहा जाता है। इसके दो भेद हैं—(i) **सातिचार छेदोपस्थापनीय** और (ii) **निरति-चार छेदोपस्थापनीय**।

(i) **सातिचार छेदोपस्थापनीय**–जिस मुनि ने संयम के मूलगुण का घात किया हो तो उसकी पूर्व की दीक्षा-पर्याय को छेद करके पुनः चारित्र उच्चराना, वह छेद प्रायश्चित्त वाला **'सातिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र'** है।

(ii) **निरतिचार छेदोपस्थापनीय**–लघु दीक्षा वाले मुनि को 'श्रीदशवैकालिक सूत्र' के चतुर्थ 'छज्जीवणियज्झयण'

को पढ़ाने के पश्चात् उत्कृष्ट से छह मास के बाद जो बड़ी दीक्षा दी जाती है, वह **'निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र'** है। अथवा एक तीर्थंकर के मुनि को जब दूसरे तीर्थंकर के शासन में प्रवेश करना हो तब उस मुनि को पुनः चारित्र उच्चराना, वह भी **'निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र'** है। जैसे श्रीपार्श्वनाथ के मुनि श्रीकेशीकुमार-श्रमण। वह तीर्थसंक्रान्ति रूप है। यह **छेदोपस्थापनीय चारित्र** भरतादि दस क्षेत्रों में आद्य और अन्तिम श्रीतीर्थंकर भगवन्त के शासन में होता है, किन्तु बावीश श्रीतीर्थंकर भगवन्तों के शासन में और महाविदेह क्षेत्र में सर्वथा यह चारित्र होता नहीं।

(३) परिहारविशुद्धि चारित्र—परिहार यानी तपविशेष। अर्थात् गच्छ के त्याग वाला तपविशेष और उस तप से होती हुई जो चारित्र की विशुद्धि, वह **'परिहार विशुद्धि चारित्र'** कहा जाता है। जैसे स्थविरकल्पी मुनियों के गच्छ में से गुरु की आज्ञा पाकर नौ साधु गच्छ बाहर निकल कर केवली, गणधर, पूर्व परिहार कल्प स्वीकारे हुए साधु के पास जाकर परिहार कल्प करे। उसमें चार साधु परिहारक बने यानी छह मास तप करे, अन्य चार साधु उनकी वैयावच्च करे तथा एक साधु वांचनाचार्य बने। छह मास के बाद फेरफार, बाद में वांचनाचार्य छह मास तप करे। जघन्य से एक तथा उत्कृष्ट से सात साधु

वैयावच्च करने वाले हों और एक वांचनाचार्य हो। इस तरह अठारह मास का यह **'परिहार कल्प'** पूर्ण होता है।

(४) **सूक्ष्मसम्पराय चारित्र**–सूक्ष्म किट्टिरूप-चूर्णरूप जो अति जघन्य सम्पराय यानी लोभकषाय, उसके क्षय रूप जो चारित्र वह, **'सूक्ष्मसम्पराय चारित्र'** कहा जाता है। क्रोध, मान और माया इन तीनों कषायों का क्षय होने के पश्चात् अर्थात् मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों में से चतुर्थ कषाय संज्वलन लोभ के बिना सत्ताईस प्रकृतियों के क्षय या उपशम के बाद और संज्वलन लोभ में भी बादर संज्वलन लोभ का उदय विनाश होने के पश्चात् जब केवल एक सूक्ष्म लोभ का उदय वर्तता हो, तब दसवें सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान में वर्त्तते जीव का चारित्र सूक्ष्मसम्पराय चारित्र कहा जाता है। उसके भी दो भेद हैं। वहाँ उपशम श्रेणी से पड़ते हुए जीव को दसवें गुणस्थाने पतित दशा के अध्यवसाय होने से **'संक्लिश्यमान सूक्ष्मसम्पराय चारित्र'** है और उपशम श्रेणी में चढ़ते हुए जीव को विशुद्ध चढ़ती दशा का अध्यवसाय होने से **'विशुद्धयमान सूक्ष्मसम्पराय चारित्र'** है।

(५) **यथाख्यात चारित्र**–ख्यात यानी प्रसिद्ध, यथा-ख्यात यानी यथार्थ-वास्तविक प्रसिद्ध चारित्र। जहाँ पर कषाय का बिल्कुल उदय न हो उस समय का जो चारित्र,

वह **'यथाख्यात चारित्र'** कहा जाता है। शास्त्रों में यह चारित्र ग्यारह से चौदहवें गुणस्थानक तक कहा गया है। इसी चारित्र का आचरण करके भव्यात्मा मोक्ष में चले जाते हैं। इसके भी चार भेद हैं–(क) उपशान्त यथाख्यात, (ख) क्षायिक यथाख्यात, (ग) छाद्मस्थिक यथाख्यात और (घ) कैवलिक यथाख्यात।

(क) उपशान्त यथाख्यात–ग्यारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म सत्ता में होने पर भी तद्दन शान्त होने से उसका उदय नहीं है। इसलिये उस समय का चारित्र **'उपशान्त यथाख्यात चारित्र'** कहा जाता है।

(ख) क्षायिक यथाख्यात–बारहवें, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म का मूल से ही सर्वथा क्षय हो जाने से जो क्षायिक भाव का चारित्र होता है, वह **'क्षायिक यथाख्यात चारित्र'** कहा जाता है।

(ग) छाद्मस्थिक यथाख्यात–छद्मस्थ जीव का चारित्र जो ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थान में है, वह **'छाद्मस्थिक यथाख्यात चारित्र'** कहा गया है।

(घ) कैवलिक यथाख्यात–केवलज्ञानी जीव को तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में जो क्षायिक भाव का चारित्र होता है, उसे **'कैवलिक यथाख्यात चारित्र'** कहा है।

इस तरह सामायिकादि पाँचों चारित्रों का स्वरूप संक्षेप में कहा है।

प्रश्न—चौदह गुणस्थानकों की अपेक्षा कौनसा चारित्र कौनसे गुणस्थानक में समझना चाहिए ?

उत्तर—सम्यक्चारित्र के सामान्य से **देशविरति** और **सर्वविरति** ये दो भेद किये गये हैं। देशविरति चारित्र में एक **सामायिक चारित्र** का ही लाभ होता है। उसके भी तीन भेद हैं—(क) **सम्यक्त्व सामायिक**, (ख) **श्रुत-सामायिक** और (ग) **देशविरति सामायिक**। उसमें सम्यक्त्व सामायिक और श्रुत सामायिक ये दोनों चौथे और पाँचवें गुणस्थानक में होते हैं। देशविरति सामायिक तो मात्र एक पाँचवें गुणस्थान में होता है। इसलिये देश-विरति सामायिकवन्त जीव ही **देशचारित्रधर** कहलाता है।

स्थूल प्राणातिपात विरमणादि बारह व्रत या उनमें से एक, दो, तीन आदि व्रत उच्चरने वाला महानुभाव अवश्य सम्यक्त्वधारी हो तो ही उसको देशविरति चारित्र गुण प्रगट होता है। सर्वविरति चारित्र तो पाँच महाव्रता-त्मक ही है। एक साथ ही पाँचों महाव्रत उच्चरने का है। देशविरति की भाँति एक, दो आदि नहीं उच्चर सकते हैं।

आद्य और अन्तिम तीर्थंकर के शासन की एक साथ

में ही पाँचों महाव्रत उच्चरने की परिपाटी आज भी उसी रूप में चल रही है। पाँच भरत और पाँच ऐरवत क्षेत्रों में मध्य के बावीस तीर्थंकरों के साधु-मुनिराज तथा पाँच महाविदेह क्षेत्रों में सर्व तीर्थंकरों के साधु-मुनिराज चार महाव्रत उच्चरते हैं। कारण कि उन्होंने परिग्रह की विरति में मैथुन विरति का समावेश माना है। इसलिये वे साधु-मुनिराज चार महाव्रतधारी कहे जाते हैं और आद्य और अन्तिम तीर्थंकर के साधु-मुनिराज पंच महाव्रतधारी कहे जाते हैं।

सर्वविरति चारित्र के पाँच भेदों पैकी सामायिक तथा छेदोपस्थापनीय इन दो चारित्रों को छठा, सातवाँ, आठवाँ और नवाँ ये चार गुणस्थानक हैं। परिहार विशुद्धि चारित्र को छठा और सातवाँ ये दो गुणस्थानक हैं। सूक्ष्म सम्पराय चारित्र को मात्र एक दसवाँ गुणस्थानक है तथा यथाख्यात चारित्र को ग्यारहवाँ, बारहवाँ, तेरहवाँ और चौदहवाँ ये चार गुणस्थानक हैं। ग्यारहवें गुणस्थानके औपशमिक यथाख्यात चारित्र है तथा बारहवें गुणस्थानके क्षायिक यथाख्यात चारित्र है। तेरहवें गुणस्थानके सयोगी कैवलिक यथाख्यात चारित्र है तथा चौदहवें गुणस्थानके अयोगी कैवलिक यथाख्यात चारित्र है।

इस तरह चौदह गुणस्थानकों में सामायिकादि पाँच

चारित्रों में से कौनसा चारित्र कहाँ-कहाँ पर होता है उसका संक्षिप्त वर्णन किया है।

सामायिक आदि पाँच प्रकार के चारित्र की यथा-सम्भव आराधना करने वाले पाँच प्रकार के निर्ग्रन्थ-मुनि हैं। उनके नाम हैं--**पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ** और **स्नातक**। उसमें से पुलाक, बकुश और प्रतिसेवा कुशील ये तीन भेद सामायिक और छेदोपस्थापनीय चारित्र में होते हैं तथा कषायकुशील-सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि एवं सूक्ष्म सम्पराय, इन चारों चारित्र में यथायोग्य हो सकते हैं। यथाख्यात चारित्र में निर्ग्रन्थ और स्नातक ये दो ही होते हैं। इसमें इतनी विशिष्टता है कि सर्वविरति चारित्र के सभी प्रकार-भेद कर्मभूमि के क्षेत्रों में जन्मे हुए संज्ञिपञ्चेन्द्रिय मनुष्य ही प्राप्त करते हैं। देश-विरति चारित्र तो संज्ञिपंचेन्द्रिय मनुष्य एवं तिर्यंच दोनों में यथायोग्य होता है। देशविरतिवन्त मनुष्यों से तिर्यंच असंख्यातगुणे हैं।

चारित्र के अन्य प्रकार

पूर्व सामायिक आदि पाँच भेद चारित्र के प्रतिपादित किये हैं। अब चारित्र के अन्य प्रकारों-भेदों का भी प्रतिपादन करते हैं। चारित्र का दूसरा नाम है **संयम**। संयम-

चारित्र के सत्तरह प्रकार निम्नलिखित हैं--

पाँच आस्रवों का त्याग करना, पाँच इन्द्रियों को वश में रखना, चार कषायों को जीतना और तीन गुप्तियों का पालन करना। इस प्रकार संयम के ५+५+४+३=१७ सत्तरह भेद हैं। पुनः उत्कृष्ट से संयम के सत्तर भेद **'चरण-सित्तरी'** और **'करणसित्तरी'** नाम से भी प्रतिपादित किये हैं। वे निम्नलिखित हैं--

(१) चरणसित्तरी--**'चरणसित्तरी'** शब्द प्राकृत भाषा का है। उसको संस्कृत भाषा में **'चरणसप्तति'** कहते हैं। साधु-मुनिराजों से अहर्निश जो आचराय वह **'चरण'** कहा जाता है। इस चरण यानी चारित्र के सत्तर (७०) भेद हैं। उसमें प्राणातिपात विरमण-अहिंसा आदि पाँच महा-व्रत, क्षमाक्षांति आदि दशविध यति-श्रमणधर्म, सत्तरह प्रकार का संयम, दस प्रकार की वैयावृत्य, नव प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्ति, मति आदि तीन ज्ञान, बारह प्रकार का तप तथा क्रोधादि चार कषायों का जय आते हैं। इस तरह (५+१०+१७+१०+९+३+१२+४=७०) सत्तर भेद चरणचारित्र के होते हैं।

(२) करणसित्तरी--**'करणसित्तरी'** शब्द भी प्राकृत भाषा का है। उसको संस्कृत भाषा में **'करणसप्तति'** कहते हैं। प्रयोजन प्राप्त होने पर जो किया जाय वह **'करण'**

कहा जाता है। करण, क्रिया के समुदाय का नाम है। जिसके सत्तर (७०) प्रकार यानी भेद हैं। उसमें चार प्रकार की पिंड विशुद्धि अर्थात् आहार, वस्त्र, पात्र एवं उपाश्रय-स्थान की गवेषणा आदि, ईर्यासमिति आदि पाँच समितियाँ, अनित्यादि बारह भावनायें, मासिकी आदि बारह प्रतिमायें, स्पर्शनादि पाँच इन्द्रियों का निग्रह, पच्चीस प्रकार की प्रतिलेखना, तीन प्रकार की गुप्ति एवं चार प्रकार के अभिग्रह आते हैं। इस तरह (४+५+१२+१२+५+२५+३+४=७०) सत्तर भेद **'करणसित्तरी'** के होते हैं। उत्कृष्ट से सत्तर भेदों वाला यह **संयमधर्म** यानी **चारित्रधर्म** कहा है।

चारित्रपद के सत्तर गुण

चारित्र-संयम के गुण अनन्त हैं। उनमें सत्तर गुणों की विशेषता अति उत्तम है। उन गुणों के नाम निम्न-लिखित प्रमाण हैं--

(१) प्राणातिपातविरमणरूप चारित्र।

(२) मृषावादविरमणरूप चारित्र।

(३) अदत्तादानविरमणरूप चारित्र।

(४) मैथुनविरमणरूप चारित्र।

(५) परिग्रहविरणरूप चारित्र ।

(६) क्षमाधर्मरूप चारित्र ।

(७) मृदुताधर्मरूप चारित्र ।

(८) आर्जवधर्मरूप चारित्र ।

(९) मुक्तिधर्मरूप चारित्र ।

(१०) तपोधर्मरूप चारित्र ।

(११) संयमधर्मरूप चारित्र ।

(१२) सत्यधर्मरूप चारित्र ।

(१३) शौचधर्मरूप चारित्र ।

(१४) अकिंचनधर्मरूप चारित्र ।

(१५) ब्रह्मचर्यधर्मरूप चारित्र ।

(१६) पृथिवीरक्षा संयम चारित्र ।

(१७) उदकरक्षा संयम चारित्र ।

(१८) तेजोरक्षा संयम चारित्र ।

(१९) वायुरक्षा संयम चारित्र ।

(२०) वनस्पतिरक्षा संयम चारित्र ।

(२१) द्वीन्द्रियरक्षा संयम चारित्र ।

(२२) त्रीन्द्रियरक्षा संयम चारित्र ।

(२३) चतुरिन्द्रियरक्षा संयम चारित्र ।

(२४) पंचेन्द्रियरक्षा संयम चारित्र ।

(२५) अजीवरक्षा संयम चारित्र ।

(२६) प्रेक्षा संयम चारित्र ।

(२७) उपेक्षा संयम चारित्र ।

(२८) अतिरिक्तवस्त्रभक्ताधिपरिस्थापनत्यागरूप संयम चारित्र ।

(२९) प्रमार्जनरूप संयम चारित्र ।

(३०) मनः संयम चारित्र ।

(३१) वाक् संयम चारित्र ।

(३२) काय संयम चारित्र ।

(३३) आचार्य वैयावृत्यरूप संयम चारित्र ।

(३४) उपाध्याय वैयावृत्यरूप संयम चारित्र ।

(३५) तपस्वी वैयावृत्यरूप संयम चारित्र ।

(३६) लघुशिष्यादि वैयावृत्यरूप चारित्र ।

(३७) ग्लानसाधु वैयावृत्यरूप चारित्र ।

(३८) साधु वैयावृत्यरूप चारित्र ।

(३९) श्रमणोपासक वैयावृत्यरूप चारित्र ।

(४०) संघ वैयावृत्यरूप चारित्र ।

(४१) कुल वैयावृत्यरूप चारित्र ।

(४२) गण वैयावृत्यरूप चारित्र ।

(४३) पशुपण्यकादिरहितवसतिषसनब्रह्मगुप्ति चारित्र ।

(४४) स्त्रीहास्यादिविकथावर्जनब्रह्मगुप्ति चारित्र ।

(४५) स्त्री-आसनवर्जनब्रह्मगुप्ति चारित्र ।

(४६) स्त्री-अङ्गोपाङ्गनिरीक्षणवर्जनब्रह्मगुप्ति चारित्र ।

(४७) कुड्यन्तरस्थितहावभाव-श्रवणवर्जनब्रह्मगुप्ति चारित्र ।

(४८) पूर्वस्त्रीसंभोगचिन्तवर्जनब्रह्मगुप्ति चारित्र ।

(४९) अतिसरसआहारवर्जनब्रह्मगुप्ति चारित्र ।

(५०) अतिआहारकरणवर्जनब्रह्मगुप्ति चारित्र ।

(५१) अंगविभूषावर्जनब्रह्मगुप्ति चारित्र ।

(५२) अनशनतपोरूप चारित्र ।

(५३) औनोदर्यतपोरूप चारित्र ।

(५४) वृत्तिसंक्षेपतपोरूप चारित्र ।

(५५) रसत्यागतपोरूप चारित्र ।

(५६) कायक्लेशतपोरूप चारित्र ।

(५७) संलेषणातपोरूप चारित्र ।

(५८) प्रायश्चित्ततपोरूप चारित्र ।

(५९) विनयतपोरूप चारित्र ।

(६०) वैयावृत्यतपोरूप चारित्र ।

(६१) स्वाध्यायतपोरूप चारित्र ।

(६२) ध्यानतपोरूप चारित्र ।

(६३) कायोत्सर्गतपोरूप चारित्र ।

(६४) अनन्तज्ञानसंयुक्त चारित्र ।

(६५) अनन्तदर्शनसंयुक्त चारित्र ।

(६६) अनन्तचारित्रसंयुक्त चारित्र ।

(६७) क्रोधनिग्रहकरण चारित्र ।

(६८) माननिग्रहकरण चारित्र ।

(६९) मायानिग्रहकरण चारित्र ।

(७०) लोभनिग्रहकरण चारित्र ।

इन सभी गुणों से समलंकृत चारित्र नमस्करणीय है ।

अष्टांग योगमय चारित्र

जो आत्मा को मोक्ष के साथ जोड़ने का अर्थात् सम्बन्ध कराने का कार्य करता है, वही **'योग'** कहा जाता है। उसके आठ अंग हैं। इसलिये उसको प्रसिद्धि **'अष्टांग'** तरीके है। इस अष्टांग योग को भी अपेक्षा से **'चारित्र'** कहते हैं। योग के आठ अंग आत्मा को क्रमिक विकास साधनों के द्वारा मोक्षाभिमुख अर्थात् मोक्ष के सन्मुख बनाते हैं। उन आठों अंगों के नाम निम्नलिखित अनुसार हैं—

आठ अंगों के नाम और उनका स्वरूप

(१) यम, (२) नियम, (३) करण, (४) प्राणा-

याम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान और (८) समाधि ।

(१) **यम**–अहर्निश देहरूप साधन से करने योग्य जो क्रिया, वही **'यम'** कही जाती है । उसके पाँच भेद हैं- (१) **अहिंसा** यानी **जीवदया**, (२) **सूनृत** यानी **सत्यवचन**, (३) **अस्तेय** यानी **चोरी का त्याग**, (४) **ब्रह्म** यानी **ब्रह्मचर्य** का पालन और (५) **अकिंचनता** यानी **परिग्रहरहितपना** । 'यम' योग के अष्टांग पैकी पहला अंग है ।

(२) **नियम**–जिसमें बाह्य साधन की आवश्यकता हो ऐसा जो नित्यकर्म, वह **'नियम'** कहलाता है । उसके भी पाँच भेद हैं-(१) **शौच** यानी **शुद्धि** (शरीर की और मन की) । (२) **संतोष** यानी **लोभ का त्याग** । (३) **स्वाध्याय** यानी **पठन-पाठन में प्रवृत्ति** । (४) **तप** यानी **इच्छा के निरोधपूर्वक शक्य प्रवृत्ति** । (५) **देवताप्रणिधान** यानी एकाग्रचित्तपूर्वक **परमात्मा का चिन्तन** । ये पांच नियम कहलाते हैं । 'नियम' योग के अष्टांग पैकी दूसरा अंग है ।

(३) **करण**–स्थिर आसने बैठने की जो क्रिया, वह **'करण'** कही जाती है । यह योग के अष्टांग पैकी तीसरा अंग है ।

(४) **प्राणायाम**–श्वासोच्छ्वास के निरोधपूर्वक देह-

शरीर में रही हुई वायु को काबू में लेने की जो क्रिया, वह **'प्राणायाम'** कही जाती है। यह योग के अष्टांग पैकी चौथा अंग है।

(५) **प्रत्याहार**–विषयों के सन्मुख प्रवृत्ति करती इन्द्रियों को उन्मार्गगमन से रोककर सन्मार्ग में ही प्रवृत्ति कराना, **'प्रत्याहार'** कहा जाता है। यह योग के अष्टांग पैकी पाँचवां अंग है।

(६) **धारणा**–ध्यान करने लायक आलम्बन में अपने चित्त को स्थिरपने धारण करने की क्रिया **'धारणा'** कही जाती है। यह योग के अष्टांग पैकी छठा अंग है।

(७) **ध्यान**–अपने ध्येय में एकाग्रपना धारण करना, सो ही **'ध्यान'** है। यह योग के अष्टांग पैकी सातवाँ अंग है।

(८) **समाधि**–चित्त और प्राणों के ध्येय के साथ विश्व के पदार्थ मात्र का आभासरूप जो ध्यान, वह **'समाधि'** कहा जाता है।

इस तरह अष्टांगवन्त इस योग को मोक्ष के साधन रूप होने से संयम या चारित्र भी कह सकते हैं। विश्व में समस्त व्यवहार मोक्ष के ध्येयपूर्वक ही हो जाय तो वह अवश्यमेव निश्चय में कारण बन कर आत्मा को मोक्ष में

पहुँचाता है ।

व्यवहार कारण है और निश्चय कार्य है । कारण बिना कार्य नहीं हो सकता है । इसलिये व्यवहार और निश्चय दोनों नयों की गौणता-मुख्यता समझकर यदि चारित्र का पालन करे तो आत्मा सकल कर्मों का क्षय कर अवश्यमेव मोक्ष प्राप्त कर सकता है ।

चारित्रपद का अधिकारी

लोक में चारित्र पद का अधिकारी मनुष्य है । जिसने संसार की असारता–निर्गुणता, विषयों की क्षणभंगुरता, मनुष्य जन्म की दुर्लभता तथा पाँचों इन्द्रियों एव मन की सलामतता जानकर गुरु के प्रति समर्पण भाव किया है ऐसा अल्पकषायी, मन्द हास्यवन्त तथा विनीत मनुष्य इस चारित्रपद का अधिकारी है । चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से चारित्रधर्म की प्राप्ति होती है । चारित्रधर्म को स्वयं श्रीतीर्थंकर भगवन्तों ने भी अपनाया है अर्थात् उसका सम्यक् पालन किया है, इतना ही नहीं किन्तु दिव्य समवसरण में बैठकर बारह सभाओं के समक्ष अपनी धर्म-देशना में इस चारित्रधर्म का निरूपण भी किया है ।

चारित्रपद का आराधक

सम्यक् चारित्रपद की आराधना करता हुआ आराधक

आत्मा अपने अन्तःकरण-हृदय में दृढ़पने निश्चय करे कि—मैं अवश्यमेव सम्पूर्ण शुद्ध संयम-चारित्र का पालन करने में समर्थ हूँ। धीरे-धीरे भी मैं अविरतपने चारित्र धर्म में आगे बढता रहूँ। मेरे जीवन में सच्चारित्र की सुवास-सौरभ सदा महकती रहे। विश्व में सच्चारित्र ही ऊर्ध्वगामिता का मुख्य कारण है और आत्मा को मोक्ष दिलाने वाला भी यही है ऐसी पवित्र भावना अपने मन में दृढ़पने प्रतिदिन रमती रहे।

श्रीचारित्रपद का आराधन

श्रीसिद्धचक्र के नवपद पैकी आठवें चारित्रपद के सित्तर प्रकार—भेद होने से उनका आराधन भी चारित्रधर्म में अपेक्षित है। इसलिये चारित्रपद का सित्तर प्रकारे आराधन होता है। पाँच महाव्रत, दस यतिधर्म, सत्तरह प्रकारे संयम, दस वैयावच्च, नव ब्रह्मचर्य की गुप्ति, ज्ञान-दर्शनचारित्र ये तीन, बारह प्रकारे तप, तथा क्रोध-मान-माया-लोभ ये चार कषाय, सब मिलकर सित्तर होते हैं। इन सभी की आराधना चारित्रपद से होती है। इस पद की सम्यक् आराधना से शिवकुमार के भव में आराधन करने वाले **श्रीजम्बूकुमार** चरम केवली हुए तथा वरुणदेव ने तीर्थंकर पदवी पायी और उनको विजय-लक्ष्मी प्रगटी।

श्रीचारित्रपद का शुक्लवर्ण क्यों ?

आत्मा अनन्त गुणों का भण्डार है। गुण शुक्लश्वेत-उज्ज्वल होते हैं, इसलिये उनमें रहा हुआ चारित्रगुण भी उज्ज्वल ही है। अर्थात् चारित्रपद का वर्ण शुक्ल-श्वेत-उज्ज्वल है। इसलिये वह चारित्रवन्त जीव को उज्ज्वल कर सकता है।

आत्मा को चारित्र की प्राप्ति मोह घटने से होती है। चारित्र और मोह परस्पर विरोधी हैं। मोह को अन्धकार की उपमा दी है। उस मोहरूपी अन्धकार को दूर करने के लिये चारित्ररूपी प्रकाश यानी उज्ज्वल वर्ण की आवश्यकता है। इसलिये चारित्रपद श्वेत-उज्ज्वल वर्ण है। सर्व प्रधान चारित्र का वर्ण सर्व प्रधान शुक्ल-श्वेत कहा है, वह उचित ही है।

चारित्रपद की भावना

चारित्र-संयम की अभिलाषी आत्मायें देवाधिदेव श्री वीतराग परमात्मा के पास चारित्रपद प्राप्ति की भावना रखती हैं और बोलती भी हैं कि–हे प्रभो ! मुझे संयम कब मिलेगा ? यही भाव लेकर कहा है **'संयम कब मिलेश सनेही प्यारा हो ?'** "हे स्नेही मित्र ! मुझे संयम-चारित्र कब मिलेगा ?"

इस तरह सम्यक्त्व युक्त चौथे एवं पाँचवें गुणस्थानक वाली आत्माएँ विचार करती हैं।

इस चारित्र में बेंतालीश दोष रहित शुद्ध आहार लेने का है, नवकल्पी उग्र विहार करने का है, एक हजार और तेवीश (१०२३) दोष रहित निहार (शुद्ध स्थंडिल) करने का है, सुबह और शाम दोनों वक्त आवश्यक-प्रतिक्रमण करने का है, तथा बावीश परीषह को सहन करने का है।

इस तरह चारित्र के अनेक प्रकार कहे हैं। वे सभी साधु-मुनिपने के व्यवहार रूप हैं। निश्चय से तो अपने आत्मिक गुणों में स्थिर रहना ही **उदार चारित्र** है।

ऐसी व्यवहार और निश्चय चारित्रवन्त उत्तम आत्मायें मोह इत्यादिक पराभवों से रहित होती हैं। जो व्यवहार और निश्चय दोनों नयों से युक्त चारित्री–संयमी होता है वही श्रेष्ठ गिना जाता है।

इस तरह जो जीव चारित्र-पालन के लिये सतत उद्यमवन्त–प्रयत्नशील होते हैं वे जीव अन्त में शिववधू की उत्तम वरमाला को प्राप्त करते हैं।

हम भी ऐसा सम्यक्चारित्र चाहते हैं कि जो वीतरागता से परिपूर्ण हो। परमपद प्राप्त कराने वाला हो। शाश्वत सुख दिलाने वाला हो। हमारी आत्मा में

चारित्र गुण का प्रकटीकरण शीघ्रतम हो जाय। हमारा अन्तःकरण निरन्तर पाँच महाव्रतों और उनकी पचास भावनाओं से भावित रहे–प्रफुल्लित रहे।

हे चारित्रपद ! लोक में आपके बिना कभी भी हमारी आत्मा मुक्ति नहीं पा सकेगी। इसलिये हम आपसे प्रार्थना-विज्ञप्ति करते हैं कि इस मनुष्य भव में आप हमारे हृदय मन्दिर में पधारिये, हम आपका सुन्दर स्वागत करेंगे, आत्मरमणता में रमेंगे, अभ्यन्तर राग-द्वेषादि शत्रुओं को जीतेंगे, केवलज्ञान प्राप्त करेंगे, और अपने भव-भ्रमण के द्वार को बन्द कर के हम मुक्तिपुरी में सादि अनन्त स्थिति में एवं शाश्वत सुख में मग्न बनेंगे।

हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि हमारे भव निस्तार का तथा मोक्षगमन का यह शुभ कार्य पूर्ण करने में आप हमारे सम्पूर्ण सहायक बनेंगे।

श्रीचारित्रपद का अनुपम वर्णन

विश्व में **'चारित्रपद जयवन्त है।'** श्री नवपद प्रकरण में नवपद का वर्णन करते हुए अष्टम श्रीचारित्रपद के सम्बन्ध में कहा है कि--

जं वेसविरइरूवं, सव्वविरइरूवयं च अणुक्कमसो।
होइ गिहीण जईण, तं चारित्तं जए जयइ ॥ ८४ ॥

जो क्रमशः देशविरतिरूप तथा सर्वविरतिरूप होकर मुनि को प्राप्त होता है, वह **चारित्र** विश्व में जयवन्त वर्तित है ।। ८४ ।।

नाणंपि दंसणंपि य, संपुन्नफलं फलंति जीवाणं ।
जेण चिय परियरिया, तं चारित्तं जए जयइ ।। ८५ ।।

ज्ञान और दर्शन भी जिसके साथ रहने पर ही जीवों को सम्पूर्ण फल देते हैं, वह **चारित्र** विश्व में जयवन्त वर्तित है ।। ८५ ।।

जं च जईण जहुत्तर, फलं सुसामाइयाइ पंचा विहं ।
सुपसिद्ध जिणसमए, तं चारित्तं जए जयइ ।। ८६ ।।

जो सुसामायिकादिक पाँच प्रकार से मुनिजनों को अधिकाधिक फलदायी रूप में जिनागम में सुप्रसिद्ध है, वह **चारित्र** विश्व में जयवन्त वर्तित है ।। ८६ ।।

जं पडिवन्नं परिपा-लियं च सम्मं परूवियं दिन्नं ।
अन्नेसिं च जिणेहिं, वि तं चारित्तं जए जयइ ।। ८७ ।।

जिनेश्वर भगवन्तों ने जिसे स्वीकार किया हो, आराधा हो, जिसकी सम्यक् प्ररूपणा की हो और अन्य जनों को दिया हो, वह **चारित्र** विश्व में जयवन्त वर्तित है ।। ८७ ।।

छक्खंडाणमखंड, रज्जसिरिं चइय चक्कवट्टीहिं ।
जं सम्मं पडिवन्नं, तं चारित्तं जए जयइ ॥ ८८ ॥

छह खण्डों की अखण्ड राज्यऋद्धि को तज कर चक्रवर्त्तियों ने जिसे सद्भाव से स्वीकार किया है वह **चारित्र** विश्व में जयवन्त वर्तित है ॥ ८८ ॥

जं पडिवन्ना दमगा, हवंति तिय लोए ।
सयलजणपूयणिज्जे, तं चारित्तं जए जयइ ॥ ८९ ॥

जिसकी प्राप्ति से रंक जीव भी त्रिभुवन में सर्वजनों के पूजनीय होते हैं वह **चारित्र** विश्व में जयवन्त वर्तित है ॥ ८९ ॥

जं पालंताण मुणी,—सराण पाए नमंति साणंदा ।
देविंददाणविंदा, तं चारित्तं जए जयइ ॥ ९० ॥

जिस (चारित्र) का पालने करने वाले मुनीश्वरों के चरणों में देव–दानवों के नायक भी नमस्कार करते हैं वह **चारित्र** विश्व में जयवन्त वर्तित है ॥ ९० ॥

जं चाणंतगुणं पिहु, वन्निज्जइ सतरभेअदसभेअं ।
समयंमि मुणिवरेहि, तं चारित्तं पवन्नोहं ॥ ९१ ॥

अनन्त गुणवंत होते हुए भी शास्त्र में मुनिवरों ने जिसका सत्तरह प्रकार से या दस प्रकार से वर्णन किया है उस

चारित्र की मुझे शरण हो ।। ९१ ।।

समिइओ गुत्तिओ, खंतिपमुहा उ मित्तिआइओ ।
साहंति जस्स सिद्धिं, तं चारित्तं पवज्जोहं ।। ९२ ।।

पांच समिति, तीन गुप्ति, क्षमादिक गुणों और मैत्री प्रमुख भावना चतुष्टय द्वारा जिसको सिद्धि (पूर्णता) प्राप्त होती है उस चारित्र की मुझे शरण हो ।। ९२ ।।

इस तरह **'श्री चारित्रपद का अनुपम वर्णन'** प्रतिपादित किया गया है ।

सम्यक्चारित्रपद को नमस्कार

श्रीचारित्रपद विश्व में सर्वदा नमस्करणीय–वन्दनीय है । इस सम्बन्ध में न्यायविशारद न्यायाचार्य महामहोपाध्याय श्रीयशोविजयजी महाराज ने स्वरचित श्रीनवपदजी की पूजा के अन्तर्गत श्री चारित्रपद की पूजा में कहा है कि--

'देशविरति ने सर्वविरति जे, गृही यतिने अभिराम ।
ते चारित्र जगत जयवंतु, कीजे तास प्रणाम रे ।।
भविका ! सिद्धचक्रपद वंदो० (१)'

अर्थ–देशविरति और सर्वविरति रूप चारित्र क्रमशः गृहस्थ और यति (मुनि) को योग्य है, मनोहर है वह चारित्र विश्व में जयवन्त वर्तित है । उसको प्रणाम-नमस्कार करें । (१)

पुनः कहते हैं कि--

'बार मास पर्याये जेहने,
अनुत्तर सुख अतिक्रमीए।
शुक्ल शुक्ल अभिजात्य ते उपरे,
ते चारित्रने नमीए रे॥
भविका ! सिद्धचक्रपद वंदो० (४)

चय ते आठ करमनो संचय,
रिक्त करे जे तेह।
चारित्र नाम निरुत्ते भाख्युं,
ते वंदुं गुण गेह रे॥
भविका ! सिद्धचक्रपद वंदो० (५)

अर्थ–जिसके बारह मास के पालन से अनुत्तर विमान के देवों के सुखों का उल्लंघन हो जाता है और उज्ज्वल-उज्ज्वल ऐसी शुभ लेश्या में वृद्धि होती रहती है, ऐसे **चारित्र** को नमस्कार करते हैं। (४)

'चय' यानी अष्ट कर्म के संचय को 'रिक्त' यानी खाली करना, वह **'चारित्र'** शब्द ऐसी निरुक्ति से सिद्ध हुआ है। गुणों के गुणरूप चारित्र को मैं वन्दन-नमस्कार करता हूँ। (५)

(१) ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार

और वीर्याचार इन पंचाचारों का सम्यग् पालन कराने वाले **'चारित्रपद'** को मैं नमस्कार करता हूँ ।

(२) संवेग रंग तरंग के सागर में सदा स्नान कराने वाले **'चारित्रपद'** को मैं नमस्कार करता हूँ ।

(३) ज्ञानावरणीयादि अष्टकर्म का सर्वथा समूल विनाश करने वाले **'चारित्रपद'** को मैं नमस्कार करता हूँ ।

(४) प्राणातिपात विरमणादि पंच महाव्रत का पवित्र पालन कराने वाले **'चारित्रपद'** को मैं नमस्कार करता हूँ ।

(५) मोक्ष में ले जाने वाले और आत्मा को अक्षय सुख, शाश्वत सुख एवं सद्चिदानंद स्वरूप प्राप्त कराने वाले **'चारित्रपद'** को मैं नमस्कार करता हूँ ।

अन्त में, अनन्त कल्याण के साधक ऐसे सम्यक् सामायिकादि चारित्रधर्म का क्रमशः सेवन करते हुए विश्व-भर के मोक्षाभिलाषी आत्मार्थी जन-भव्यजीव वीतरागदशा के यथाख्यात चारित्र के अभूतपूर्व–अपूर्व आस्वाद का अनुभव करते हुए परमपद–मोक्षपद को **प्राप्त करें,** यही मंगल कामना ।

[९] श्रीतपपद

卐 नमो तवस्स 卐

कम्मदुमोम्मूलण-कुंजरस्स, नमो नमो तिव्वतवोभरस्स ।
अणेगलद्धीण निबंधणस्स, दुस्सज्झअत्थाण य साहणस्स ।

द्विविधं स्यादनशन–मौनोदर्यं तथा द्विधा ।
चतुर्धा वृत्तिसंक्षेपः, कायक्लेशस्तथैकधा ।। १ ।।

एकधा रससंत्यागः, संलीनत्वं तथा द्विधा ।
एवं बाह्यतपो भेदा, द्वादश श्री जिनोदिताः ।। २ ।।

दशधा प्रायश्चित्तं स्यात्, सप्तधा विनयस्तथा ।
वैयावृत्यं दशविधं, स्वाध्यायः पञ्चधा मतः ।। ३ ।।

चतुर्विधं तथा ध्यान–मुत्सर्गो द्विविधस्तथा ।
अष्टात्रिंशदिमे भेदा–स्तपसोऽभ्यन्तरस्य वै ।। ४ ।।

पञ्चाशत् संख्यया ध्येया, निर्जरार्थं मनीषिभिः ।
अन्यथाऽप्यथवा भेदाः, पदानां परिकीर्त्तिताः ।। ५ ।।

श्रीतपपद का स्वरूप

जगत में तप का स्थान सर्वोपरि है। तप सर्वग्राह्य है। कोई भी धर्म ऐसा नहीं है कि जिसमें किसी-न-किसी रूप में तप को नहीं अपनाया गया हो। भले वह जैनधर्म हो, हिन्दूधर्म हो, इस्लामधर्म हो, या विश्व का कोई भी अन्य धर्म हो। अहिंसा और संयम में जिस तरह जैनधर्म का स्थान सर्वश्रेष्ठ-सर्वोत्तम है उस तरह तपश्चरण-तप में भी उसका शीर्षस्थ स्थान है। दान, शील, तप और भाव ये धर्म के चार महान् स्तम्भ हैं। उनमें **तप** भी एक आकर्षक स्तम्भ है।

प्रभु की पूजा, सामायिक, पौषध तथा प्रतिक्रमण आदि प्रत्येक मुख्य धर्मकरणी कर्मनिर्जरा के कारण रूप अवश्य है तो भी विशेषपूर्वक निकाचित कर्मों का क्षय करने के लिये **तपश्चरण-तप** ही एक अजोड़ साधन है। धर्मरूपी महल का सुदृढ़ पाया **अहिंसा** है, धर्मरूपी महल की सुशोभित दीवारें **संयम और चारित्र** हैं तथा धर्मरूपी महल का मनोहर शिखर **तप** है।

अहिंसा से धर्म का आचरण प्रारम्भ होता है, **संयम से** धर्माचरण की वृद्धि होती है तथा **तप से** धर्माचरण की पूर्णता होती है। इस त्रिवेणीरूप संगम में जो स्नान

करते हैं वे पवित्र बनते हैं और अन्त में परमपद को एवं शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं।

विश्व में सोना-रूपा आदि सप्त धातुयें सुप्रसिद्ध हैं। सभी कच्ची धातुओं को पक्का बनाने के लिये या पक्की धातुओं से विविध प्रकार के सुन्दर आकार अलंकार-आभूषण रूप घड़ने के लिये उनको तपाना पड़ता है। उसी भाँति अपनी आत्मा-चेतन भी है। उसको भी तपाकर शुद्ध करने के लिये और उत्तम स्थिति में लाने के लिये तपश्चरण की अति आवश्यकता है। अपनी आत्मा-चेतन को तपाने वाली जो क्रिया है वही **तप-तपश्चरण** है।

तप की व्याख्या

कलिकालसर्वज्ञ **श्रीमद्हेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा ने** अपने **'श्रीसिद्धहैमव्याकरण'** ग्रन्थ में कहा है कि–'तप (तप्)-धुप (धुप्) संतापे' अर्थात् 'तप्' धातु और 'धुप्' धातु संताप अर्थ में आते हैं। उसमें 'तप्' धातु को 'अस्' प्रत्यय लगने से 'तपस्' शब्द बनता है। वही भाषा में **तप** कहलाता है। अथवा–

'ताप्यन्ते रसादिधातवः कर्माणि वा अनेनेति तपः।'

जिस क्रिया द्वारा देह का रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा एवं शुक्र ये सात प्रकार की धातुयें या कर्म

का समूह ताप पामता है यानी शोषाइ जाता है उसको 'तप' कहा जाता है इस बात की पुष्टि निम्नलिखित श्लोक भी कर रहा है—

रसरुधिरपांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राण्यनेन तप्यन्ते ।
कर्माणि चाशुभानीत्यतस्तपो नाम निरुक्तम् ।। १ ।।

अर्थ—रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र (वीर्य) ये सप्त धातुयें तथा अशुभ कर्म जिससे ताप पामते हैं अर्थात् बाह्यदेह और अभ्यन्तर कर्म को जो तपाता है वह **तप** है। इसका तात्पर्य यही है कि शरीर और मन की जो शुद्धि करे वही **तप** कहलाता है। तप की यही व्याख्या वास्तविक और पूर्ण है। किसी ने किसी व्रत को, किसी ने वनवास को, किसी ने कन्दमूल के भक्षण को, किसी ने सूर्य की आतापना को, तो किसी ने केवल देह-दमन को ही तप माना है, ऐसी मान्यताएँ उचित नहीं हैं।

तप की महत्ता

जगत में तप की महत्ता सभी धर्मों-मतों ने स्वीकार की है। उनमें प्रथम स्थान जैनधर्म का है। जैनशास्त्र में स्थले-स्थले तप की महत्ता वर्णित है। इतना ही नहीं किन्तु शास्त्रकार भगवन्तों ने प्रसंगे-प्रसंगे तप के अनेक प्रकार से गुण गाये हैं। कहा है कि—

'भवकोडिसंचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ।'

करोड़ों भवों का संचित किया हुआ कर्म तप द्वारा क्षय पामता है।

मलं स्वर्णगतं वह्नि-र्हंसः क्षीरगतं जलम्।
यथा पृथक करोत्येव, जन्तोः कर्ममलं तपः ॥ १ ॥

(उत्तराध्ययनसूत्रटीका (भावविजयकृत) अ. २, पृ० ५८, श्लो० ४५)

अर्थ–जिस तरह सुवर्ण में रहे हुए मल को अग्नि अलग करती है, दूध में रहे हुए जल को हंस अलग करता है, उसी तरह प्राणियों में रहे हुए कर्मरूपी मल को तप (आत्मा से) अलग करता है। अर्थात्–आत्मा तप रूपी अग्नि द्वारा सुवर्ण की तरह निर्मल होता है ॥ १ ॥

'आचारदिनकर' ग्रन्थ में आचार्य श्रीवर्द्धमानसूरिजी म० ने भी तप के सम्बन्ध में कहा है कि–

यद् दूरं यद् दुराराध्यं, यच्च दूरे व्यवस्थितम्।
तत् सर्वं तपसा साध्यं, तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ २ ॥

अर्थ–जो (वस्तु) दूर है अर्थात् कल्पना से अतिरिक्त है, जो (वस्तु) कष्ट साध्य है तथा जो (वस्तु) दूर स्थित है, ऐसी सभी वस्तुएँ तप से साध्य हैं। कारण यह है कि तप दुरतिक्रम है। अर्थात् जिसका कोई उल्लंघन नहीं कर सके ऐसा है ॥ २ ॥

तप की मंगलमयता

'विघ्नविनाशकं कर्म मंगलम्'--विघ्न की विनाशक क्रिया **मंगल** है। उसी तरह कल्याण को प्राप्ति कराने वाली जो क्रिया है वह भी **मंगल** है। मंगल के ये दो भेद हैं–**द्रव्यमंगल** और **भावमंगल**।

संसार के व्यवहार में आने वाले विघ्नों को दूर कर भौतिक-लौकिक सुख दिलाने वाला द्रव्यमंगल है तथा आत्मिक विकास में बाधक ऐसे अप्रशस्त भावों को दूर कर शाश्वत मोक्षसुख को दिलाने वाला भावमंगल है। तप में द्रव्यमंगल और भावमंगल इन दोनों की दिव्यशक्ति निहित है। इसलिये तप भी सर्वश्रेष्ठ मंगल है। ऐसे **मंगलमय तप से विघ्न की परम्परा दूर होती है और अन्त में परमपद की प्राप्ति होती है।**

तप का विशिष्ट स्थान

जैनधर्म में विविध प्रकार से तप का विशिष्ट स्थान है। तप बिना धर्म का स्वरूप परिपूर्णता को नहीं पा सकता। श्रुतकेवली श्रीशय्यंभवसूरिमहाराजाने स्वरचित श्रीदशवैकालिकसूत्र में द्रुमपुष्पिका नामक प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा में कहा है कि–

"धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।"

अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म, उत्कृष्ट मगल है। कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्रसूरि महाराजा ने भी मनुष्य जीवन के महाफलरूप में तप का ही वर्णन किया है। देखिये--

अद्यश्वीनविनाशस्य, शरीरस्य शरीरिणाम्।
सकामनिर्जरासारं, तप एव महत् फलम् ॥ २ ॥

जीवों का शरीर जो आज या कल विनष्ट होने वाला है, उसका महान् फल तो यही है कि सकाम निर्जरा से प्रधान ऐसा तप अर्थात् सकाम निर्जरा करने वाला तप करना। (२)

* क्षमा आदि दश प्रकार के यतिधम में भी तप का स्थान है।

* दान आदि चार प्रकार के धर्म में भी तप का स्थान है

* दर्शनाचार आदि पंचाचार में भी चतुर्थाचार तरीके तप का स्थान है।

* मनुष्य जन्म के पूज्यपूजा आदि आठ पदार्थों में भी तप का स्थान है।

* गृहस्थ के छह प्रकार के नित्यकर्मों में भी तप का स्थान है।

★ सकलसिद्धिदायक श्रीसिद्धचक्र-नवपद की आराधना में भी तप का स्थान है ।

★ अरिहंतपद आदि वीशस्थानकपद की आराधना में भी तप का स्थान है ।

इत्यादि विविध प्रकारे तप का विशिष्ट स्थान जैन-शास्त्रों में स्थले-स्थले दृष्टिगोचर होता है ।

तप के प्रकार-भेद

श्रीजिनेन्द्र-तीर्थंकर भगवन्त के शासन में मोक्ष के सच्चे उपाय के रूप में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की संयुक्त उपासना प्रतिपादित की गई है । यद्यपि उनमें तप का स्पष्ट उल्लेख नहीं है तथापि चारित्र-प्राप्ति में, साधना में तथा चारित्र-रक्षण में एवं उसकी अभिवृद्धि में **तप** का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है । चारित्र-संयम को संवर का कारण तथा तप को निर्जरा का कारण कहा है । पूर्वधर महर्षि वाचकप्रवर श्री उमास्वाति महाराजा ने श्री तत्त्वार्थाधिगमसूत्र में इस सम्बन्ध में स्पष्टपने कहा है कि--'**तपसा निर्जरा च**' तप से कर्म की निर्जरा होती है और ('च' से) संवर भी तप से होता है । इससे संवर तथा निर्जरा के लिये तप अति आवश्यक है ।

श्रीसिद्धचक्र-नवपद के आठ पदों की आराधना तप द्वारा ही हो सकती है। तप कर्मनिर्जरा का प्रबल साधन है। चारित्र आते हुए नूतन-नवीन कर्मों को रोकता है, तप पुराने कर्मों का क्षय करता है और नये कर्मों को रोकता है। तप के दो भेद हैं---(१) बाह्यतप और (२) अभ्यन्तर तप। **बाह्यतप** के छह भेद हैं और **अभ्यन्तरतप** के भी छह भेद हैं। दोनों मिलाने पर तप के बारह भेद होते हैं। उसमें छह प्रकार के बाह्यतप क्रमशः इस प्रकार हैं---

अणसणमूणोअरिया, वित्तीसंखेवणं रसच्चाओ।
कायकिलेसो संलीणया य बज्झो तवो होइ॥ १॥
(नवतत्त्वप्रकरण, गाथा–३६)

(१) अनशन, (२) ऊनोदरिका, (३) वृत्तिसंक्षेप, (४) रसत्याग, (५) कायक्लेश और (६) संलीनता।

(१) अनशन तप–**अन्** यानी नहीं, **अशन** यानी आहार। अर्थात् शास्त्रविधिपूर्वक आहार का जो त्याग करना वह **'अनशन तप'** कहा है। व्रत-पच्चक्खाण की अपेक्षा बिना, केवल भूखे रहने से **अनशन तप** नहीं हो सकता। यह तो लंघन कहा जाता है। अनशन तप में अशन, पान खादिम और स्वादिम रूप चार प्रकार के आहार का त्याग होता है। **अशन** के आठ प्रकार हैं---

(१) जिसमें से तेल नहीं निकलता है, ऐसे मूंग, चणा, चोळा, वाल, वटाणा, उड़द, तुवेर, कळथी और सरसव आदि तथा जिसमें से तेल निकलता है, ऐसे तिल, अलसी, सिलींद, कांग, कोदरा, अणुका तथा धाणा इत्यादि। ये सभी कठोर **अशन** हैं।

(२) सर्व जाति के अक्षत (चावल) तथा गेहूं-बाजरी-ज्वार आदि सर्व जाति के धान्य **अशन** हैं।

(३) साथवा कि जो, ज्वार, मग इत्यादि सेक कर बनाया हुआ लोट वह भी **अशन** है।

(४) रोटा, रोटी, पूड़ा, पूरी, पोळी, मांडा आदि भी **अशन** है।

(५) दूध, दही, घी, तेल, गुड़ और कड़ा विगइ ये छह विगइयाँ तथा मदिरा, मांस, माखण, मद्य ये चार महा विगइयाँ भी **अशन** हैं।

(६) समस्त प्रकार के पकवान प्रमुख भी **अशन** हैं।

(७) राब तथा सर्व जाति की घेंस इत्यादि भी **अशन** है।

(८) सभी वनस्पति के कन्दमूल, फलादि के रंधाये हुए शाक इत्यादि भी **अशन** हैं।

उक्त आठ प्रकारों में सभी प्रकार के अशन का समावेश हो जाता है। इन सभी प्रकार के अशनों का त्याग करने का है।

(२) **पान**–इसमें सभी प्रकार के पानी का समावेश होता है। पुष्प का रस, शेरडी का रस, जव का पानी, केर का पानी, कांजी का पानी, तल इत्यादि का पानी, आटा वाले हाथ आदि का पानी, श्रीफल-चीभडा-काकडी इत्यादि फलों में रहा हुआ या उसका धोवण पानी, बाफ् का पानी, कर्पूर प्रमुख अन्य पदार्थ द्वारा मिश्र हुआ न हो ऐसा विशुद्ध पानी, कर्पूर, द्राक्षा, एलाइची आदि स्वादिम वस्तुओं से मिश्र किया हुआ पानी, छाश की आछ, दारु, अनेक जाति के आसव, हिम, करा, बाह्यतृणादि पर रहे हुए जल बिन्दु और सर्व प्रकार के पानी इन सभी की गिनती पानाहार में होती है। उसका त्याग करने का होता है।

(३) **खादिम**–जिन्हें खाने से क्षुधा (भूख) की पूर्ण शान्ति तो न हो तो भी कांइक सन्तोष मिले, ऐसी चीजों की गिनती खादिम तरीके होती हे। जैसे--मूंग, चना, दाळीया, ममरा, पौंवा आदि सभी जाति का भुंजा हुआ धान्य। द्राक्षा, बादाम, पिस्ता, चारोळी, काजू, खजूर, खारेक, टोपरु आदि मेवा। केरी, मोसंबी, नारंगी, पपैयु, चीभडुं, संतरा, दाडम, केळा, तरबूज इत्यादि फळ।

कोठवडो, कोठीपत्र, आमळागंठी, आंबागोळी, शेलडी, लींबुइ पत्र, सेके हुए धान्य गुंदर आदि तथा दांत माँजने के लिये दन्तमंजन, पाउडर आदि। इन सभो वस्तुओं का समावेश खादिम में होता है। इन सब का त्याग करने का होता है।

(४) **स्वादिम**–जिसे स्वादरूप में ग्रहण किया जाता है वह पदार्थ **स्वादिम** कहा जाता है। जैसे–तज, लवंग, एलची, सूवा, सोपारी, वरीआळी, अजमा, जीरा, जावंत्री, जायफल, अजमोद, हींग, मरी, सूंठ, पीपर, हरडां, हरडे, बेडां, बावची, तुलसी, कचूरा, संचळ, केसर, नागकेसर, काथा, मोथ, तमालपत्र, जेठीमध, पीपरीमुळ, खेरवटी, बीडलवण, चीणिक बाबा, कांटासेलीओ, पुष्करमूळ, बावळ की छाल. खीजडा की छाल और उसके पत्र, खेर की छाल, धावडी की छाल, जवासा का मूळ तथा नागर-वेल का पान आदि। इन सभी वस्तुओं का समावेश स्वादिम वर्ग में होता है। इनका त्याग करने का है।

जिसमें अशन, पान, खादिम एवं स्वादिम इन चारों प्रकार के आहार का त्याग होता है वह **चोविहार अनशन** गिना जाता है तथा पानक आहार बिना अर्थात् जल-पानी बिना तीन प्रकार के (अशन, खादिम एवं स्वादिम रूप) आहार का त्याग होता है वह **तिविहार अनशन** गिना

जाता है। जैनशास्त्रों में ऐसे अनशन के दो भेद कहे हैं--

अनशनं द्विधा प्रोक्तं, यावज्जीविकमित्वरम्।
द्विघटिकादिकं स्वल्प, चोत्कृष्टं यावदात्मिकम्॥

अनशन दो प्रकार का कहा है। यावज्जीवपर्यन्त-यावत्कालिक और इत्वरकालिक। उसमें दो घड़ी आदि का **जघन्य अनशन** और जीवन पर्यन्त का उत्कृष्ट अनशन है।

(१) **इत्वरिक अनशन**–अल्प समय का यह अनशन भी **सर्व से** और **देश से** इस प्रकार दो तरह का है। चारों प्रकार के आहार के त्याग रूप चोविहार उपवास, छट्ठ (बेला), अट्ठम (तेला) इत्यादि **सर्व से इत्वरकालिक अनशन** कहा जाता है तथा नमुक्कारसहियं, पोरिसी, साड्ढपोरिसी आदि **देश से इत्वरकालिक अनशन** कहा जाता है।

(२) **यावत्कालिक अनशन**–यह जावज्जीव यानी जीवन पर्यन्त का अनशन गिना जाता है। भक्तप्रत्याख्यान, इंगिनी और पादोपगमन ये तीन प्रकार के अनशन **यावत्कालिक** होते हैं। इस तरह छह प्रकार के बाह्यतप में से पहले **अनशन तप** का प्रतिपादन किया है।

आत्मा के साथ अनादिकाल से लगी हुई आहारसंज्ञा

द्वारा आहार करने का जो अनादिकालीन स्वभाव आत्मा का है, उस पर तथा रसनेन्द्रिय पर इस **अनशन तप** से अति सुंदर नियंत्रण-कंट्रोल हो जाता है ।

(२) **ऊनोदरिका तप–ऊन** यानी न्यून-कम **और ओदरिका** यानी उदरपूर्त्ति जो करनी, वह **'ऊनोदरिका तप'** कहा जाता है । अर्थात् प्रमाण से भी न्यून-अल्प आहार-खुराक लेना वह **ऊनोदरिका तप** है । शास्त्र में कहा है कि—

बत्तीसं किर कवला आहारो कुच्छिपूरओ भणिओ ।
पुरिसस्स महिलाए अट्ठावीसं भवे कवला ।। १ ।।

कवलाण व परिमाणं, कुक्कडिअंडयपमाणमेत्तं तु ।
जो वा अविगयवयणो वयणम्मि छुहेज्ज विसत्थो ।। २ ।।

अर्थ–उदरपूर्त्ति के लिये पुरुष का आहार बत्तीस कवल (कोळीया) जितना कहा है तथा स्त्री का आहार अट्ठावीस कवल (कोळीया) जितना कहा है । उसमें कवल का प्रमाण कुकडी के इंडा जितना जानना । अथवा मुख का भाग विशेष पहोळा करया बिना सरलता से आहार का कवल (कोळीया) मुख में मूक सके इतना समझना । (१-२)

इस ऊनोदरी तप के दो भेद हैं । **द्रव्य ऊनोदरिका**

तप और भाव ऊनोदरिका तप। उसमें द्रव्य ऊनोदरिका तप के पाँच भेद हैं। (१) अल्पाहारा. (२) अपार्धा, (३) द्विभागा, (४) प्राप्ता और (५) किंचिदूना। इन पाँचों का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है—

(१) **अल्पाहारा**—पुरुष द्वारा एक से आठ कवल (कोळीया) तक का आहार करना और स्त्री द्वारा एक से सात कवल (कोळीया) तक का आहार करना; सो **'अल्पाहारा द्रव्य ऊनोदरिका तप'** कहा जाता है।

(२) **अपार्धा**—पुरुष द्वारा नव से बारह कवल (कोळीया) तक का और स्त्री द्वारा आठ से ग्यारह कवल (कोळीया) तक का आहार करना, वह **'अपार्धा द्रव्य ऊनोदरिका तप'** कहा जाता है।

(३) **द्विभागा**—पुरुष द्वारा तेरह से सोलह कवल (कोळीया) तक का और स्त्री द्वारा बारह से चौदह कवल (कोळीया) तक का आहार करना, सो **'द्विभागा द्रव्य ऊनोदरिका तप'** कहा जाता है।

(४) **प्राप्ता**—पुरुष द्वारा सत्तरह से चौवीस कवल (कोळीया) तक का और स्त्री द्वारा पंदरह से एकवीश कवल (कोळीया) तक का आहार करना, वह **'प्राप्ता द्रव्य ऊनोदरिका तप'** कहा गया है।

(५) **किंचिदूना**—पुरुष द्वारा पच्चीस से एकत्रीश

कवल (कोळीया) तक का तथा स्त्री द्वारा बावीश से सत्तावीश कवल (कोळीया) तक का आहार करना, वह **'किंचिदूना द्रव्य ऊनोदरिका तप'** कहा है।

इस तरह द्रव्य ऊनोदरिका तप के पाँच भेद हैं। भाव ऊनोदरिका तप के सम्बन्ध में कहा है कि---

कोहाइणमणुदिणं चचाओ जिणवयणभावणा उ अ।
भावोणोदरिया वि हु पन्नत्ता बीयरायेहिं ।। १ ।।

श्रीजिनेश्वर भगवंत के वचनों के मनन से निरन्तर क्रोधादिक का जो त्याग करना उसको श्रीवीतरागदेव ने **भाव ऊनोदरिका तप** कहा है।

(३) **वृत्तिसंक्षेप तप**–इसके सम्बन्ध में शास्त्र में कहा है कि--

वर्तते ह्यनया वृत्तिः, भिक्षाशनजलादिका।
तस्याः संक्षेपणं कार्यं, द्रव्याद्यभिग्रहाञ्चितैः ।। १ ।।

जिससे जीवन टिक सके अर्थात् जीवन रह सके उसको **वृत्ति** कहा है। उसमें भोजन और जल इत्यादिक का समावेश होता है। इस वृत्ति का द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से जो संक्षेप करना वह **'वृत्तिसंक्षेप तप'** कहा जाता है।

द्रव्य आदि से भोजन का अभिग्रह करना, उसका भी समावेश इसी में होता है। इस तप के भी चार भेद हैं- (१) द्रव्य संक्षेप, (२) क्षेत्र संक्षेप, (३) काल संक्षेप, और (४) भाव संक्षेप।

(१) **द्रव्यसंक्षेप**–अमुक प्रकार की भिक्षा मिले तो ही लेना, अन्य प्रकार की न लेना यह **'द्रव्यवृत्तिसंक्षेप'** कहा जाता है।

(२) **क्षेत्रसंक्षेप**–एक, दो या अमुक गृह में से या अमुक स्थल से भिक्षा मिले तो ही लेना, अन्य स्थान से न लेना यह **'क्षेत्रवृत्तिसंक्षेप'** तप कहा गया है।

(३) **कालसंक्षेप**–दिन के प्रथम प्रहर में, द्वितीय प्रहर में या तृतीय प्रहर आदि में नियतकाले भिक्षा मिले तो ही लेनी, अन्य काल में न लेनी यह **'कालसंक्षेप'** तप है। साधु या साध्वी को मध्याह्न काल में ही गोचरी करने की है। इस अपेक्षा से प्रथम प्रहर की या पश्चात् प्रहर की गोचरी को वृत्तिसंक्षेप में गिना है।

(४) **भावसंक्षेप**–अमुक स्थिति में रहा हुआ व्यक्ति ही जो भिक्षा दे तो ही लेनी, अन्यथा नहीं लेनी यह **'भावसंक्षेप'** तप कहा गया है।

यह तप प्रतिदिन करने योग्य है। साधु-साध्वियों

को तो अवश्य ही यह **'वृत्तिसंक्षेप तप'** करना चाहिये। नहीं करने पर वे प्रायश्चित्त के भागी होते हैं। इस सम्बन्ध में कहा है कि–

"पइदियह चिय नव नवमभिग्गहं चिन्तयति मुणिवसहा।
जियंमि जहो भणियं पच्छित्तमभिग्गहाभावे ॥"

मुनिवृषभ प्रतिदिन नया-नया अभिग्रह धारण करते हैं। वे यदि अभिग्रह नहीं धार सकें तो 'जीतसूत्र' में कहा है कि वे प्रायश्चित्त के भागीदार होते हैं॥

(४) रसत्याग तप–रस का त्याग करना, सो **'रस-त्याग तप'** कहा जाता है। शास्त्र में इसके सम्बन्ध में कहा है कि–

विकृतिकृद् रसानां यत्, त्यागो यत्र विधीयते।
गुर्वाज्ञां प्राप्य विकृतिं, गृह्णाति विधिपूर्वकम् ॥ १ ॥

विकार पैदा करने वाले रसों का त्याग जिसमें किया जाता है वह **रसत्याग तप** है। रस से शरीर की अस्थि-मज्जादि सभी सात धातुएँ पुष्ट होती हैं। दूध, दही इत्यादि (विकृति) वस्तुओं का त्याग करना, सो रसत्याग कहा जाता है। अथवा रस यानी स्वाद का त्याग करना, वह भी **रसत्याग** है।

त्यागी साधु महात्माओं को ज्ञानादि पुष्ट आलम्बन

के लिये पूज्य गुरुमहाराज आदि को आज्ञानुसार विधिपूर्वक विगई ग्रहण करने की और वापरने की है।

दूध, दही, घी, तेल, गुड़ (शक्कर) और कड़ा-पक्वान्न इन छह रसों को शास्त्रीय भाषा में विगई या विकृति कहा जाता है। ये छह लघु विगइयों के रूप में गिने जाते हैं। इनका त्याग साधक आत्माओं को यथाशक्ति करना चाहिये। मद्य, मदिरा, मक्खन एवं मांस इन चारों रसों को शास्त्रीय भाषा में **महाविगइ** या महाविकृति कहते हैं। इनमें तद्-तद् वर्ण के असंख्य जीव उत्पन्न होने से तथा तामसी और विकारी होने से अर्थात् तामसभाव को तथा विकार को उत्पन्न करने वाली होने से, ये सर्वथा **अभक्ष्य** हैं, अर्थात् त्याज्य हैं। शास्त्र में प्रतिपादित **बावीश** अभक्ष्यों में भी इन चारों का निर्देश किया हुआ है। इस दृष्टि से भी ये सभी सर्वथा वर्जनीय हैं।

(५) **कायक्लेशतप**—काया को क्लेश देना अर्थात् शरीर को कष्ट देना अथवा आये हुए काया के क्लेश को, कष्ट को समाधिपूर्वक सहन करना, सो '**कायक्लेश**' कहा जाता है।

आगमोक्त विधि अनुसार वीरासन, पद्मासन, पर्यंकासन, गोदोहिकासन और वज्रासन आदि आसनों द्वारा देह को कसना, खुले पाँव से चलना, रक्षा द्वारा मस्तक के केशों का

तथा दाढ़ी-मूंछ के बालों का लोच करना, शियाला की ठंडी और उन्हाला की गरमी सह लेना, मच्छर और डाँस आदि के परीषहों तथा उपसर्गों–उपद्रवों को भी सहना; इत्यादि शरीर को कष्ट देने रूप क्रियाएँ कायक्लेश तप के अन्तर्गत गिनी जाती हैं।

पंचाग्नि तप तपना, वृक्ष की डाली के सहारे द्वारा सिर नीचे और पाँव ऊपर कर लटकना, ठंडे पानी में खड़े रहना, केश-नख बढ़ाना इत्यादि अज्ञान कायकष्ट का समावेश इस कायक्लेश तप में नहीं होता। कारण कि उसमें जीवों की हिंसा होती है और संयम के साधनरूप इन्द्रियों आदि की भी हानि सम्भवती है।

(६) **संलीनता तप**–संलीनता यानी संगोपन (संकोचना) अर्थात् काया का, वाणी का और मन का संकोच करना वह '**संलीनता तप**' कहा जाता है। इस सम्बन्ध में शास्त्रकार महर्षियों ने कहा है कि–

"इंदिअ-कसाय-जोगा, पडुच्च संलीणया मुणेयव्वा।
तह य विवित्त–चरिया पण्णत्ता वीअरागेहिं॥"

इन्द्रिय, कषाय और योग का आश्रय न करके तथा विविक्तचर्या यानी स्त्री, पशु और नपुंसक के निवास से रहित ऐसे एकान्त विशुद्ध स्थान में जो निवास करना, उसको

वीतराग - श्रीतीर्थंकरदेवों ने **संलीनता तप** कहा है। **संलीनता तप** के चार भेद हैं। इस सम्बन्ध में कहा है कि---

"इन्द्रियादि–चतुर्भेदा, संलीनता निगद्यते।
बाह्यतपोऽन्तिमो भेदः, स्वीकार्य स्कंदर्कषिवत् ॥"

(१) इन्द्रियसंलीनता, (आदि शब्द से) (२) कषाय संलीनता, (३) योगसंलीनता और (४) विविक्त-संलीनता। बाह्यतप के अन्तिम भेद **संलीनता तप** के ये चार भेद कहे जाते हैं। इन्हें स्कन्दकऋषि की भाँति स्वीकार करना।

उक्त श्लोक में वर्णित संलीनता तप के चारों भेदों का स्वरूप इस तरह है।

(१) **इन्द्रियसंलीनता**–अप्रशस्तपने प्रवर्तती ऐसी इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों से जो पीछे वालनी वह **'इन्द्रियसंलीनता'** कही जाती है।

(२) **कषायसंलीनता**–क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों कषायों को उदय में न आने देना तथा जो उदय में आये हुए हों उनको क्षमादि द्वारा निष्फल कर देना सो **'कषाय संलीनता तप'** है।

(३) **योगसंलीनता**–मन, वचन और काया के अशुभ

व्यापार से पीछे हटना तथा कुशलयोग की उदीरणा करना सो **'योगसंलीनता तप'** है ।

(४) विविक्तचर्यासंलीनता–स्त्री, पशु और नपुंसक इत्यादि संसर्गवाले स्थानों का त्याग कर के सभा, शून्यघर, देवकुळ, उद्यान-बगीचा या पर्वत की गुफा आदि प्रमुख स्थान में रहना. उसे **'विविक्तचर्यासंलीनता तप'** कहा जाता है ।

उपरोक्त अनशनादि छह प्रकार का तप **बाह्य तप** कहा जाता है ।

अब अभ्यन्तर तप का वर्णन किया जाता है । अभ्यन्तर तप के भी छह भेद हैं—

"पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।
झाणं उस्सग्गोऽवि य, अब्भितरओ तवो होइ ।।"
(नवतत्त्वप्रकरण, गाथा–३६)

(१) प्रायश्चित्त, (२) विनय, (३) वैयावृत्य, (४) स्वाध्याय, (५) ध्यान और (६) कायोत्सर्ग । ये छह **अभ्यन्तर तप** हैं ।

(१) प्रायश्चित्त तप–इधर **'प्रायः'** विशेष से, **'चित्त'** की विशुद्धि जो करे सो प्रायश्चित्त ऐसा शब्दार्थ जानना । प्रायश्चित्त यानी पाप का विनाश करने वाली क्रिया

'प्रायशः कर्ममलिनं जीवं चित्तं वा शोधयतीति प्रायश्चित्तम्' अपने से बने हुए अपराधों को शुद्ध करना सो **'प्रायश्चित्त'** कहा जाता है। अथवा प्रायः करके पापमलिन ऐसे जीव को-मन को जो शुद्ध करता है वह भी **'प्रायश्चित्त'** कहा जाता है। शास्त्र में दश प्रकार के प्रायश्चित्त प्रतिपादित किये गये हैं। इस सम्बन्ध में कहा है कि--

"आलोयणं१ पडिकमणं२ मीस३ विवेगे४ तहा विउस्सग्गे५। तव६ छे अ७ मूल८ अणवट्ठाए९ अपारंचिए१० चेव॥"

(१) आलोचना, (२) प्रतिक्रमण, (३) मिश्र, (४) विवेक, (५) कायोत्सर्ग, (६) तप, (७) छेद, (८) मूल, (९) अनवस्थाप्य और (१०) पाराञ्चित। इन दश प्रकार के प्रायश्चित्त का संक्षिप्त स्वरूप इस तरह है--

(१) आलोचना प्रायश्चित्त--किये हुए पापों (गुनाहों-भूलों) की पूज्य गुरुमहाराजादि के समक्ष शास्त्रोक्त विधि मुजब जो रजुआत करनी, सो **'आलोचना प्रायश्चित्त'** है। किसी जीव विशेष के पाप की शुद्धि इस आलोचना से ही हो जाती है।

(२) प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त--ईर्यासमिति आदि में सहसात्कार से अनाभोग यानी अनुपयोग हुआ हो, मार्ग में

चलते-चलते बातचीत की हो, साधु महात्माओं को अनुचित और गृहस्थजनों को उचित ऐसी भाषा बोलने में जो प्रमादाचरण होते हुए हिंसा आदि के दोष लगे हों, इच्छाकार इत्यादि समाचारी का सम्यग् पालन न हुआ हो, ऐसे दोषों में पूज्य गुरुमहाराज के समक्ष इन दोषों का कथन किये बिना भी **'मिच्छामि दुक्कडं'** यानी **'मिथ्यादुष्कृत'** देते हुए जो शुद्धि होती है, वह **'प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त'** तप कहा जाता है। उसमें लगे हुए दोष-पाप पुनः नहीं करने के लिये **'मिच्छामि दुक्कडं'** दिया जाता है।

(३) **मिश्र प्रायश्चित्त**–इष्टविषयों का अर्थात् अपनी मन-गमती वस्तुओं का अनुभव करने के पश्चात्, उसके वियोग में 'मैंने राग या द्वेषादि किया था कि नहीं' इस तरह का जो संशय उत्पन्न होता हो तो उस दोष का पूज्य गुरुमहाराज के समक्ष कथन करके, गुरु की आज्ञानुसार 'मिच्छामि दुक्कडं' देना अर्थात् मिथ्यादुष्कृत कहना, वह **'मिश्र प्रायश्चित तप'** कहा गया है। इसमें किये हुए दोषों-पापों का कथन गुरु के समक्ष किया जाता है और साथ में 'मिच्छामि दुक्कडं' भी दिया जाता है।

(४) **विवेक प्रायश्चित्त**–भिक्षा में प्राप्त अशुद्ध (ऐसे) अन्न-पानादि को शुद्ध जान के ग्रहण करने के पश्चात् लगा

कि यह अन्न-पानादि अशुद्ध है अथवा ग्रहण किये हुए अन्न-पानादि क्षेत्रातीत या कालातीत हैं अथवा सूर्योदय हो गया है अथवा अभी अस्त नहीं हुआ है, इस तरह समझकर अन्न-पानादि ग्रहण करने के बाद लगा कि सूर्योदय नहीं हुआ था या सूर्यास्त हो गया है इसलिये ग्रहण किये हुए उन अन्न-पानादिक का विधिपूर्वक जो त्याग करना, वह **'विवेक प्रायश्चित्त तप'** कहा गया है। इसमें अकल्पनीय अन्न-पानादिक का शास्त्रोक्त विधिपूर्वक त्याग किया जाता है।

(५) **कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त**–कुस्वप्न, दुःस्वप्न इत्यादि देखने में आते, लगे हुए दोषों की शुद्धि कायोत्सर्ग मात्र से होती है। इसलिये उस निमित्ते किया जाने वाला जो काउस्सग्ग है उसे **'कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त तप'** कहा जाता है। इसमें काया का व्यापार बन्द रखकर ध्यान किया जाता है।

(६) **तप प्रायश्चित्त**–जीवहिंसा आदि में लगे हुए दोष अंगे करने में आता हुआ नीवी प्रमुख का जो तप है वह **'तप प्रायश्चित्त तप'** कहा गया है। इसमें किये हुए पाप-दोष के दण्डरूपे नीवी आदि कराते हैं।

(७) **छेद प्रायश्चित्त**–संयम-चारित्र में रह कर जिसने महाव्रत का भंग किया हो, जो तप करने में असमर्थ हो

अथवा तपगर्वित हो, जो ग्लान अथवा वृद्ध हो, तप में अश्रद्धावान् व्यक्ति को बारबार तप का प्रायश्चित्त आने पर भी तप से जो ठकता न हो, कारण बिना भी पुनः पुनः अपवाद का जो सेवन करता हो, अथवा छह मास के उपवास जितना उत्कृष्ट तप करने पर भी अधिक तप के योग्य जिसने सेवन किया हो। ऐसी आत्माओं को तप का प्रायश्चित्त आता हो तो भी शास्त्रोक्त विधिपूर्वक जो दीक्षा पर्याय का छेद करने में आता है, उसे **'छेद प्रायश्चित्त'** कहा है। उसमें उपरोक्त कारणों से अमुक प्रमाण में दीक्षा का पर्याय न्यून कराता है अर्थात् दीक्षाकाल कम होता है।

(८) मूल प्रायश्चित्त–संकल्पपूर्वक पंचेन्द्रिय प्राणी का वध अर्थात् विनाश करने में, 'अमुक स्त्री की सती तरीके प्रसरी हुई ख्याति-प्रसिद्धि को नष्ट करूँ" ऐसी बुद्धि से सती स्त्री का संभोग करने में, महा असत्य, चोरी, परिग्रहादिक का बार-बार सेवन करने में, या हिंसा आदि पाँचों आस्रव करने में या उनकी अनुमोदना में, मंत्र आस्रव कराने में या उसकी अनुमोदना में तथा मंत्र या औषधि आदि द्वारा गर्भाधान, गर्भपातन के कारण संयम-दीक्षा को छोड़कर आये हुए व्यक्ति को पुनः महाव्रत का जो स्वीकार कराना, वह **'मूल प्रायश्चित्त तप'** कहा है। इसमें महान् अपराध

करने वाले व्यक्ति को मूल से पुनः महाव्रत उच्चराते हैं अर्थात् उसको पुनः चारित्र दिया जाता है।

(९) **अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त**—किये हुए अपराध का प्रायश्चित्त जहाँ तक नहीं किया जाय वहाँ तक पुनः महाव्रत नहीं उच्चराना, वह '**अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त तप**' कहा जाता है। इसमें किये हुए अपराध का प्रायश्चित्त नहीं करे तब तक उस व्यक्ति को पुनः महाव्रत नहीं उच्चराना। (यह प्रायश्चित्त अपराधी ऐसे आचार्य महाराज को या उपाध्यायजी महाराज को ही होता है, अन्य-दूसरे को नहीं।)

(१०) **पाराञ्चित प्रायश्चित्त**—सर्वज्ञ विभु श्री जिनेन्द्र देव की या जिनप्रवचन की आशातना करने से, चारित्र-दीक्षा में रही हुई साध्वीजी का शीलभंग करने से, राजा की रानी आदि के साथ अनाचार-सेवन से तथा मुनि या नृप के विनाश रूप, शासन के महा उपघातक पाप के दण्ड हेतु जघन्य से छह मास तक और उत्कृष्ट से बारह वर्ष तक गच्छ बाहर निकल कर के वेष पलटा कर तथा प्रायश्चित्त तप वहन कर और महान् शासन की प्रभावना करने के पश्चात् पुनः संयम (चारित्र-दीक्षा) लेकर गच्छ में जो आना वह '**पाराञ्चित प्रायश्चित्त**' कहा जाता है।

इसमें किये हुए अपराध के दण्डरूपे उत्कृष्ट से बारह

वर्ष पर्यंत गच्छ के बाहर रहना पड़े, वेष पलटा करना पड़े, प्रायश्चित्त तप वहन करना पड़े तथा महान् शासन की प्रभावना करने के पश्चात् प्रान्ते पुनः दीक्षा लेकर गच्छ में आने का रहता है। (यह प्रायश्चित्त मात्र अपराधी ऐसे आचार्य महाराज को होता है, अन्य को नहीं।) इस तरह अभ्यन्तर प्रायश्चित्त तप के दस भेदों का संक्षिप्त स्वरूप जानना। अभ्यन्तर तपों में प्रायश्चित्त, तप का प्रथम भेद है।

(२) **विनय तप**–मोक्ष के साधनों के प्रति अन्तःकरण से बहुमान रखना, उसके सम्बन्ध में बाह्यप्रतिपत्ति रूप शिष्टाचार का परिपालन करना तथा उसके प्रति की आशातना को वर्जना अर्थात् नहीं करना, वह **'विनय तप'** कहा है। इसके पाँच भेद हैं–(१) दर्शनविनय, (२) ज्ञानविनय, (३) चारित्रविनय, (४) तपविनय और (५) औपचारिक विनय।

(१) **दर्शनविनय**–देव और गुरु का औचित्य (जो) साचवना वह **'दर्शनविनय तप'** कहा गया है। इस दर्शन, विनय तप के भी दो भेद हैं–**शुश्रूषा दर्शनविनय** और **अनाशातना दर्शनविनय**। उसमें शुश्रूषा दर्शनविनय दस प्रकार का है–

(१) **सत्कार**–स्तवना-वन्दना करने को **'सत्कार**

शुश्रूषा दर्शनविनय' कहा जाता है ।

(२) **अभ्युत्थान**–आसन से खड़े हो जाने को **'अभ्युत्थान शुश्रूषा दर्शनविनय'** कहा है ।

(३) **सन्मान**–वस्त्रादिक देने को **'सन्मान शुश्रूषा दर्शनविनय'** कहा है ।

(४) **आसनपरिग्रहण**–बैठने के लिये आसन लाकर के बैठने के लिये कहना यह **'आसन परिग्रहण शुश्रूषा दर्शन-विनय'** है ।

(५) **आसनप्रदान**–आसन को व्यवस्थित रूप से गोठव देना वह **'आसनप्रदान शुश्रूषा दर्शनविनय'** है ।

(६) **कृतिकर्म**–वन्दना करना वह **'कृतिकर्म शुश्रूषा दर्शनविनय'** है ।

(७) **अंजलिग्रहण**–दोनों हाथों को जोड़ना वह **'अंजलिग्रहण शुश्रूषा दर्शनविनय'** है ।

(८) **सन्मुखागमन**–जब (गुरु आदि वडील) पधारें तब सन्मुख-सामने जाना वह **'सन्मुखागमन दर्शनविनय'** है ।

(९) **पश्चाद्गमन**–जब (गुरु आदि वडील) जायें तब वलाने के लिये जाना वह **'पश्चाद्गमन शुश्रूषा दर्शन-विनय'** कहा है ।

(१०) **पर्युपासना**–जब (गुरु आदि वडील) बैठे हुए हों तब वैयावच्च-सेवा करनी वह **'पर्युपासना शुश्रूषा दर्शनविनय'** है।

दर्शनविनय तप के दूसरे भेद **'अनाशातना दर्शनविनय'** का स्वरूप निम्नलिखित अनुसार है। इसके पैंतालीस (४५) या बावन (५२) भेद हैं–

(१) तीर्थंकर, (२) धर्म, (३) आचार्य, (४) उपाध्याय, (५) स्थविर, (६) कुल, (७) गण, (८) संघ, (९) सांभोगिक (एक मांडली में गोचरी करने वाले), और (१०) समनोज्ञ साधर्मिक (समान सामाचारी वाले), ये दस तथा पाँच ज्ञान, कुल मिलकर इन पन्द्रह की आशातना का त्याग तथा इन पन्द्रह का भक्ति-बहुमान और इन पन्द्रह की वर्णसंज्वलना (गुण की प्रशंसा), इस तरह ये पैंतालीस [१५ + १५ + १५ = ४५] भेद अनाशातना दर्शनविनय के जानना। **अथवा** (१) तीर्थंकर, (२) सिद्ध, (३) कुल, (४) गण, (५) संघ, (६) क्रिया, (७) धर्म, (८) ज्ञान, (९) ज्ञानी, (१०) आचार्य, (११) स्थविर, (१२) उपाध्याय और (१३) गणी, इन तेरह पूज्य-स्थानों का (१) अनाशातना, (२) भक्ति, (३) बहुमान और (४) गुण-प्रकाशन, इन चारों प्रकारे विनय होने से अनाशातना दर्शन विनय के बावन (५२) भेद भी समझने चाहिये।

विनय तप का दूसरा भेद **'ज्ञानविनय'** है। इसके पाँच भेद हैं–

(१) **ज्ञानविनय**–ज्ञान की और ज्ञानी की बाह्यसेवा-भक्ति करना वह **'ज्ञानविनय'** है।

(२) **बहुमानविनय**–अन्तरंग प्रीति करना वह **'बहुमान-विनय'** है।

(३) **भावनाविनय**–ज्ञान से देखे हुए और जाने हुए पदार्थों के स्वरूप को भावना वह **'भावनाविनय'** है।

(४) **विधिग्रहणविनय**–विधिपूर्वक ज्ञान को ग्रहण करना वह **'विधिग्रहणविनय'** है।

(५) **अभ्यासविनय**–ज्ञान का अभ्यास करना वह **'अभ्यासविनय'** है।

विनयतप का तीसरा प्रकार **चारित्रविनय** है। इसके भी पाँच प्रकार हैं–

चारित्रविनय–सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात चारित्र। इन पाँचों प्रकार के चारित्र की सद्दहणा यानी **श्रद्धा,** (काया द्वारा) **स्पर्शना, आदर, पालन,** और **प्ररूपणा** करना सो **चारित्र विनय** है। विनय तप का चौथा प्रकार **तपविनय** है जो प्रसिद्ध है। विनयतप का पाँचवाँ प्रकार **उपचार तप** है। इसके सात भेद हैं–

(१) अहर्निश पूज्य गुरुमहाराज आदि के पास रहना।

(२) प्रतिदिन पूज्य गुरुमहाराज आदि की इच्छा को अनुसरना।

(३) पूज्य गुरुमहाराज आदि के लिये आहार-पानी लाना, इत्यादिक से प्रत्युपकार करना।

(४) पूज्य गुरुमहाराज आदि को आहार-पानी आदि देना।

(५) पूज्य गुरुमहाराज आदि की औषधादिक से परिचर्या करनी।

(६) अवसर-समय के योग्य आचरण करना।

(७) पूज्य गुरुमहाराज आदि के सभी कार्यों को करने में तत्पर रहना।

अन्य रीति से भी सात प्रकार का **उपचार विनय** कहा है।

१. ज्ञान, दीक्षा पर्याय और वय से अधिक।

२. व्याधिग्रस्त साधु।

३. नवदीक्षित शिष्य।

४. एक मांडली में गोचरी के व्यवहार वाले ।

५. चन्द्रकुल, नागेन्द्रकुल इत्यादि ।

६. आचार्य का समुदाय ।

७. सर्व साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका ।

ऊपर विनय तप का पाँच प्रकार से प्रतिपादन किया। यह विनय तप सात प्रकार से भी कहा जाता है। इसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र विनय उपरोक्त माफिक समझना। तत् पश्चात् ४-५-६ **योगविनय**—आचार्य महाराजादि प्रति अकुशल, अशुभ मन-वचन-काया का रोध कर, कुशल शुभ मन-वचन-काया की प्रवृत्ति जो करनी वह तीन प्रकार का **'योगविनय'** कहलाता है। तथा सातवाँ औपचारिक यानी **उपचारविनय** तो ऊपर की भाँति समझ लेना।

(३) **वैयावृत्य तप**—व्याधि-रोग-परीषह और उपसर्ग-उपद्रव में अपनी शक्ति के अनुसार उसका प्रतिकार करना और आहार-पानी, वस्त्र-पात्र आदि देना तथा अंग शुश्रूषादिक से अनुकूलता कर देनी वह **'वैयावृत्य तप'** है। उसके दस भेद इस तरह हैं—

१. आचार्य, २. उपाध्याय, ३. स्थविर, ४. तपस्वी, ५. ग्लान (मांदा या अशक्त), ६. शैक्ष-शैक्षिक (नव-दीक्षित), ७. कुल, ८. गण, ९. संघ, और

१०. साधर्मिक। इन दसों की निराशंसभावे तथा कर्म-क्षय के हेतु पूर्वक सेवाशुश्रूषा करनी वह वैयावृत्य नाम का अभ्यन्तर तप है, जो धर्मकृत्य का सार है। इसके सम्बन्ध में शास्त्र में कहा है कि–

धर्मकृत्येषु सारं हि, वैयावृत्यं जगुर्जिनाः।
तत् पुनर्ग्लानसम्बन्धि, विना पुण्यं न लभ्यते ।। १ ।।

वैयावृत्य यानी वैयावच्च गुण को सर्वज्ञ श्रीजिनेश्वर देवों ने धर्मकृत्य-धर्मकार्य का सार कहा है। उसमें भी ग्लान-मांदा-अशक्त सम्बन्धी वैयावृत्य, जीव को पुण्य प्रकर्ष बिना प्राप्त नहीं होती ।। १ ।।

यह वैयावच्च गुण अप्रतिपाती है जिसके सम्बन्ध में कहा है कि–

वेआवच्चं निययं करेह उत्तमगुणे धरंताणं।
सव्वं किल पडिवाइ वेआवच्चं अपडिवाइ ।। २ ।।

उत्तम गुणों को धारण करने वाले ऐसे जीवों की वैयावच्च-सेवा अहर्निश करनी चाहिए। कारण कि जब अन्य ज्ञानादि निखिल गुण प्रतिपाती हैं तब वैयावच्च-सेवा गुण अप्रतिपाती है ।। २ ।।

(४) स्वाध्याय तप–स्वाध्याय यानी शास्त्रों का पठन-पाठन। आत्मा की आध्यात्मिक प्रगति हो ऐसे धार्मिक सूत्र,

सुसिद्धान्त या सद्ग्रन्थों का श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना वह **'स्वाध्याय तप'** कहा जाता है। उसके भी पाँच भेद हैं–१. वांचना, २. पृच्छना, ३. परावर्तना, ४. अनुप्रेक्षा और ५. धर्मकथा।

(१) **वांचना**–सूत्र को पढ़ना और पढ़ाना, वह **'वांचना स्वाध्याय तप'** है।

(२) **पृच्छना**–प्रश्न करना यानी शंका करना अर्थात् संदेह–संशय पूछना। सूत्रार्थ पढ़ते हुए और पढ़ाते हुए जो संशय-संदेह होते हैं, उनको दूर करने के लिये या सूत्रार्थ को दृढ़ करने के लिये अन्य को प्रश्नरूपे पूछना, उसे **'पृच्छना स्वाध्याय तप'** कहा है।

(३) **परावर्तना**–पुनरावर्तन करना अर्थात् आवृत्ति करनी। पूर्वे पढ़े हुए सूत्रार्थ का विस्मरण न हो जाय, इसलिये उसकी पुनरावृत्ति करना, वह **'परावर्तना स्वाध्याय तप'** है।

(४) **अनुप्रेक्षा**–तत्त्वचिन्तन करना। अर्थात् सूत्रार्थ का मन से मनन-रटन करना या अभ्यास करना वह **'अनुप्रेक्षा स्वाध्याय तप'** कहा है।

(५) **धर्मकथा**–विनिमय करना। अर्थात् धर्म का

सदुपदेश देना या श्रवण करना, वह **'धर्मकथा स्वाध्याय तप'** है ।

उपरोक्त पाँचों प्रकार का **स्वाध्याय तप** महान् निर्जरा का यानी कर्मक्षय का कारण है । महान् कर्म की निर्जरा करने वाले इस **स्वाध्याय तप** के वाचनादि पाँच भेद अति प्रसिद्ध हैं । मन्त्र जाप भी एक प्रकार का स्वाध्याय होने से उसका भी समावेश इसी स्वाध्याय तप में हो सकता है ।

(५) **ध्यान तप**–मन की एकाग्रता । वह शुभ अध्यवसाय पूर्वक हो तो ही उसका अभ्यन्तर तप में समावेश होता है । इस सम्बन्ध में शास्त्र में कहा है कि–

अंतोमुहुत्तमित्तं चित्तावत्थाणमेगवत्थुम्मि ।
छउमत्थाण झाणं जोगा निरोहो जिणाणं तु ।। १ ।।

किसी भी प्रकार के एक ही विषय की विचारणा में मन को अन्तर्मुहूर्त तक एकाग्र बनाना, वह ध्यान छद्मस्थों का कहा जाता है तथा सर्वज्ञ ऐसे केवलज्ञानी के ध्यान को योगनिरोध अर्थात् मन-वचन-काया की प्रवृत्ति का निरोध कहा है ।। १ ।।

ध्यान के दो भेद हैं । **शुभध्यान** और **अशुभध्यान** । उसमें शुभध्यान अभ्यन्तर तप स्वरूप कर्मनिर्जरा का कारण होने से उसको तप की कोटि में गिना है तथा

अशुभध्यान[1] कर्मबन्धन का कारण होने से तप की कोटि में नहीं गिना है।

---

१. अशुभध्यान के दो भेद हैं। **आर्त्तध्यान** और **रौद्रध्यान**। आर्त्तध्यान के भी चार भेद हैं—

(१) इष्टवियोग आर्त्तध्यान—स्वजन आदि इष्ट वस्तु का वियोग होने से जो चिन्ता-शोकादि होते हैं, वह **'इष्टवियोग आर्त्तध्यान'** कहा है।

(२) अनिष्ट वियोग आर्त्तध्यान—अनिष्ट वस्तु के संयोग में उसका वियोग कब हो ऐसा जो चिन्तवना वह **'अनिष्ट वियोग आर्त्तध्यान'** है।

(३) चिन्ता आर्त्तध्यान—देह-शरीर में रोग-व्याधि आदि होने से जो चिन्ता होती है, वह **'चिन्ता आर्त्तध्यान'** है।

(४) अग्रशोच आर्त्तध्यान—भविष्य के सुख की चिन्ता करनी और की हुई तपश्चर्या का जो नियाणा करना, वह **'अग्रशोच आर्त्तध्यान'** है। रौद्रध्यान के भी चार भेद नीचे मुजब हैं—

(१) हिंसानुबन्धी रौद्रध्यान—जीवों की हिंसा का जो चिन्तवन करना, वह **'हिंसानुबन्धी रौद्रध्यान'** कहा है।

(२) मृषानुबन्धी रौद्रध्यान—असत्य-झूठ बोलने का जो चिन्तवन करना, वह **'मृषानुबन्धी रौद्रध्यान'** कहा है।

(३) स्तेयानुबन्धी रौद्रध्यान—चोरी करने का चिन्तवन करना, वह **'स्तेयानुबन्धी रौद्रध्यान'** कहा है।

(४) संरक्षणानुबन्धी रौद्रध्यान—परिग्रह के रक्षण के लिये अनेक प्रकार की जो चिन्ता करनी, वह **'संरक्षणानुबन्धी रौद्रध्यान'** कहा है।

शुभ ध्यान के दो भेद हैं–**धर्मध्यान** और **शुक्लध्यान**। धर्मध्यान के चार भेद नीचे प्रमाणे हैं–

(१) **आज्ञाविचयधर्मध्यान**--'सर्वज्ञ श्रीजिनेश्वर-तीर्थंकर भगवन्त की आज्ञा और उनका वचन सत्य है।' ऐसी श्रद्धापूर्वक जो चिन्तवना–विचारना करनी, वह पहला '**आज्ञाविचयधर्मध्यान**' कहलाता है।

(२) **अपायविचयधर्मध्यान**--'राग-द्वेष आदि आस्रव इस संसार में अपायभूत-कष्टरूप हैं' इस तरह जो चिन्तवना, वह दूसरा '**अपायविचयधर्मध्यान**' है।

(३) **विपाकविचयधर्मध्यान**--'सुख और दुःख दोनों पूर्व कर्म के विपाक फल हैं' इस तरह जो चिन्तवना वह तीसरा '**विपाकविचयधर्मध्यान**' कहा है।

(४) **संस्थानविचयधर्मध्यान**--'षड्द्रव्यात्मक लोक के स्वरूप' को विचारना वह चौथा '**संस्थानविचयधर्मध्यान**' है।

अब शुक्लध्यान के चार भेदों का प्रतिपादन करते हैं।

(१) **पृथक्त्व वितर्क सविचार शुक्लध्यान**--इसमें पृथक्त्व, वितर्क और सविचार ये तीन शब्द पड़े हैं। पृथक्त्व यानी भिन्नता, अर्थात् जिस द्रव्य गुण या पर्याय का ध्यान चालू हो उसी द्रव्य गुण या पर्याय में स्थिर न

रह कर वह ध्यान अन्य द्रव्य गुण या पर्याय में चला जाता है, इसलिये **पृथक्त्व** कहा है। 'वितर्कः श्रुतम्' इस वचन से वितर्क यानी श्रुतज्ञानी को ही (विशेषतः पूर्वधर लब्धिवन्त को) यह ध्यान पूर्वगत श्रुत का उपयोगवन्त होता है, इसलिये **वितर्क** कहा है।

एक योग से दूसरे योग में, एक अर्थ से दूसरे अर्थ में और एक शब्द से दूसरे शब्द में या शब्द से अर्थ में और अर्थ से शब्द में, इस ध्यान का विचार यानी संचार होता है, इसलिये 'विचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः' इस वचन से **इसे सविचार** कहा है।

सारांश यह है कि–द्रव्यास्तिक इत्यादि नयों द्वारा एक द्रव्य में उत्पत्ति, स्थिति और विनाश आदि पर्यायों के चिन्तवनरूप जो ध्यान, वह पहला **'पृथक्त्व वितर्क सविचार शुक्लध्यान'** कहा जाता है। (यह ध्यान श्रेणिवन्त व्यक्ति को आठवें गुणस्थानक से लगाकर ग्यारहवें गुणस्थानक पर्यन्त होता है।)

(२) एकत्व वितर्क अविचार शुक्लध्यान–पूर्वोक्त प्रथम भेद से विपरीत लक्षणवन्त वायु रहित दीपकवत् निश्चल एक ही द्रव्यादिक के चिन्तवन वाला जो ध्यान, वह दूसरा **'एकत्व वितर्क अविचार शुक्लध्यान'** है। (इस ध्यान के अन्त में केवलज्ञान उत्पन्न होता है।)

(३) **सूक्ष्मक्रिया अनिवृत्ति शुक्लध्यान**–तेरहवें सयोगी गुणस्थानके रहे हुए केवली भगवन्त के जब मोक्षगमन का काल समीप आ जाता है तब मनोयोग और वचनयोग दोनों के रुंधने-रुकने के बाद, काययोग रुंधने-रुकने के समय श्वास की सूक्ष्म क्रिया चलती होने से, उस समय के ध्यान को तीसरा **'सूक्ष्मक्रिया अनिवृत्ति शुक्लध्यान'** कहा है।

(४) **व्युच्छिन्नक्रिया अप्रतिपाती शुक्लध्यान**–चौदहवें अयोगी गुणस्थान के शैलेशी अवस्था में सूक्ष्मक्रिया का भी विनाश होता है और वहाँ से पुनः ध्यान से गिरना भी नहीं होता है। इससे उस अवस्था में वर्तता जो ध्यान वह **'व्युच्छिन्नक्रिया अप्रतिपाती शुक्लध्यान'** कहा गया है।

(यह चौथा शुक्लध्यान पूर्व प्रयोग से होता है। जिस तरह दण्ड द्वारा चक्र घुमाकर दण्ड निकालने के बाद भी चक्र घूमता ही रहता है, उसी तरह इस ध्यान को भी समझ लेना।) यह ध्यान तप एक ऐसे दावानल के समान है जिसमें कर्मरूपी ईंधन-काष्ठ अन्तर्मुहूर्त्त मात्र में भी जल कर भस्मीभूत-खाक हो जाता है। इस ध्यान का विषय अतिगहन और अनुभवगम्य है।

(६) **कायोत्सर्ग तप**–कायादिक के व्यापार का उत्सर्ग यानी त्याग। अर्थात् एक स्थान में स्थिर होकर काय

व्यापार का त्याग करना, मौन से वचन व्यापार का त्याग करना तथा ध्यान से अप्रशस्त मन व्यापार का त्याग करना **'कायोत्सर्ग तप'** कहा गया है। **'उत्सर्ग अथवा व्युत्सर्ग'** इस नाम से भी यह अभ्यन्तर तप सम्बोधित होता है।

यह द्रव्य और भाव दोनों भेद से दो प्रकार का है। **द्रव्यकायोत्सर्ग** और **भावकायोत्सर्ग**। उसमें द्रव्यकायोत्सर्ग के चार भेद हैं–

(१) **गणोत्सर्ग**–गण यानी गच्छ का त्याग कर जिनकल्प आदि कल्प को स्वीकारना वह **'गणोत्सर्ग'** कहा गया है।

(२) **कायोत्सर्ग**–पादोपगमन आदि अनशन व्रत स्वीकार कर, काया का त्याग करना वह **'कायोत्सर्ग'** कहा गया है।

(३) **उपधि उत्सर्ग**–उस-उस कल्पविशेष की समाचारी के अनुसार वस्त्र और पात्र आदि उपधि का त्याग करना वह **'उपधि उत्सर्ग'** कहा गया है।

(४) **अशुद्ध भक्तपानोत्सर्ग**–अशुद्ध या अधिक (ऐसे) आहार-पानी का त्याग करना वह **'अशुद्ध भक्तपानोत्सर्ग'** कहा गया है।

भावकायोत्सर्ग के तीन भेद हैं।

(१) **कषायोत्सर्ग**–कषाय का त्याग करना। अर्थात् क्रोध, मान, माया एवं लोभ रूप कषाय का त्याग करना वह '**कषायोत्सर्ग**' कहा गया है।

(२) **भवोत्सर्ग**–भव यानी संसार के कारण रूप मिथ्यात्वादि बन्धहेतु का त्याग करना, वह '**भवोत्सर्ग**' कहा गया है।

(३) **कर्मोत्सर्ग**–ज्ञानावरणीय आदि आठों कर्मों का त्याग करना, वह '**कर्मोत्सर्ग**' कहा गया है। इस तरह द्रव्यकायोत्सर्ग के चार भेद और भावकायोत्सर्ग के तीन भेद जानना। उपरोक्त ये छह प्रकार के अभ्यन्तर तप अभ्यन्तर कर्मों को तपाने वाले होने से '**अभ्यन्तर तप**' कहे गए हैं।

सर्वज्ञ विभु श्रीजिनेश्वर देवों ने निज कर्मक्षय के लिये इस तप की आराधना की है, इतना ही नहीं किन्तु जगत की जनता के समक्ष इसका उपदेश भी दिया है। इस तरह भेद और प्रभेद युक्त छहों प्रकार के बाह्य तप का तथा छहों प्रकार के अभ्यन्तर तप का स्वरूप समझना।

तप के इन बारह भेदों में क्रमशः प्रधानता भोगवते हैं। अनशन से ऊनोदरी प्रधान है, ऊनोदरी से वृत्तिसंक्षेप प्रधान है तथा वृत्तिसंक्षेप से रसत्याग प्रधान है। इस तरह आगे के भेद में भी उसकी प्रधानता जाननी। इस

प्रधानता का भान तप की सच्ची प्रेमी आत्माओं को ही होता है, अन्य को नहीं ।

तपपद के पचास गुण

श्री सिद्धचक्र–नवपद पैकी नवें तपपद के पचास गुण क्रमशः निम्नलिखित हैं–

(१) यावत्कथित तपगुण ।

(२) इत्वरकथिक तपगुण ।

(३) बाह्य-औनोदर्य तपगुण ।

(४) अभ्यन्तर औनोदर्य तपगुण ।

(५) द्रव्यतः वृत्तिसंक्षेप तपगुण ।

(६) क्षेत्रतः वृत्तिसंक्षेप तपगुण ।

(७) कालतः वृत्तिसंक्षेप तपगुण ।

(८) भावतः वृत्तिसंक्षेप तपगुण ।

(९) कायक्लेश तपगुण ।

(१०) रसत्याग तपगुण ।

(११) इन्द्रियकषाययोगविषयक संलीनता तपगुण ।

(१२) स्त्री-पशु-पण्डकादिवर्जितस्थानावस्थित तपगुण ।

(१३) आलोचन प्रायश्चित्त तपगुण ।

(१४) प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त तपगुण ।

(१५) मिश्र प्रायश्चित्त तपगुण ।

(१६) विवेक प्रायश्चित्त तपगुण ।

(१७) कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त तपगुण ।

(१८) तपः प्रायश्चित्त तपगुण ।

(१९) छेद प्रायश्चित्त तपगुण ।

(२०) मूल प्रायश्चित्त तपगुण ।

(२१) अनवस्थित प्रायश्चित्त तपगुण ।

(२२) पाराञ्चित प्रायश्चित्त तपगुण ।

(२३) ज्ञानविनयरूप तपगुण ।

(२४) दर्शनविनयरूप तपगुण ।

(२५) चारित्रविनयरूप तपगुण ।

(२६) मनोविनयरूप तपगुण ।

(२७) वचनविनयरूप तपगुण ।

(२८) कायविनयरूप तपगुण ।

(२९) उपचारविनयरूप तपगुण ।

(३०) आचार्यवैयावृत्य तपगुण ।

(३१) उपाध्यायवैयावृत्य तपगुण ।

(३२) साधुवैयावृत्य तपगुण ।

(३३) तपस्विवैयावृत्य तपगुण ।

(३४) लघुशिष्यादिवैयावृत्य तपगुण ।

(३५) ग्लानसाधुवैयावृत्य तपगुण ।

(३६) श्रमणोपासकवैयावृत्य तपगुण ।

(३७) संघवैयावृत्य तपगुण ।

(३८) कुलवैयावृत्य तपगुण ।

(३९) गणवैयावृत्य तपगुण ।

(४०) वाचना तपगुण ।

(४१) पृच्छना तपगुण ।

(४२) परावर्तना तपगुण ।

(४३) अनुप्रेक्षा तपगुण ।

(४४) धर्मकथा तपगुण ।

(४५) आर्त्तध्यान निवृत्ति तपगुण ।

(४६) रौद्रध्याननिवृत्ति तपगुण ।

(४७) धर्मध्यानचिन्तन तपगुण ।

(४८) शुक्लध्यानचिन्तन तपगुण ।

(४९) बाह्यकायोत्सर्ग तपगुण ।

(५०) अभ्यन्तरकायोत्सर्ग तपगुण ।

इस तरह तपपद के ये पचास गुण हैं । इन सभी को नमस्कार--नमन हो ।

श्री तपपद का आराधन

श्री तपपद के पचास गुण हैं, इसलिये तपपद का पचास प्रकार से आराधन होता है ।

अनशन तप के दो भेद हैं । ऊनोदरी तप के दो भेद हैं । वृत्तिसंक्षेप तप के चार भेद हैं । कायक्लेश तप का एक ही भेद है । रस तप का भी एक ही भेद है । संलीनता तप के दो भेद हैं । इन सब भेदों को मिलाने पर बाह्यतप बारह (२+२+४+१+१+२=१२) प्रकार का होता है ।

अभ्यन्तर तप के छह भेदों के सम्बन्ध में कहा है कि प्रायश्चित्त तप के दस भेद हैं। विनय तप के सात भेद हैं। वैयावच्च तप के दस भेद हैं। स्वाध्याय तप के पाँच भेद हैं। ध्यान तप के चार भेद हैं तथा कायोत्सर्ग तप के दो भेद हैं। इन सब भेदों को मिलाने पर अभ्यन्तर तप अड़तीस (१०+७+१०+५+४+२=३८) प्रकार का है। बाह्यतप बारह प्रकार का और अभ्यन्तर तप अड़तीस प्रकार का, इन दोनों को मिलाने पर तपपद के पचास (१२+३८) भेद होते हैं। इन सभी भेदों का आराधन करने के लिये आराधक महानुभाव तपपद का पचास प्रकार से विधिपूर्वक आराधन करता है।

श्री तपपद का वर्ण श्वेत क्यों ?

तप, आत्मा का गुण है। आत्मा के गुण श्वेत-उज्ज्वल होते हैं। जिस तरह आत्मा के गुण दर्शन-ज्ञान-चारित्र श्वेत-उज्ज्वल हैं उसी तरह आत्मा का तप गुण भी श्वेत-उज्ज्वल ही है।

तप द्वारा आत्मा का कर्मरूपी मैल दूर होता है। वह कर्म रूपी मैल श्याम वर्ण का है। उसको दूर करने के लिये श्वेत वर्ण की आवश्यकता है। इसलिये तप का वर्ण श्वेत कहा है। अथवा तप में शोधक शक्ति है। शोधक शक्ति का सम्पूर्ण विकास श्वेत-उज्ज्वल वर्ण से समझा

जाता है। इसलिये गुणजन्य श्वेतता-उज्ज्वलता तप में है। कर्मों का मैल श्याम है। श्याम के सामने श्वेत है। इसलिये तप गुण श्वेत-उज्ज्वल कहा गया है।

विश्व में श्वेतवर्ण मंगलरूप गिना जाता है। तप भी उत्कृष्ट मंगलरूप होने से श्वेत-उज्ज्वल वर्ण वाला माना गया है।

सम्यग् तप की उपमाएँ

शास्त्र में संयमपूर्वक सम्यग् तप की अनेक उपमाएँ प्रतिपादित की गई हैं। अनादि काल से संसार में परिभ्रमण करते हुए जीवों को मोक्ष-सुख पाने का उत्तम उपाय सद्धर्म है। सद्धर्म के दान, शील, तप और भाव ये चार प्रकार हैं। मोक्षमार्ग स्वरूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र धर्म हैं। अहिंसा, संयम और तप ये तीनों धर्म के स्वरूप हैं।

अहिंसा आहार है, संयम रुचि है और तप भोजन है। अहिंसा रूपी आहार मिलने पर भी तप रूपी भोजन नहीं करने वाली आत्मा तृप्ति नहीं पा सकती। इसलिये आत्मा को तप रूपी भोजन अवश्य ही करना चाहिये।

जगत में जैसे दान, धर्म का पाया है; शील धर्म का चणतर है, वैसे ही तप धर्म का शिखर है और भाव धर्म

की प्रतिष्ठा है। अन्य रीति से भी कहा है कि दान धर्म का मार्ग है, शील धर्म की गति है, तप धर्म की प्रगति है और भाव धर्म की प्राप्ति है।

(१) जगत में सद्धर्म का **'प्राण' तप** है।

(२) सचेतन-आत्मा का **'त्राण' तप** है।

(३) गुणीजनों के गुण की **'खान' तप** है।

(४) कर्म मूल को निर्मूल करने के लिये शस्त्ररूपे **'कृपाण' तप** है।

(५) भवव्याधि को सर्वथा मिटाने के लिये **'रामबाण इलाज' तप है।**

(६) आत्मा की **'इच्छा का निरोध'** तप है।

(७) जैनधर्म-जैनशासन की **'विजयपताकाध्वज'** तप है।

(८) जैनधर्म यानी जैनशासन में सद्ज्ञान यह **धूप सळी**, दर्शन यह **सौरभ-सुगन्ध** तथा संयम-तप यह धूप सळी के जल जाने से उत्पन्न होती हुई **फोरम** है।

(९) विश्व में स्व या पर के श्रेय का **'प्रतीक'** तप है।

(१०) कर्म निर्जरा का **'अनुपम साधन' तप** है।

(११) देह की तथा आहार की ममता को समाप्त करने के लिये **'महान् शस्त्र'** तप है ।

(१२) उद्यापन यानी उजमणा तपधर्म का ही होता है, इसलिये जगत में **'श्रेष्ठ-उत्तम' तप** है ।

(१३) शुभ साधना-आराधना का **'बीज-ओज'** तप है ।

(१४) कर्म-मल को दूर करने के लिये **'जल तुल्य'** अर्थात् **पानी के समान तप** है ।

(१५) विश्वभर का **'महान् औषध'** तप है ।

(१६) जगत में सूर्य के समान अज्ञानरूपी अन्धकार को शमन करने से ज्ञानरूपी नेत्र को निर्मल करने वाला तथा तत्त्वातत्त्व की जानकारी दिखाने वाला तप है ।

(१७) सम्यग्दृष्टियों में **'शुभ शिरोमणि'** तप है ।

(१८) आलम में अपूर्व कोटि का **धर्म** तप है ।

(१९) उत्कृष्ट **मंगलरूप** तथा **भावमंगलरूप** भी तप है ।

(२०) कर्मरूपी वृक्ष को मूल से उखाड़ने वाले **'गजराज-हाथी'** के समान **तप** है ।

(२१) इन्द्रियरूपी उन्मत्त अश्वों को काबू में अर्थात् वश में रखने के लिये **'लगाम' के समान तप** है ।

(२२) अपूर्व **'कल्पवृक्ष' के समान** तप है। (तप का मूल संतोष है, देवेन्द्र और नरेन्द्र आदि की पदवी तपरूपी कल्पवृक्ष के पुष्प-फूल हैं तथा मोक्ष-प्राप्ति, तपरूपी कल्पवृक्ष का फल है।)

(२३) समस्त लक्ष्मी का बिना सांकल का **'बन्धन'** तप है।

(२४) पापरूपी प्रेत-भूत को दूर करने के लिये अक्षर रहित **'रक्षामन्त्र'** तप है।

(२५) पूर्व उपार्जन किये हुए कर्मरूपी पर्वत को भेदने के लिये **'वज्र' के समान तप** है।

(२६) कामदेवरूपी दावानल की ज्वाला समूह को बुझाने के लिये **'जल-पानी' के तुल्य तप** है।

(२७) लब्धि और लक्ष्मीरूपी लता-वेलड़ी का **'मूल' तप** है।

(२८) विघ्नरूपी तिमिर-समूह का विनाश करने में दिन समान **तप** है।

ये सब तप की उपमाएँ प्रतिपादित की गई हैं।

तप करने से लाभ

श्री जैनशासन में **'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि**

मोक्षमार्गः' इस रत्नत्रयी की आराधना से ही भव्यात्मा को मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस रत्नत्रयी में तीसरे चारित्र पद में तप का समावेश हो जाता है, तो भी श्रीसिद्धचक्र के नवपद में तप को स्वतन्त्र पृथग् पद दिया है। कारण कि तप से ही संयम-चारित्र शोभता है; इतना ही नहीं किन्तु तप से ही अति निबिड़ और निकाचित कर्मों का भी क्षय-विनाश होता है।

जैसे आत्मा को सम्यक्त्वयुक्त ज्ञान लाभकारक होता है, सम्यग्ज्ञान युक्त संयम-चारित्र लाभकारक होता है, वैसे ही आत्मा को सम्यग्-चारित्र सहित तप लाभकारक एवं फल-प्रापक होता है। चारित्र बिना का तप, ज्ञान बिना का चारित्र तथा सम्यक्त्व बिना का ज्ञान, चारित्र एवं तप ये तीनों निरर्थक हैं। इसलिये चारित्र और तप को अभेद मानकर चारित्र में तप का समावेश किया है। संयम-चारित्रवन्त व्यक्ति नियम से छह प्रकार के बाह्य तप और छह प्रकार के अभ्यन्तर तप दोनों में से किसी-न-किसी तप में होता है।

आत्मा में आते हुए नूतन-नवे कर्मों को रोकने वाला-अटकाने वाला चारित्र है, और भूतकाल में बँधे हुए कर्मों को जलाकर भस्मीभूत करने वाला तप है। तप की साधना-आराधना से और उसके प्रभाव से साधक को-आराधक को निम्नलिखित वस्तुओं की प्राप्ति होती है—

(१) आमर्षौषधि आदि विविध प्रकार की लब्धियाँ तप से प्राप्त होती हैं।

(२) अणिमादि अष्ट महा सिद्धियाँ तप से प्राप्त होती हैं तथा नवनिधि-निधान भी तप से प्रगट होते हैं।

(३) अनेक प्रकार के मन्त्र तप से सिद्ध होते हैं।

(४) विविध विद्याएँ तप से वश में होती हैं।

(५) तप से जिननामकर्म-तीर्थंकर पदवी, चक्रवर्त्ती पदवी, बलदेव, वासुदेव तथा इन्द्र-अहमिन्द्रपना आदि विश्व के सभी महान् स्थान प्राप्त होते हैं।

(६) तप से भव-संसार परिभ्रमण की अभिवृद्धि अटक जाती है।

(७) तप से आत्मा मोक्ष के सम्मुख हो जाता है।

(८) तप से अति निबिड़ और निकाचित कर्मों का भी विलयीकरण-क्षय हो जाता है।

(९) तप से कषाय, विषय और आहार आदि कम हो जाते हैं। क्रमशः उनका विनाश हो जाता है।

(१०) तप से समता, संवर और निर्जरा की अभिवृद्धि होती है।

(११) तप से शक्ति-ताकत बढ़ती है और आत्मा में दृढ़ इच्छा शक्ति (विल पावर) का विकास होता है।

(१२) तप से आत्मा परमात्मा बनता है।

(१३) तप से आत्मा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान एवं केवलज्ञान भी प्राप्त करता है।

(१४) तप से आत्मा की पौद्गलिक भावना विनष्ट हो जाती है तथा आत्मरमणता उत्पन्न होती है।

(१५) तप से स्पर्शेन्द्रियादि पाँचों इन्द्रियाँ काबू में आती है।

(१६) तप से आत्मा को ऊर्ध्वीकरण की अद्भुत शक्ति प्राप्त होती है।

(१७) तप से जगत में प्रत्येक पदस्थान का, प्रत्येक शक्ति-सामर्थ्य का तथा प्रत्येक प्रतिष्ठा का शुभागमन होता है।

(१८) तप से इष्ट की सिद्धि होती है और अपना कार्य निर्विघ्न सफल होता है। विघ्नों की उपशान्ति हो जाती है तथा उपसर्ग-उपद्रव आदि का विनाश होता है।

(१९) जैनशासन का लोकोत्तर तप आत्मा को तपाता है, इतना ही नहीं किन्तु आत्मा के असंख्यात प्रदेशों पर

लगे हुए कर्म-रज के परमाणुओं को सदन्तर दूर करता है अर्थात् उखाड़ कर फेंक देता है।

(२०) १. **अनशन तप से**—आहार संज्ञा पर काबू आता है और अंते साधक-आराधक को **अनाहारी पद** प्राप्त होता है।

२. **ऊनोदरी तप से**—आहार की गृद्धि-आसक्ति घट जाती है। इससे देह-शरीर में आरोग्य स्फूर्ति रहती है।

३. **वृत्तिसंक्षेप तप से**—खाने की विविध वृत्तियों पर अंकुश आ जाता है।

४. **रसत्याग तप से**—स्वाद वाली चीज खाने की कुटेव धीरे-धीरे दूर चली जाती है। स्वादवृत्ति को जीतने के लिये यह तप है।

५. **कायक्लेश तप से**—दुःख-कष्ट को सहर्ष सहन करने की शक्ति आ जाती है। सहिष्णुता गुण केलवने के लिये यह तप है।

६. **संलीनता तप से**—अपने जीवन में रहा हुआ अस्थिरता रूपी शल्य दूर हो जाता है। स्थिरता गुण आ जाता है।

७. **प्रायश्चित्त तप से**—साधक अपने जीवन में किये हुए

पापों, दोषों, भूलों इत्यादि का सुयोग्य गम्भीर ज्ञानी गुरु महाराज के पास प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध-पवित्र होते है।

८. **विनय तप से**—अहंभाव यानी मान-अभिमान का विनाश होता है।

९. **वैयावच्च तप से**—स्वार्थवृत्ति पर अंकुश आता है, और परोपकारवृत्ति जागृत होती है। आत्मा सेवा भक्ति बहुमान से सर्वोच्च स्थिति प्राप्त कर सकता है।

१०. **स्वाध्याय तप से**—कर्म की निर्जरा होती है, वैराग्य और ज्ञान की वृद्धि होती है, मन, वचन और काया की एकाग्रता बढ़ती है, मन की शुद्धि होती है तथा ध्यानयोग और समतायोग सिद्ध कर सकते हैं। इसलिये शास्त्र में कहा है कि—

'स्वाध्याय समो तवो नत्थि'।

अर्थात् स्वाध्याय के समान अन्य श्रेष्ठ तप नहीं है।

११. **ध्यान तप से**—चित्त की चंचलता धीरे-धीरे चली जाती है। कुसंकल्प-कुविकल्प का जोर भी धीरे-धीरे घटता है।

१२. **कायोत्सर्ग तप से**—काया (देह-शरीर) पर का ममत्व घटता है। सुख-दुःख इत्यादि द्वन्द्वों पर विजय प्राप्त

करने का सत्त्व खिलता है तथा तितिक्षा गुण की प्राप्ति होती है।

सम्यग्तप की आराधना से उपरोक्त यह सब लाभ सुलभ होता है।

श्री तपपद का नमस्कारात्मक वर्णन

"**श्रीनवपदप्रकरण**" ग्रन्थ में श्रीनवपद पैकी नवम श्री तपपद को नमस्कार करते हुए इस प्रकार वर्णन किया गया है कि–

बाहिरमब्भितरयं, बारसभेयं जहुत्तरगुणं जं।
वन्निज्जइ जिणसमये, तं तवपयमेस वंदामि ।। ९३ ।।

क्रमशः अधिकाधिक गुणकारी बाह्य और अभ्यन्तर भेद द्वारा जिनागम में जो बारह प्रकार का तप कहा गया है, उस **तपपद** को मैं आदर से वन्दन करता हूँ ।। ९३ ।।

तब्भवसिद्धि जाणं,-तएहिं सिरिरिसहनाहपमुहेहिं।
तित्थयरेहिं कयं जं, तं तवपयमेस वंदामि ।। ९४ ।।

तद्भव सिद्धि जानते हुए भी श्री ऋषभदेव आदि तीर्थंकर भगवन्तों ने जिसका सेवन किया है उस **तपपद** को मैं वन्दन करता हूँ ।। ९४ ।।

जेण खमासहिएणं, कएण कम्माणमवि निकायाणं ।
जायइ खओ खणेणं, तं तवपयमेस वंदामि ।। ९५ ।।

जिस (तप) के समता पूर्वक सेवन करने से निकाचित कर्म का भी क्षण मात्र में क्षय होता है, उस **तपपद** को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ९५ ।।

जेणचिय जलणेणव, जीवसुवन्नाओ कम्मकिट्टाइ ।
फिट्टंति तक्खणं चिय, तं तवपयमेस वंदामि ।। ९६ ।।

जिस तरह अग्नि द्वारा सुवर्ण से किट्टी आदि तत्काल फिट्टकर पृथक् हो जाते हैं उसी तरह जिसके द्वारा जीव से कर्म-मल फिट्टकर पृथक् हो जाता है ऐसे **तपपद** को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ९६ ।।

आसंसाइविरहिए, जंमि कए कम्मनिज्जरट्ठाए ।
हुंति महासिद्धिओ, तं तवपयमेस वंदामि ।। ९७ ।।

कर्मनिर्जरा के लिये जिसका आशंसारहित सेवन करते हुए महासिद्धियों की प्राप्ति होती है ऐसे **तपपद** को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ९७ ।।

जस्स पसाएण धुवं, हवंति नाणाविहाओ लद्धीओ ।
आमोसहिपमुहाओ, तं तवपयमेस वंदामि ।। ९८ ।।

कप्पतरुस्सव जस्से,-रिसाओ सुरनरवरानुरिद्धीओ ।
कुसुमाइं फलं च सिवं, तं तवपयमेस वंदामि ।। ९९ ।।

कल्पवृक्ष की तरह सुरवर और नरवर सम्बन्धी आनुषंगिक सम्पदा रूप जिसके पुष्प हैं तथा जिसके पसाय से 'आमोसही' आदि प्रमुख अनेक लब्धियाँ अवश्य ही प्रगट होती हैं ऐसे **तपपद** को मैं वन्दन-नमस्कार करता हूँ ।। ९८-९९ ।।

अच्चंतमसज्झाइं, लीला इव सव्वलोअकज्जाइं ।
सेज्झंति भत्ति जेणं, तं तवपयमेस वंदामि ।। १०० ।।

सर्व लोक के अत्यन्त असाध्य कार्य भी जिसके द्वारा आसानी से सिद्ध हो जाते हैं, ऐसे **तपपद** को मैं वन्दन-नमन करता हूँ ।। १०० ।।

दहिदुव्वयाइमंगल,-पयथ्थसथ्थंमि मंगलं पढमं ।
जं वन्निजइ लोए, तं तवपयमेस वंदामि ।। १०१ ।।

दधि-दूर्वादिक मांगलिक पदार्थों में जो लोक में प्रथम मंगलरूप गाया गया है, ऐसे तप को मैं प्रणाम करता हूँ ।। १०१ ।।

इस तरह श्री तपपद का नमस्कारात्मक वर्णन किया है ।

श्री तपपद की आराधना का उदाहरण

(१) श्रीसिद्धचक्र-नवपद पैकी नवें श्री तपपद की

आराधना से श्रीवीरमती के पूर्व भव में आराधना करने वाली **श्रीदमयन्ती** प्रकर्ष पुण्यवती हुई ।

(२) श्री कनककेतु महाराजा श्री तपपद की आराधना करके, आत्मा का कार्य साधकर तथा श्रेष्ठ तीर्थंकरपद का अनुभव कर सौभाग्यलक्ष्मी-मोक्षलक्ष्मी के महाराज बने ।

तपपद की आराधना के ऐसे अनेक उदाहरण-दृष्टान्त शास्त्रों में आते हैं ।

श्री तपपद-आराधक की भावना

विश्व में परिभ्रमण करने वाले संसारी जीवों के आत्मप्रदेशों के साथ अनंत कर्म अनादि काल से लगे हुए हैं। उन कर्म पुद्गलों को तपाकर आत्मप्रदेशों से पृथग्-अलग पाड़ने का कार्य तप करता है । इसलिये इसको निर्जरा तत्त्व भी कहा जाता है । तप के बाह्य और अभ्यन्तर दो भेद हैं । उसमें अनशनादि छह प्रकार का बाह्य तप और प्रायश्चित्तादि छह प्रकार का अभ्यन्तर तप, दोनों मिलकर तप के बारह भेद होते हैं ।

आराधक को इस तप की आराधना विधिपूर्वक करनी चाहिए । जिसे करने से अपने को दुर्ध्यान न हो तथा अपनी शक्ति क्षीण न हो, उस तरह इस तपपद की आराधना

करने की है। इस लोक के सुख, संपत्ति और यश-कीर्त्ति की अभिलाषा-इच्छा बिना, नौ प्रकार के नियाणा बिना, समता-समभाव पूर्वक तप करने से ही उसकी सही रूप में आराधना होती है, तभी आत्मा को आत्मिक विकास आदि का सुन्दर लाभ मिलता है।

श्री तपपद की आराधना करने वाला आराधक इस तरह न माने कि अरेरे! मुझसे भूखा और प्यासा किस तरह रहा जाए? मेरी वृत्तियों पर काबू किस तरह आ सके? काय-कष्ट किस तरह सहा जाय? पापों का प्रकाशन किस तरह हो सके? इत्यादि अनेक प्रकार की विचारधारा से मुजाइ जाय और कर्म से कंटाळ गया हो। उसको अन्तर से यह लगना चाहिये कि 'कर्म का सर्वथा विनाश करने के लिये विश्व में तीव्र शस्त्र समान तप है।'

बाह्य एवं अभ्यन्तर तप को अपनाकर आगे बढ़ता हुआ मैं अपने कर्मों को सर्वथा दूर करने में समर्थ बनूं। कोई भी तप मेरे लिये सुकर-सुलभ एवं सुखकर है। ऐसी भावना संसारवर्त्ती कोई भी आत्मा अहर्निश रखकर उसे क्रियान्वित कर क्रमशः संयम साधना द्वारा आगे बढ़े, और सकल कर्म का क्षय कर शाश्वत सुख रूप शाश्वत-मोक्ष-स्थान को प्राप्त करे।

हे संसारवर्त्ती जीवो! आत्मविकास-आत्मोन्नति कारक

सच्चो साधना-आराधना में आप सभी आगे बढ़ो !, तपाग्नि द्वारा कर्मकाष्ठ को जलाकर-भस्मीभूत करो ! और सम्पूर्ण सुखमय सिद्धिपद-मुक्तिपद के स्वामी बनो ।

श्री तपपद का प्रयोजन

चित्त की समाधि हो, समस्त कर्मों का क्षय हो, अपनी आत्मा के सभी गुण प्रगट हों तथा मोक्ष की प्राप्ति हो । यही तप-तपश्चर्या का मुख्य प्रयोजन है । इस भावना से जो आत्मा तप-तपश्चर्या करती है वही अल्प काल में या दीर्घ काल में सकल कर्मों का क्षय करके मोक्ष के अव्याबाध अनन्त सुख को प्राप्त करती है ।

श्री नवपद नमस्कारात्मक वर्णन

श्री नवपद का नमस्कारात्मक वर्णन क्रमशः निम्न-लिखित है —

१ श्रीअरिहन्तपद

उत्पन्न हुए केवलज्ञान रूपी अपूर्व तेज द्वारा तेजस्वी, छत्र तथा चामर आदि आठ प्रातिहार्यों से युक्त ऐसे उत्तम सिंहासन पर बिराजमान हुए, उत्तम प्रकार के धर्मोपदेश द्वारा सज्जनों को आनन्द उत्पन्न करने वाले, ऐसे **'श्रीअरिहन्त भगवन्तों'** को मेरा सर्वदा नमस्कार हो ।

(२) श्रीसिद्धपद

परमानन्द-मोक्षलक्ष्मी के निवास रूप अनन्त चतुष्टय से समलंकृत ऐसे **'श्रीसिद्ध भगवन्तों'** को मेरा नमस्कार हो।

(३) श्रीआचार्यपद

कदाग्रहों को दूर करने वाले और सूर्य समान तेज वाले ऐसे **'श्रीआचार्य भगवन्तों'** को मेरा नमस्कार हो।

(४) श्रीउपाध्यायपद

सूत्र और अर्थ का विस्तार पमाडने में तत्पर तथा गण-समुदाय को शोभाने में गजराज-हाथी के समान ऐसे **'श्रीउपाध्याय भगवन्तों'** को मेरा नमस्कार हो।

(५) श्रीसाधुपद

सम्यग् प्रकारे संयम-चारित्र की साधना करने वाले, शुद्ध दया और दम इत्यादि गुणों से पवित्र ऐसे **'श्रीसाधु भगवन्तों'** को मेरा नमस्कार हो।

(६) श्रीसम्यग्दर्शनपद

श्रीजिनेश्वर-तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा प्ररूपित जीवा-जीवादि नौ तत्त्वों पर श्रद्धा रूप निर्मल **'श्रीसम्यग्दर्शन'** गुण

को मेरा नमस्कार हो ।

(७) श्रीसम्यग्ज्ञानपद

अज्ञान के समूह रूप तिमिर-अन्धकार को दूर करने वाले तथा तत्त्वों को प्रकाशित करने में सूर्य के सदृश ऐसे **'श्रीसम्यग्ज्ञान'** को मेरा नमस्कार हो ।

(८) श्रीसम्यग्चारित्रपद

अखण्ड सत्क्रिया की आराधनामय वीर्य वाले ऐसे **'श्रीसम्यग्चारित्र'** को मेरा नमस्कार हो ।

(९) श्रीसम्यग्तपपद

कर्म रूपी वृक्ष को उखाड़ने में गजराज-हाथी के समान ऐसे **'श्रीसम्यग्तपपद'** को मेरा नमस्कार हो ।

इस तरह नव पदों से सिद्ध शोभा को प्राप्त हुए अर्थात् नवपदमय, लब्धिपदों तथा विद्यादेवियों से समृद्ध, स्वरों और वर्गों से प्रगट शोभा वाले, ह्रीँ अक्षर की तीन रेखाओं से समलंकृत, दिक्पाल तथा अन्य देव-देवियों द्वारा प्रधान, पृथ्वी पीठ पर आलेखन हो सके ऐसे, तीन जगत को जीतने के लिये चक्रवर्त्ती के चक्ररत्न समान ऐसे **'श्रीसिद्धचक्र भगवन्त'** को मैं भावपूर्वक नमस्कार करता हूँ ।

उत्तम भावनाओं से पूर्ण ऐसे स्तवन के द्वारा श्रीश्रीपाल और मयणासुन्दरी ने भावपूर्वक मधुर स्वर से श्रीजिनेश्वर भगवन्त के सन्मुख ललकारा था।

श्रीसिद्धचक्र-नवपद का समूहरूपे वर्ण विचार

आत्मा सर्वदा अविनाशी, अजर और अमर है। उसको न शस्त्र भेद सकता है, न अग्नि जलाकर-भस्मीभूत कर सकती है। यही आत्मा परमात्मा बनने के लिये सद्धर्म की शरण ग्रहण करता है और उसके आराधन में मग्न रहता है। धर्म के प्रशस्त आलम्बन अनेक हैं। उसमें श्रीसिद्धचक्र-नवपद का आलम्बन प्रशस्ततम सर्वोत्तम सर्वश्रेष्ठ है।

श्रीसिद्धचक्र-नवपद के समूहरूपे वर्ण विचार के सम्बन्ध में एक अन्तरंग विकास की कल्पना की गई है। वह इस तरह है—

आत्मा एक उत्तम क्षेत्र है। उसमें यथाप्रवृत्ति आदि करणों द्वारा खेडाण होता है। उसमें **दर्शनपद रूपी** बीज—जो श्वेत निर्मल है, **ज्ञानपद रूपी** शुभ प्रकाश में बोया हुआ है। **संयम चारित्र पद रूपी** दृढ़ बाड़ ने उसको सुरक्षित किया है तथा मलिन करने वाले दुष्ट तत्त्वों को **तपपद रूपी**

अग्नि ने जलाकर भस्मीभूत कर दिया है। पीछे जहाँ **साधु-मुनिपद रूपी** श्याम मेघ-बरसात बरसता रहे वहाँ पर वाचक **उपाध्यायपद रूपी** नील-लीले-हरे वर्ण का अंकुरा प्रगटे, क्रमशः **आचार्यपद रूपी** पीत-पीले पुष्प आ जावें, पश्चाद् अरिहन्तपद रूपी श्वेत-उज्ज्वल ऐसे प्रथम फल उत्पन्न होवे तथा अन्त में परिपक्व रक्त-लाल सिद्धपद स्वरूप अन्तिम वास्तविक स्वरूप में फल भी प्राप्त होवे। इससे श्रीसिद्धचक्र-नवपद के प्रत्येक पद के वर्ण का खयाल आ जाता है। अन्य भी कल्पना निम्नलिखित रूप में की गई है—

श्रीपञ्चपरमेष्ठी पैकी पंचम पद साधुपद है। साधु धर्म रूपी कृष्ण-श्याम भूमि में दर्शन, ज्ञान, चारित्र एवं तप इन चारों रूपी श्वेत-उज्ज्वल गुण बीज बोये हैं। उनको सद्भावना रूपी जल के सिंचन द्वारा क्रमशः उपाध्यायपद रूप नील-लीला अंकुर प्रकटे, आचार्यपद रूप पीले पुष्प आवें, अरिहन्तपद रूप प्रथम फल निपजे तथा सिद्धपद स्वरूप चरम परिपक्व फल प्राप्त होवे। इस अन्तरंग कल्पना से भी वर्णों की समझ मिल जाती है।

इस प्रकार की अन्य कल्पनाएँ भी वर्ण की घटनाओं के लिये घटा सकते हैं।

श्रीनवपदजी और उनके वर्ण

श्रीसिद्धचक्र के नव पद हैं। प्रत्येक पद का वर्ण निम्न-लिखित अनुसार है—

पद	वर्ण
(१) श्रीअरिहन्तपद	श्वेतवर्ण
(२) श्रीसिद्धपद	रक्तवर्ण
(३) श्रीआचार्यपद	पीतवर्ण
(४) श्रीउपाध्यायपद	नीलवर्ण
(५) श्रीसाधुपद	श्यामवर्ण
(६) श्रीसम्यग्दर्शनपद	श्वेतवर्ण
(७) श्रीसम्यग्ज्ञानपद	श्वेतवर्ण
(८) श्रीसम्यक्चारित्रपद	श्वेतवर्ण
(९) श्रीसम्यक्तपपद	श्वेतवर्ण

इस तरह श्रीसिद्धचक्र के नव पदों के नाम और उनके वर्ण कहे हैं।

ध्याता-साधक की अपेक्षा से नवपद के वर्णों की कल्पना की गई है। वास्तव में तो ये नवपद वर्ण, गन्ध और स्पर्श से रहित हैं। पूर्वाचार्यों-ज्ञानी महापुरुषों ने यह कल्पना भी हेतुपूर्वक की है। इसलिये यह कल्पना ग्राह्य एवं व्यापक बनी है।

वर्त्तमान युग में आधुनिक अमेरिकन मानस-शास्त्रियों ने भी मानसविद्युत्किरण यन्त्र द्वारा मन के विचारों, आकारों एवं वर्णों का अनुसन्धान किया है। जो नवपद के वर्णों से साम्यता रखता है।

ध्यान की प्रक्रिया में प्रारम्भ में ध्यान करने वाले व्यक्ति को अपनी आँखों को बन्द कर अन्तर्मुख होते हुए, अपने हृदय में अष्टदल कमल का चिन्तवन करते हुए प्रथम श्यामवर्ण भासता है। पश्चात् धीरे-धीरे क्रमशः नीलवर्ण, पीछे पीतवर्ण, बाद में श्वेतवर्ण भासता है। अन्त में तेज के गोले की माफिक रक्तवर्ण ध्यानगोचर होता है। ध्यान के दीर्घ अभ्यास द्वारा एकदम रिक्तवर्ण मनोग्राह्य हो सकता है।

पंचपरमेष्ठी पैकी पंचम पद साधु-मुनि का है। साधु-पद से अरिहन्तपद पर्यन्त का ध्यान क्रमशः श्याम-कृष्णवर्ण से श्वेत-शुक्ल वर्ण की कल्पना द्वारा होता है। इस तरह साधक मनुष्य पंचम साधुपद से प्रारम्भ करके सिद्धपद के ध्यान तक पहुँच सकता है। इसलिये पूर्वाचार्य भगवन्तों ने श्रीअरिहन्तादि पंचपरमेष्ठियों तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र एवं सम्यक्तप इनका अनुभव करने वाले अनुपम विशिष्ट व्यक्तियों के ध्यान के लिये क्रमशः भिन्न-भिन्न वर्णों की कल्पना की है। इस तरह ध्यान की मनोवृत्ति का वर्णों के साथ समन्वय है।

श्री नवपद की संकलना

श्रीसिद्धचक्र के **नौ पद** हैं। इन नव पदों में प्रारम्भ के **अरिहन्त** और **सिद्ध** ये दोनों पद **देवतत्त्व** में आते हैं। पीछे के **आचार्य, उपाध्याय** और **साधु** ये तीनों पद **गुरुतत्त्व** में आते हैं तथा अन्तिम **दर्शन, ज्ञान** और **चारित्र** ये तीनों पद **धर्मतत्त्व** में आते हैं।

नवपद की विधिपूर्वक सुन्दर साधना-आराधना के प्रभाव से साधक-आराधक दुस्तर भवसिन्धु यानी संसार-सागर को भी आसानी से शीघ्र तिर जाता है। इतना ही नहीं, किन्तु अनादि काल से लगे हुए कर्मों के बन्धन से भी सर्वथा मुक्त होकर मुक्ति-मोक्ष को पा जाता है। सादि अनंत स्थिति में सर्वदा वहाँ पर रहता है तथा शाश्वत अनंत सुख का भागी बनता है।

अनंत उपकारी सर्वज्ञ विभु श्रीतीर्थंकर भगवन्तों द्वारा प्रतिपादित श्रीसिद्धचक्र के नव पदों की संकलना निम्न-लिखित प्रकार से है—

संसार में परिभ्रमण करने वाले बुद्धिशाली भव्यात्माओं का मुख्य साध्य कर्मबन्धन से मुक्त होना रहता है। श्रीनवपद पैकी पहले पद में बिराजे हुए श्रीअरिहन्त भगवन्तों का और दूसरे पद में बिराजे हुए सिद्ध भगवन्तों

का इसी साध्य में समावेश होता है।

श्रीअरिहन्त भगवन्त मोक्षमार्ग के स्थापक एवं प्रदर्शक होने से उनकी स्थापना नवपद के मध्य भाग में की गई है। श्री सिद्ध भगवन्त निज ज्ञानावरणीयादि अष्ट कर्मों के बन्धन से सर्वथा मुक्त होकर लोक के अग्र भाग में सादि अनन्त स्थिति में सदा काल रहे हैं। सच्चे शाश्वते सुख के अर्थी प्राणी मात्र के लिये साध्य सिद्ध पद हो है। सद्धर्म के सभी अनुष्ठान सिद्ध पद प्राप्त करने के लिये हैं। श्रीअरिहन्त परमात्मा भी अन्त में तो सिद्ध पद अवश्य प्राप्त करते ही हैं। इसलिये देवतत्त्व तरीके **श्रीअरिहन्तपद** तथा **श्रीसिद्धपद** ये दोनों पद विश्व में आत्मा के ध्येय रूप या साध्य बिन्दु रूप हैं।

अब गुरुतत्त्व तरीके आचार्यपद, उपाध्यायपद एवं साधुपद ये तीनों साधक पद हैं। साध्य की सिद्धि के लिये जिन्होंने सांसारिक सर्व सम्बन्धों से तथा समस्त सावद्य व्यापारों से अपने आपको मुक्त कर लिया है ऐसे भव्यात्माओं की ही इस श्रीसिद्धचक्र के नवपद में साधक तरीके गणना की गई है।

इन तीन साधक पदों में प्रथम स्थान **श्री आचार्य भगवन्त** का है। कारण कि श्रीअरिहन्त-तीर्थंकर भगवन्त के विरह काल में शासन के नायक, शासन के प्रतिनिधि

एवं शासन के संरक्षक श्री आचार्य भगवन्त ही हैं। जिस तरह राजा अहर्निश अपनी प्रजा की चिन्ता करता है और प्रजा का संरक्षण भी करता है, उसी तरह श्री आचार्य भगवन्त भी जैनधर्म-जैनशासन की अहर्निश चिन्ता करते हैं, और उन्मार्ग से भव्यजीवों का संरक्षण भी करते हैं। इसलिये श्रीअरिहन्त भगवन्त तथा श्रीसिद्ध भगवन्त के पश्चात् शासन के सम्राट् तरीके आचार्य भगवन्त का ही क्रम है। तीन साधक पदों में यह मुख्य पद है।

साधक पद में दूसरा स्थान **श्रीउपाध्यायजी महाराज** का है। इनका मुख्य कार्य आगम के अंग एवं उपांग आदि सूत्रार्थ का अध्ययन करना और शिष्यों को करवाकर उन्हें विनयादि सिखाने का है।

साधक पद में तीसरा स्थान **श्रीसाधु महाराज** का है। साधक की प्राथमिक अवस्था साधु-मुनि पद है। वह अप्रमत्त होकर और ममत्व का त्याग कर पंच महाव्रतों के पालन में सतत प्रयत्नशील होता है।

इस तरह गुरुतत्त्व में क्रमशः आचार्य, उपाध्याय एवं साधु-मुनि की गणना होती है। ये तीनों साधक साधन प्राप्त कर साध्य को सिद्ध कर सकते हैं। इसलिये साधन पद में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र एवं सम्यक्-तप इन चारों का समावेश होता है। साधनरूप इन

सम्यग्दर्शनादि चारों पदों में प्रथम स्थान **दर्शनपद** का है। जिनभाषित तत्त्वों पर अटूट श्रद्धा रखना सो दर्शन है। श्रद्धापूर्वक की गई प्रत्येक क्रिया साधक को फलवती होती है। सभी गुणों में यह दर्शन गुण एका (एकड़ा) के समान है। उसके बिना अन्य सर्व गुण एका बिना का शून्य-बिन्दु-वत् है।

साधन पदों में दूसरा स्थान **ज्ञानपद** का है। सुदेव, सुगुरु और सुधर्म की सच्ची पहिचान कराने वाला सम्यग् ज्ञान है। मोक्षमार्ग को प्रकाशित करने वाला यही सम्यग् ज्ञान है। प्राणी मात्र को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ज्ञान की अति आवश्यकता रहती है। ज्ञान दीपक के समान स्व-पर प्रकाशक है।

साधन पदों में ज्ञानपद के पश्चात् तीसरा स्थान **चारित्रपद** का है। सम्यग्ज्ञान द्वारा पहिचाने हुए मोक्षमार्ग के साधनरूप अनेक सम्यक् अनुष्ठानों का आचरण करना वह संयम-चारित्र ही है। यह दर्शन गुण के संरक्षक (कोट के समान) का कार्य करता है।

साधन पदों में चारित्रपद के बाद चौथा स्थान **तपपद** का है। यह इन्द्रिय रूपी अश्वों को काबू में रखता है तथा कर्म रूपी काष्ठ को जलाकर आत्मा को शुद्ध बनाता है। श्रीसिद्धचक्र के नव पदों में क्रमशः यह तपपद अन्तिम

होने पर भी महत्त्व में सर्वोपरि है। कारण यही है कि इस सम्यक् तप के बिना आत्मा पंचपरमेष्ठी पदों में से एक भी पद प्राप्त नहीं कर सकता। यही इसका महत्त्व है। नवपद में प्रारम्भ के श्रीअरिहन्तादि पाँच धर्मी एवं गुणी पद हैं तथा शेष श्रीदर्शनादि चार धर्म एवं गुण पद हैं। सब मिलकर श्रीसिद्धचक्र के इन नवपदों का नौ अंक अक्षय-अखण्डित है।

श्रीनवपद आराधना का फल

श्रीसिद्धचक्र के नवपद हैं। इन पदों का माहात्म्य इस प्रकार है। श्री नवपद का यथार्थ विधिपूर्वक आराधन करने वाला आराधक आत्मा उत्कृष्ट नवमे भव में अवश्य संयम साधना द्वारा सकल कर्मों का क्षय कर सिद्धिपद-मोक्षपद-परमपद अवश्यमेव प्राप्त करता है। बीच में देव और मनुष्य के सुन्दर सामग्रियों युक्त भव पाता है तथा विश्व में उत्तम यश और कीर्त्ति भी प्राप्त करता है।

श्रीनवपदजी के प्रभाव से वाञ्छित वस्तु (फल) की प्राप्ति

श्रीसिद्धचक्र-नवपदजी महाराज का पुण्य प्रभाव अद्वितीय, अनन्य और अद्भुत है; चिन्तामणिरत्न, कल्पवृक्ष, कामघट और कामधेनु से भी अधिक है। इनकी विधिपूर्वक

आराधना करने वाला आराधक आत्मा लौकिक और लोकोत्तर उभय वस्तु-फल को प्राप्त कर सकता है। इस सम्बन्ध में **'श्रीसिद्धचक्राराधनफलचतुर्विंशतिका'** में कहा है कि—

एवं श्रीसिद्धचक्रस्या-राधको विधिसाधकः।
सिद्धाख्योऽसौ महामन्त्र-यन्त्रः प्राप्नोति वाञ्छितम् ॥१॥

धनार्थी धनमाप्नोति, पदार्थी लभते पदम्।
भार्यार्थी लभते भार्यां, पुत्रार्थी लभते सुतान् ॥ २ ॥

सौभाग्यार्थी च सौभाग्यं, गौरवार्थी च गौरवम्।
राज्यार्थी च महाराज्यं, लभतेऽस्यैव तुष्टितः ॥ ३ ॥

एतत् तपोविधातारः, पुमांसः स्युर्महर्द्धयः।
सुर-खेचरो-राजानो, रूपसौभाग्यशालिनः ॥ ४ ॥

महामन्त्र-यन्त्रमय श्रीसिद्धचक्रजी की विधिपूर्वक आराधना करने वाले आराधक आत्मा को वांछित वस्तु (फल) की प्राप्ति होती है। इनकी प्रसन्नता से धन के अर्थी को धन मिलता है। पद के अर्थी को पद मिलता है। स्त्री के अर्थी को स्त्री मिलती है। पुत्र के अर्थी को पुत्र मिलता है। सौभाग्य के अर्थी को सौभाग्य प्राप्त होता है। गौरव की इच्छा वाले को गौरव मिलता है। राज्य की इच्छा वाले को विशाल राज्य मिलता है। इस तप को करने

वाले मनुष्य महान्, ऋद्धिवान्, रूप सौभाग्य से सुशोभित ऐसे देवता, विद्याधर या राजा होते हैं ।। १-४ ।।

रोग तथा भयादिक की शान्ति

अस्य प्रभावतो घोरं, विषं च विषमज्वरम् ।
दुष्टं कुष्टं क्षयं क्षिप्रं, प्रशाम्यति न संशयः ।। ५ ।।

तावद् विपन्नदी घोरा, दुस्तरा यावदङ्गिभिः ।
नाप्यते सिद्धचक्रस्य, प्रसादविशदा तरी ।। ६ ।।

बद्धा रुद्धा नरास्तावत्, तिष्ठन्ति क्लेशवर्तिनः ।
यावत् स्मरन्ति नो सिद्ध-चक्रस्य विहितादराः ।। ७ ।।

एतत् तपोविधायिन्यो, योषितोऽपि विशेषतः ।
वन्ध्या-निन्द्रादिदोषाणां, प्रयच्छन्ति जलाञ्जलिम् ।।८।।

वैफल्यं बालवैधव्यं, दुर्भगत्व कुरूपताम् ।
दुर्भगात्वं च दासीत्वं, लभन्ते न कदाचन ।। ९ ।।

श्रीसिद्धचक्र के प्रभाव से भयंकर विष, विषम ज्वर, दुष्ट कोढ़ तथा क्षय रोग का नाश होता है, इसमें संशय का कोई कारण नहीं है । जब तक श्रीसिद्धचक्रजी की कृपा रूपी विशद नौका नहीं प्राप्त होती है तभी तक जीवों को विपत्ति रूपी भयंकर नदी दुस्तर होती है । बाँधे गए, रोके गए तथा क्लेश में पड़े हुए प्राणी भी तभी तक दुःखी

होते हैं जब तक आदर पूर्वक श्रीसिद्धचक्रजी का स्मरण नहीं करते हैं। इस तप को करने वाली स्त्रियाँ भी विशेष पूर्वक वन्ध्यत्व (बाँझपना), निन्दु-मृत वत्सापना इत्यादि दोषों को तिलांजलि देती हैं तथा उन्हें कभी बाल-विधवापना, दुर्भागीपना, कुरूपता, दुर्भागपना और दासीपना इत्यादि प्राप्त नहीं होते हैं ।। ५-९ ।।

आराधना की विशिष्टता

यद्यदेवाभिवाञ्छन्ति, जन्तवो भक्तिशालिनः ।
तत्तदेवाप्नुवन्ति श्री-सिद्धचक्रार्चनोद्यताः ।। १० ।।

एतदाराधनात् सम्य-गाराद्धं जिनशासनम् ।
यतः शासनसर्वस्व-मेतदेव निगद्यते ।। ११ ।।

एभ्यो नवपदेभ्योऽन्य-न्नास्ति तत्त्वं जिनागमे ।
ततो नवपदी ज्ञेया, सदा ध्येया च धीधनैः ।। १२ ।।

इस श्रीसिद्धचक्र-नवपदजी की आराधना में उद्यत ऐसे भक्तिशाली जीव जिस-जिस वस्तु की अभिलाषा (इच्छा) करते हैं, वह वस्तु उन्हें अवश्य प्राप्त होती है। इसकी आराधना से श्रीजिनशासन का सम्यक् आराधन होता है। इसलिये श्रीसिद्धचक्र के नवपद जिनशासन के सारभूत कहलाते हैं। नवपद बिना अन्य तत्त्व जिनागम में नहीं

है। इसलिये इस नवपद का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और बुद्धिशाली मानवों को सर्वदा उसका ध्यान धरना चाहिए ॥ १०-१२ ॥

मोक्षादिक की प्राप्ति

ये सिद्धा ये च सेत्स्यन्ति, ये च सिध्यन्ति साम्प्रतम् ।
ते सर्वेऽपि समाराध्य, पदान्येतान्यहर्निशम् ॥ १३ ॥

त्रिधा शुद्धया समाराध्य, मे(चै)षामेकतरं पदम् ।
भूयांसोऽपि भवन्ति स्म, पदं राज्यादिसम्पदाम् ॥ १४ ॥

अस्याद्यपदमाराध्य, प्राप्ताः स्वामित्वमुत्तमम् ।
नरेषु देवपालाद्याः, कार्त्तिकाद्याः सुरेषु च ॥ १५ ॥

द्वितीयपदमाराध्य, ध्यायन्तः पञ्चपाण्डवाः ।
सिद्धाचले समं कुन्त्या, संप्राप्ताः परमं पदम् ॥ १६ ॥

नास्तिकः कृतपापोऽपि, यत् प्रदेशी सुरोऽभवत् ।
तदस्यैव तृतीयस्य, पदस्योपकृतं महत् ॥ १७ ॥

चतुर्थपदमस्यैवा–राधयन्तो यथाविधि ।
धन्याः सूत्रमधीयन्ते, शिष्याः सिंहगिरेरिव ॥ १८ ॥

विराध्याराध्य चैतस्य, पञ्चमं पदमेव हि ।
दुःखं सुखं च संप्राप्ता, रुक्मिणी चाथ रोहिणी ॥१९॥

षष्ठं पदं च यैरस्य, निर्मलं कलितं सदा ।
कृष्ण-श्रेणिकमुख्यास्ते, श्लाघनीयाः सतामपि ।। २० ।।

सप्तमं पदमेतस्य, समाराध्य समाधितः ।
महाबुद्धिधना जाता, धन्या शीलमती सती ।। २१ ।।

पदमस्याष्टमं सम्यग्, यदाराद्धं पुरादरात् ।
तत् श्रीजम्बूकुमारेण, सुखेनाप्तं शिवं पदम् ।। २२ ।।

अस्यैव नवमं शुद्धं, पदमाराध्य सम्मदात् ।
वीरमत्या महासत्या, प्राप्तं सर्वोत्तमं फलम् ।। २३ ।।

किं बहूक्तेन भो भव्या, अस्यैवाराधकैर्नरैः ।
तीर्थकृन्नामकर्माऽपि, हेलया समुपार्ज्यते ।। २४ ।।

अर्थ–जे जीव आज पर्यन्त भूतकाल में मोक्ष गये हैं, अभी वर्तमानकाल में मोक्ष पाते हैं और भविष्यत्काल में मोक्ष पायेंगे वे सभी जीव क्रमशः श्रीनवपदजी की आराधना करके ही गए हैं, पा रहे हैं और पायेंगे ।

(मन-वचन-कायारूप) त्रिकरण शुद्धि से इस नवपद पैकी एक भी पद की आराधना करके अनेक आत्माएँ राज्यादिक की सम्पत्ति प्राप्त करने वाली हुई हैं। जैसे–

(१) श्रीसिद्धचक्र-नवपदजी के **पहले श्रीअरिहन्त पद** का आराधन करके मनुष्यों में **देवपाल** ने और देवताओं में

कार्त्तिक आदि ने उत्तम स्वामीपना प्राप्त किया है।

(२) श्रीसिद्धचक्र-नवपदजी के दूसरे **श्रीसिद्धपद** का आराधन करके **पाँचों पाण्डवों** ने (युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेन, सहदेव और नकुल) **कुन्तीमाता** के साथ सिद्धाचल (महातीर्थ) पर ध्यान धरते हुए परमपद को प्राप्त किया है।

(३) नास्तिक और पापनिरत ऐसा **प्रदेशी राजा** भी देवता हुआ, वह इस श्रीसिद्धचक्र-नवपदजी पैकी तीसरे श्रीआचार्य पद का महान् उपकार है।

(४) श्रीसिद्धचक्र-नवपदजी के चौथे **श्रीउपाध्याय पद** को आराधते हुए धन्य आत्माएँ श्रीसिंहगिरि महाराज के शिष्योंवत् सूत्र का अध्ययन करते हैं। (वे वय में लघु होने पर भी ज्ञान में वृद्ध ऐसे महाज्ञानी श्रीवज्रस्वामी महाराज को उपाध्याय रूपे स्वीकार कर, विनय-बहुमान पूर्वक उनके पास श्रुत का अभ्यास करते थे)।

(५) श्रीसिद्धचक्र-नवपदजी के पाँचवें **श्रीसाधु पद** की आराधना करके **रोहिणी** स्त्री ने सुख प्राप्त किया और इसकी विराधना कर **रुक्मिणी** स्त्री ने दुःख प्राप्त किया।

(६) श्रीसिद्धचक्र-नवपदजी के छठे **श्रीदर्शन पद से** जिन्होंने निर्मलपना प्राप्त किया है ऐसे **कृष्ण वासुदेव** और

श्रेणिक महाराजा आदि उत्तम पुरुष भी प्रशंसनीय बने ।

(७) श्रीसिद्धचक्र-नवपदजी के सातवें **श्रीज्ञानपद** की आराधना करके धन्या **शीलमती** सती महाबुद्धि रूपी धन वाली हुई ।

(८) श्रीसिद्धचक्र-नवपदजी के आठवें **श्रीचारित्र पद** का शिवकुमार के भव में आदर पूर्वक आराधन करके **श्रीजम्बूकुमार** ने सरलता से मोक्षपद प्राप्त किया ।

(९) श्रीसिद्धचक्र-नवपदजी के नवमे **श्रीतप पद** की उल्लास पूर्वक आराधना करके महासती **वीरमती** ने सर्वोत्तम मोक्ष फल प्राप्त किया ।

हे भव्यजीवो ! अधिक क्या कहें ! इस श्रीसिद्धचक्र-नवपदजी की आराधना करने वाले आराधक श्रीतीर्थंकर-नाम कर्म भी सहजता से उपार्जित करते हैं ।। १३-२४ ।।

तप करने योग्य कौन है ?

विधेयं श्रावकैः शान्तैः, श्राविकाभिस्तथाविधं ।
शान्तोऽल्पनिद्रोऽल्पाहारो, निष्कामो निःकषायकः ।। १ ।।

धीरोऽन्यनिन्दारहितो, गुरुशुश्रूषणे रतः ।
कर्मक्षयार्थीप्रायेण, राग-द्वेषविवर्जितः ।। २ ।।

दयालुर्विनयापेक्षी, प्रेत्येहफलनिःस्पृहः ।
क्षमीनीरुका निरुत्सेको, जीवस्तपसि योज्यते ।। ३ ।।

(श्रीआचारदिनकरः)

जो शान्त हो, अल्प निद्रा वाला हो, अल्पाहारी हो, लालसा रहित हो, कषाय रहित हो, धीर हो, अन्य की निन्दा नहीं करने वाला हो, गुरु की सेवा में तत्पर हो, कर्मक्षय का अर्थी हो, प्रायः राग-द्वेष वर्जित हो, दयालु हो, विनयवंत हो, इहलोक या परलोक के फल की इच्छा बिना निःस्पृह हो, क्षमाशील हो, रोग रहित हो, गर्व रहित हो, ऐसा जीव तपस्या करने में संलग्न होता है अर्थात् जुट जाता है ।। १-२-३ ।।

तप ही विधेय है

चक्रे तीर्थकरैः स्वयं निजगदे त्रैरेव तीर्थेश्वरैः ,
श्रीहेतुर्भवहारि दारितरुजं सन्निर्जराकारणम् ।
सद्यो विघ्नहरं हृषीकदमनं मांगल्यमिष्टार्थकृद् ,
देवाकर्षणमारदर्पदलनं तस्माद् विधेयं तपः ।।

तप तीर्थंकर देवों ने स्वयं किया है और इसका उपदेश भी दिया है । तप भव का विनाश करने वाला है, रोग को हरने वाला है, कर्म की निर्जरा करने वाला है, शीघ्रता से विघ्न को दूर करने वाला है, इन्द्रियों को वश में करने वाला है, मांगलिक है, इष्ट सिद्धि को करने वाला है,

देवों को भी आकृष्ट करने वाला है तथा काम के मद का दलन करने वाला है। इस कारण से **तप** विधेय है अर्थात् तप अवश्य करना चाहिए।

तप की प्रशंसा

यस्माद् विघ्नपरम्परा विघटते दास्यं सुराः कुर्वते,
कामः शाम्यति दाम्यतीन्द्रियगणः कल्याणमुत्सर्पति।
उन्मीलन्ति महर्द्धयः कलयति ध्रुवं संचयः कर्मणां,
स्वाधीनं त्रिदिवं च भजते श्लाघ्यं तपस्तन्न किम् ।।

जिस तप से विघ्न की श्रेणी विनाश पामती है, देवता दासपना करते हैं, काम शान्त होता है, इन्द्रियों के समूह का दमन होता है, कल्याण प्रसरता है, महा ऋद्धियाँ प्राप्त होती हैं, कर्मों का समूह नष्ट होता है तथा स्वर्ग और मोक्ष अपने आधीन होते हैं, ऐसा जो तप है क्या वह श्लाघा यानी प्रशसा करने योग्य नहीं है ? अर्थात् वह तप अवश्य ही प्रशंसनीय है।

तप की पूर्णाहुति में उद्यापन करे

प्रासादे कलशाधिरोपणसमं, बिम्बे प्रतिष्ठोपमं,
पुण्यश्रीस्फुटसंविभागकरणं, बिभ्रद् विशिष्टे जने।
सौभाग्योपरिमञ्जरीप्रतिनिभं, पूर्णे तपस्याभिधौ।
यः शक्त्योद्यमनं करोति विधिना, सम्यग्दृशं सोऽग्रणीः ।।१।।

जो सम्यग्दृष्टियों में शरोमणि है वह (जीव) की पूर्णता होने पर मन्दिर पर कलश आरोपण के समान, मन्दिर में मूर्त्ति स्थापन के तुल्य, विशिष्ट जन में पुण्य की प्रगट प्रभावना के सदृश और सौभाग्य पर मंजरी के सदृश, ऐसा **उद्यापन** यानी **उजमणा** अपनी शक्ति के अनुसार विधिपूर्वक अवश्य करता है ।। १ ।।

शुद्धं तपः केवलमप्युदारं ,
सोद्यापनस्यास्य पुनः स्तुमः किम् ?
हृद्यं पयो धेनुगुणेन तत्तु ,
द्राक्षासिताचूर्णयुतं सुधैव ।। २ ।।

केवल शुद्ध तप भी महान है फिर भी उसका उद्यापन-उजमणा करे तब तो उस तप की कितनी प्रशंसा की जाए ? गौ दुग्ध स्वयं भी मनोहर है फिर भी उसमें यदि द्राक्षा और शक्कर का समिलन करे तो वह दूध सुधा-अमृततुल्य ही हो जाए ।। २ ।।

उपसंहार

जैनशासन में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्-चारित्र एवं सुदेव, सुगुरु तथा सुधर्ममय श्रीसिद्धचक्र-नवपद की आराधना मुख्य है। उसके बिना आत्मा को अपने कल्याण के लिये अन्य कोई उत्कृष्ट आलम्बन जगतभर में नहीं है। इसलिये आत्मकल्याण के अर्थी जीवों को सद्-गुरुओं का सुसमागम करके श्रीसिद्धचक्र के अरिहन्तादि

नवपदों को आराधना का विधिमार्ग जानकर अप्रमत्तपने उसका आसेवन अवश्य करना चाहिये। इन नवपदों में प्रथमपदे श्रीअरिहन्त भगवन्त हैं जो रागद्वेष से रहित हैं तथा ज्ञानावरणीयादि चार घनघाती कर्मों से भी रहित हैं एवं चार मूल अतिशय मिलकर बारह गुणों से समलंकृत हैं। ऐसे श्रीअरिहन्त भगवन्त की द्रव्य और भाव से तन्मयता पूर्वक भक्ति करनी।

समस्त कर्मरहित तथा अष्ट गुणों से सुशोभित ऐसे श्रीसिद्ध भगवन्त, छत्तीस गुणों से विभूषित और शासन के सम्राट् ऐसे श्रीआचार्य भगवन्त, पच्चीस गुणों से युक्त तथा द्वादशांगी सूत्र के पाठक ऐसे श्रीउपाध्यायजी महाराज एवं एक ही मोक्षमार्ग के उत्तम साधक तथा सत्तावीश गुणों सहित ऐसे साधु महाराज तथा अन्तःकरण पूर्वक जिनेश्वर-तीर्थंकर भगवन्त भाषित सच्चे तत्त्वों की मान्यता वह सम्यग्दर्शन, उनका निर्मल बोध वह सम्यग्ज्ञान तथा उनकी विशुद्ध आचरणा वह सम्यग्चारित्र और जिनके योग से निज कर्म की निर्जरा हो वह इच्छानिरोध रूप सम्यक्तप, ये नवपद सर्वोत्तम तत्त्व हैं। इसीलिये ये श्रीजिनेश्वर-तीर्थंकरदेव के शासन का सर्वस्व हैं। इन्हीं का बहुमान, इन्हीं की भक्ति और इन्हीं का विधिपूर्वक आराधन सर्व प्रकार के वांछित यानी ऐहिक, पारलौकिक एवं परम्परा से मोक्षफल की प्राप्ति कराने वाले सर्वोत्कृष्ट प्रबल साधन हैं। इनकी सुन्दर आराधना द्वारा ही आत्मा का विकास होता है, इतना ही नहीं आत्मा मोक्ष में पहुँचता है, शाश्वत सुख का भागी बनता है, उसका भवभ्रमण सदंतर बन्द हो जाता है और मोक्ष में सादि अनंत स्थिति में वह सदा मग्न रहता है। 卐

लेखक

शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्त्तितपोगच्छाधिपतिश्रीकदम्बगिरि आदि अनेक तीर्थोद्धारकपरमपूज्याचार्यमहाराजाधिराज **श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरजी म. सा.** के पट्टालंकार-साहित्यसम्राट्-व्याकरणवाचस्पति-शास्त्रविशारद-कविरत्न-परमपूज्याचार्यप्रवर**श्रीमद्विजयलावण्यसूरीश्वरजी म. सा.** के पट्टधर-धर्मप्रभावक-शास्त्रविशारद-कविदिवाकर-व्याकरणरत्न-परमपूज्याचार्यवर्य**श्रीमद्विजयदक्षसूरीश्वरजी म. सा.** के पट्टधर-जैनधर्मदिवाकर-शास्त्रविशारद-साहित्यरत्न-कविभूषण-

आचार्य श्रीमद् विजय सुशील सूरि

श्रीवीर सं० २५०९	शुक्रवार,	स्थल
विक्रम सं० २०३९	२१-१०-८३	**श्रीआदिनाथ जैन**
नेमि सं० ३४	(आसो मास की	**आराधना भवन,**
आसो सुद १५	शाश्वती ओली का	**तखतगढ़**
	अन्तिम दिन)	(राजस्थान)

।। शुभं भवतु श्रीसंघस्य ।।

परिशिष्ट

परिशिष्ट—१ :

श्री नवपद ओली विधि

*

परिशिष्ट—२ :

नवपदजीनी ४ ढालोनुं स्तवन

*

परिशिष्ट—३ :

तखतगढ़ चातुर्मास विवरण

परिशिष्ट-१

।। श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ।।

श्री नवपद ओली विधि

जैन शासन में ६ अट्ठाईयां फर्माई हैं; उनमें चैत्र शुक्ला सप्तमी से पूर्णिमा तक और आश्विन शुक्ला सप्तमी से पूर्णिमा तक जो दो अट्ठाईयां हैं; इनमें नवपद महाराज की आराधना की जाती है।

इस व्रत की आराधना आश्विन मास से प्रारम्भ होती है और साढ़े चार वर्ष तक लगातार नौ ओली करने से यह व्रत पूरा होता है।

इस व्रत की आराधना जो सच्चे भाव से करता है उसे श्रीपाल महाराजा के माफिक ऋद्धि-सिद्धि और सुख-सौभाग्य प्राप्त होता है।

नव दिन की आवश्यक क्रियाएँ

(१) प्रातःकाल चार बजे उठकर मंद स्वर से उपयोगपूर्वक राई प्रतिक्रमण करना।

(२) पदों के गुणों की संख्या के अनुसार लोगस्स का काउसग्ग करना।

(३) सूर्योदय के करीब पडिलेहन करना ।

(४) आठ थुइयों से देववंदन करना ।

(५) श्री सिद्धचक्रजी के यंत्र की वासक्षेप से पूजा करना ।

(६) अनुकूलता अनुसार नौ मंदिरों में जाकर चैत्यवंदन करना या एक ही मंदिर में नौ चैत्यवंदन करना ।

(७) गुरु वंदन कर, श्रीपाल महाराजा के रास का व्याख्यान श्रवण करके पच्चक्खाण करना ।

(८) स्नान करके श्री जिनेश्वर भगवान की स्नात्र व अष्ट प्रकारी पूजा करना ।

(९) जिस पद के जितने गुण हों उतने ही खमासमण, उतनी ही प्रदक्षिणा और उतने ही स्वस्तिक करके उन पर फल और नैवेद्य यथाशक्ति चढ़ाना ।

(१०) जिस दिन जिस पद की आराधना हो उस पद की बीस नवकारवाली गिनना ।

(११) दोपहर को आठ थुइयों से देववंदन करना ।

(१२) आयंबिल करने को बैठने के पेश्तर पच्चक्खाण पार कर फिर आयंबिल करना ।

(१३) आयंबिल कर लेने पर उसी स्थान पर तिविहार का पच्चक्खाण करना ।

(१४) आयंबिल कर लेने के कुछ समय बाद यदि पानी पीना हो तो चैत्यवंदन करके पानी पीना । जिन्होंने ठाम चउविहार का पच्चक्खाण किया हो उन्हें चैत्यवंदन करने की जरूरत नहीं ।

(१५) शाम को सूर्यास्त के पेश्तर पडिलेहण कर आठ थुई से देव वंदन करना। तदनंतर मंदिर में दर्शन कर आरती उतारना।

(१६) देवसिक प्रतिक्रमण करना।

(१७) रात को श्रीपाल महाराजा का रास बांचना।

(१८) एक प्रहर रात्रि व्यतीत होने के बाद संथारा पोरिसी सूत्र पढ़कर नवकार मंत्र स्मरण करते २ संथारे पर सो जाना।

(१९) प्रतिदिन की क्रिया सोने के पेश्तर संपूर्ण कर देना।

उपरोक्त लिखे मुताबिक नवों दिन क्रिया करने की है।

पहला दिन—अरिहंत पद। गुण १२

(वर्ण-सफेद, आयंबिल चांवल का करना)

जाप—ॐ ह्रीं नमो अरिहंताणं। नवकारवाली २०। काउसग्ग १२ लोगस्स का। स्वस्तिक १२। खमासमण १२। प्रदक्षिणा १२।

।। दोहा ।।

अरिहंत पद ध्यातो थको, दव्वह् गुण पज्जायरे।
भेद छेद करी आतमा, अरिहंत रूपी थायरे।।
वीर जिनेसर उपदीशे, सांभलजो चित लाइरे।
आतम ध्याने आतमा, ऋद्धि मिले सवि आईरे।।वीर०।।

१. श्री अशोकवृक्ष प्रातिहार्य विभूषिताय श्रीमदर्हते नमः।

२. श्री पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य विभूषिताय श्रीमदर्हते नमः।

३. श्री दिव्यध्वनि प्रातिहार्य विभूषिताय श्रीमदर्हते नमः।

४. श्री चामरयुगल प्रातिहार्य विभूषिताय श्रीमदर्हते नमः ।

५. श्री स्वर्ण सिंहासन प्रातिहार्य विभूषिताय श्रीमदर्हते नमः ।

६. श्री भामंडल प्रातिहार्य विभूषिताय श्रीमदर्हते नमः ।

७. श्री दुन्दुभी प्रातिहार्य विभूषिताय श्रीमदर्हते नमः ।

८. श्री छत्र त्रय प्रातिहार्य विभूषिताय श्रीमदर्हते नमः ।

९. श्री लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान स्वरूप ज्ञानातिशय विभूषिताय श्रीमदर्हते नमः ।

१०. श्री सुरासुर गण नायक कृत समवसरण प्रातिहार्यादि विशिष्ट पूजातिशय विभूषिताय श्रीमदर्हते नमः ।

११. श्री सर्व भाषानुगामी सकल संशयोच्छेदक पंच त्रिंशद गुणालंकृत वचनातिशय विभूषिताय श्रीमदर्हते नमः ।

१२. श्री स्वपरापाय-निवारकापाया-पगमातिशय-विभूषिताय श्रीमदर्हते नमः ।

आखिर में एक खमासमण देकर अविधि आशातना का मिच्छामि दुक्कडं देना ।

दूसरा दिन—सिद्ध पद । गुण ८

(वर्ण-लाल, आयंबिल गेहूँ का करना)

जाप-ॐ ह्रीं नमो सिद्धाणं । नवकारवाली २० । काउसग्ग ८ लोगस्स का । स्वस्तिक ८ । खमासमण ८ । प्रदक्षिणा ८ ।

।। दोहा ।।

रूपातीत स्वभाव जे, केवल दंसण नाणीरे ।
ते ध्याता निज आतमा, होय सिद्ध गुणखाणीरे ।। वीर० ।।

१. ज्ञानावरणीय कर्म क्षयोद्भूतानन्त ज्ञान गुण विभूषितेभ्यः श्री सिद्धेभ्यो नमः ।

२. दर्शनावरणीय कर्म क्षयोद्भूतानन्त दर्शन गुण विभूषितेभ्यः श्री सिद्धेभ्यो नमः ।

३. वेदनीय कर्म क्षयोद्भूताव्याबाध सुख गुण विभूषितेभ्यः श्री सिद्धेभ्यो नमः ।

४. मोहनीय कर्म क्षयोद्भूतानन्त सम्यक्त्व चारित्र गुण विभूषितेभ्यः श्री सिद्धेभ्यो नमः ।

५. आयुष्य कर्म क्षयोद्भूता क्षय स्थिति गुण विभूषितेभ्यः श्री सिद्धेभ्यो नमः ।

६. नामकर्मक्षयोद्भूतारूपित्वादिगुणविभूषितेभ्यः श्री सिद्धेभ्यो नमः ।

७. गोत्रकर्म क्षयोद्भूता गुरु लघु गुण विभूषितेभ्यः श्री सिद्धेभ्यो नमः ।

८. अन्तराय कर्म क्षयोद्भूतानन्त करण वीर्य गुण विभूषितेभ्यः श्री सिद्धेभ्यो नमः ।

तीसरा दिन–आचार्य पद । गुण ३६

(वर्ण-पीला, आयंबिल चने का करना)

जाप-ॐ ह्रीं नमो आयरियाणं । नवकारवाली २० । काउसग्ग ३६ लोगस्स का । स्वस्तिक ३६ । खमासमण ३६ । प्रदक्षिणा ३६ ।

।। दोहा ।।

ध्याता आचारज भला, महा मंत्र शुभ ध्यानीरे ।
पंच प्रस्थाने आतमा, आचारज होय प्राणीरे ।। वीर० ।।

१. श्री प्रतिरूपगुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

२. श्री तेजस्विता गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

३. श्री युगप्रधानागम गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः

४. श्री मधुर वाक्य गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

५. श्री गाम्भीर्य गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

६. श्री धैर्य सुबुद्धि गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

७. श्री उपदेश तत्परता गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः

८. श्री अपरिश्रावि गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

९. श्री सौम्य प्रगति गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

१०. श्री संग्रहशीलता गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

११. श्री अभिग्रह गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

१२. श्री अविकत्थक गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

१३. श्री अचपलता गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

१४. श्री प्रशांतहृदय गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

१५. श्री क्षमाधर्म गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

१६. श्री मार्दवधर्म गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

१७. श्री आर्जवधर्म गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

१८. श्री मुक्तिधर्म गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

१९. श्री तपोधर्म गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

२०. श्री संयम-धर्म गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

२१. श्री सत्यधर्म-गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

२२. श्री शौचधर्म गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

२३. श्री अकिंचन्य धर्म गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

२४. श्री ब्रह्मचर्य धर्म गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

२५. श्री अनित्यभावना भावितत्व गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

२६. श्री अशरण भावना भावितत्व गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

२७. श्री संसार भावना भावितत्व गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

२८. श्री एकत्व भावना भावितत्व गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

२९. श्री अन्यत्व भावना भावितत्व गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

३०. श्री अशुचित्व भावना भावितत्व गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

३१. श्री आस्रव भावना भावितत्व गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

३२. श्री संवर भावना भावितत्व गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

३३. श्री निर्जरा भावना भावितत्व गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

३४. श्री लोकस्वभाव भावना भावितत्व गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

३५. श्री बोधि दुर्लभत्व भावना भावितत्व गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

३६. श्री धर्मकथकार्हन्त एव इति भावना भावितत्व गुण विभूषिताय श्री आचार्याय नमः ।

चौथा दिन–उपाध्याय पद । गुण २५

(वर्ण–हरा (लीला), आयंबिल मूंग का करना)

जाप–ॐ ह्रीं नमो उवज्झायाणं । नवकारवाली २० । काउसग्ग २५ लोगस्स का । स्वस्तिक २५ । खमासमण २५ । प्रदक्षिणा २५ ।

।। दोहा ।।

तप सज्झाये रत सदा, द्वादश अंगना ध्यातारे ।
उपाध्याय ते आतमा, जग बंधव जग भ्रातारे ।। वीर० ।।

१. श्री आचारांग सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

२. श्री सूत्र कृतांग सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

३. श्री स्थानांग सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

४. श्री समवायांग सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

५. श्री भगवत्यंग सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

६. श्री ज्ञाता कर्म कथांग सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

७. श्री उपासक दशांग सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

८. श्री अन्तकृद्दशांग सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

९. श्री अनुत्तरौपपातिक दशांग सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

१०. श्री प्रश्नव्याकरणांग सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

११. श्री विपाकांग सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

१२. श्री उत्पाद पूर्व सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

१३. श्री अग्रायणीय पूर्व सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

१४. श्री वीर्य प्रवाद पूर्व सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

१५. श्री अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

१६. श्री ज्ञान प्रवाद पूर्व सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

१७. श्री सत्य प्रवाद पूर्व सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

१८. श्री आत्म प्रवाद पूर्व सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

१९. श्री कर्म प्रवाद पूर्व सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

२०. श्री प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

२१. श्री विद्या प्रवाद पूर्व सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

२२. श्री कल्याण प्रवाद पूर्व सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

२३. श्री प्राणावाय पूर्व सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

२४. श्री क्रिया विशाल पूर्व सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

२५. श्री लोकबिंदुसार पूर्व सूत्र पठन पाठन तत्परता गुण विभूषितेभ्यः श्री उपाध्यायेभ्यो नमः ।

पाँचवाँ दिन—साधु पद । गुण २७

(वर्ण—काला, आयंबिल उड़द का करना)

जाप—ॐ ह्रीं नमो लोए सव्व साहूणं । नवकारवाली २० । काउसग्ग २७ लोगस्स का । स्वस्तिक २७ । खमासमण २७ । प्रदक्षिणा २७ ।

।। दोहा ।।

अप्रमत्त जे नित रहे, नवि हरखे नवि सोचेरे ।
साधु सुधा ते आतमा, शुं मूंडे शुं लोचेरे ।। वीर० ।।

१. सर्वतः प्राणातिपात विरमण व्रत गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः ।

२. सर्वतो मृषावाद विरमण व्रत गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः ।

३. सर्वतोऽदत्तादान विरमण व्रत गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः ।

४. सर्वतो मैथुन विरमण व्रत गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः ।

५. सर्वतः परिग्रह विरमण व्रत गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः ।

६. सर्वतो रात्रि भोजन विरमण व्रत गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः ।

७. सर्वतः पृथ्वीकाय रक्षण गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः ।

८. सर्वतोऽप्काय रक्षण गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः ।

९. सर्वतः तेजस्काय रक्षण गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः ।

१०. सर्वतो वायुकाय रक्षण गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः ।

११. सर्वतो वनस्पतिकाय रक्षण गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः ।

१२. सर्वतो द्वींद्रियादि त्रसकाय रक्षण गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः ।

१३. सर्वतः स्पर्शनेंद्रिय विषय निग्रह गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः ।

१४. सर्वतो रसनेंद्रिय विषय निग्रह गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः ।

१५. सर्वतो घ्राणेंद्रिय विषय निग्रह गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः ।

१६. सर्दतश्चक्षुरिन्द्रिय विषय निग्रह गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः ।

१७. सर्वतः श्रोत्रेंद्रिय विषय निग्रह गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः।

१८. सर्वतो लोभ निग्रह गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः।

१९. सर्वतः क्षमा गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः।

२०. सर्वतो भाव विशुद्धि गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः।

२१. सर्वतः प्रतिलेखनादि क्रिया विशुद्ध गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः।

२२. सर्वतः संयम योग युक्तता गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः।

२३. सर्वतोऽकुशल मनोयोग निरोध गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः।

२४. सर्वतोऽकुशल वचन योग निरोध गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः।

२५. सर्वतोऽकुशल काय योग निरोध गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः।

२६. सर्वतः शीतादि परिषह सहनशीलता गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः।

२७. सर्वतो मरणान्तिकोपसर्ग सहिष्णुता गुण विभूषितेभ्यः श्री साधुभ्यो नमः।

छट्ठा दिन--दर्शन पद । गुण ६७

(वर्ण—सफेद, आयंबिल चांवल का करना)

जाप—ॐ ह्रीं नमो दंसणस्स । नवकारवाली २० । काउसग्ग ६७ लोगस्स का । स्वस्तिक ६७ । खमासमण ६७ । प्रदक्षिणा ६७ ।

।। दोहा ।।

शम संवेगादिक गुणा, क्षय उपशम जे आवेरे ।
दर्शन तेहिज आत्मा, शुं होय नाम धरावेरे ।। वीर० ।।

१. परमार्थ संस्तव श्रद्धान स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

२. परमार्थ ज्ञातृ सेवन स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

३. व्यापन्न दर्शन वर्जन स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

४. कुदर्शन वर्जन स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

५. शुश्रूषालिङ्ग स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

६. धर्म राग लिंग स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

७. वैयावृत्य लिंग स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

८. अर्हद्विनय स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

९. सिद्ध विनय स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

१०. चैत्य विनय स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

११. श्रुत विनय स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

१२. क्षमादि धर्म विनय स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

१३. साधु वर्ग विनय स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

१४. आचार्य विनय स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

१५. उपाध्याय विनय स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

१६. प्रवचन रूप संघ विनय स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

१७. दर्शन विनय स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

१८. मनः शुद्धि स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

१९. वचन शुद्धि स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

२०. काय शुद्धि स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

२१. शंका दूषण त्याग स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

२२. कांक्षा दूषण त्याग स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

२३. विचिकित्सा दूषण त्याग स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

२४. मिथ्यादृष्टि प्रशंसा दूषण त्याग स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

२५. मिथ्यादृष्टि संसर्ग दूषण त्याग स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

२६. प्रवचन प्रभावक स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

२७. धर्म कथिक प्रभावक स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

२८. वादि प्रभावक स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

२९. नैमित्तिक प्रभावक स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

३०. तपस्वी प्रभावक स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

३१. विद्याभृत्प्रभावक स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

३२. सिद्ध प्रभावक स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

३३. कवि प्रभावक स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

३४. जिन शासन क्रिया कौशल भूषण स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

३५. प्रभावना भूषण स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

३६. तीर्थ सेवा भूषण स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

३७. स्थैर्य भूषण स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

३८. जिन शासन भक्ति भूषण स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

३९. उपशम लक्षण स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

४०. संवेग लक्षण स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

४१. निर्वेद लक्षण स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

४२. अनुकम्पा लक्षण स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

४३. आस्तिक्य लक्षण स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

४४. परतीर्थिक देव परतीर्थिक गृहीत जिन प्रतिमा वन्दन त्याग रूप यतना स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

४५. परतीर्थिक देव परतीर्थिक गृहीत जिन प्रतिमा नमन त्याग रूप यतना स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

४६. मिथ्यादृष्टि सहलाप वर्जन० यतना स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

४७. मिथ्यादृष्टि सहसंलाप वर्जन० यतना स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

४८. मिथ्यादृष्टि अन्न पान दान वर्जन० यतना स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

४९. मिथ्यादृष्टि वारंवारान्न पान दान वर्जन यतना स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

५०. राजाभियोगाकार युक्तता स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

५१. गणाभियोगाकार युक्तता स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

५२. बलाभियोगाकार युक्तता स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

५३. देवाभियोगाकार युक्तता स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

५४. गुरुनिग्रहाकार युक्तता स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

५५. श्री वृत्ति कान्ताराकार युक्तता स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

५६. श्री धर्म वृक्ष मूलमिति भावना स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

५७. श्री धर्मपुरद्वारमिति भावना स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

५८. श्री धर्मप्रासाद प्रतिष्ठानमिति भावना स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

५९. श्री धर्माधार इति भावना स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

६०. श्री धर्म भाजनमिति भावना स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

६१. श्री धर्म निधानमिति भावना स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

६२. श्री अस्ति जीव इति श्रद्धा स्थान स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

६३. श्री नित्यानित्यो जीव इति श्रद्धा स्थान स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

६४. श्री कर्मणः कर्त्ता जीव इति श्रद्धा स्थान स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

६५. श्री कर्मणो भोक्ता जीव इति श्रद्धा स्थान स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

६६. श्री जीवस्य मोक्षोऽस्तीति श्रद्धा स्थान स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

६७. श्री मोक्षोपायोऽस्तीति श्रद्धा स्थान स्वरूप श्री सम्यग्दर्शनाय नमः ।

सातवाँ दिन—ज्ञान पद । गुण ५१

(वर्ण-सफेद, आयंबिल चांवल का करना)

जाप—ॐ ह्रीं नमो नाणस्स । नवकारवाली २० । काउसग्ग ५१ लोगस्स का । स्वस्तिक ५१ । खमासमण ५१ । प्रदक्षिणा ५१ ।

॥ दोहा ॥

ज्ञानावरणीय जे कर्म छे, क्षय उपशम तस थायरे ।
तो हुए एहिज आतमा, ज्ञान अबोधता जायरे ॥ वीर० ॥

१. स्पर्शनेन्द्रिय व्यंजनावग्रह स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

२. रसनेंद्रिय व्यंजनावग्रह स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

३. घ्राणेन्द्रिय व्यंजनावग्रह स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

४. श्रोत्रेन्द्रिय व्यंजनावग्रह स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

५. स्पर्शनेन्द्रियार्थावग्रह स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

६. रसनेन्द्रियार्थावग्रह स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

७. घ्राणेन्द्रियार्थावग्रह स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

८. चक्षुरिन्द्रियार्थावग्रह स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

९. श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रह स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

१०. मनोऽर्थावग्रह स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

११. स्पर्शनेन्द्रियेहा स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

१२. रसनेन्द्रियेहा स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

१३. घ्राणेन्द्रियेहा स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

१४. चक्षुरिन्द्रियेहा स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

१५. श्रोत्रेन्द्रियेहा स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

१६. मनईहा स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

१७. स्पर्शनेन्द्रियापाय स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

१८. रसनेन्द्रियापाय स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

१९. घ्राणेन्द्रियापाय स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

२०. चक्षुरिन्द्रियापाय स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

२१. श्रोत्रेन्द्रियापाय स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

२२. मनोऽपाय स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

२३. स्पर्शनेन्द्रिय धारणा स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

२४. रसनेन्द्रिय धारणा स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

२५. घ्राणेन्द्रिय धारणा स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

२६. चक्षुरिन्द्रिय धारणा स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

२७. श्रोत्रेन्द्रिय धारणा स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

२८. मनोधारणा स्वरूप श्री मतिज्ञानाय नमः ।

२९. अक्षर स्वरूप श्री श्रुतज्ञानाय नमः ।

३०. अनक्षर स्वरूप श्री श्रुतज्ञानाय नमः ।

३१. संज्ञि श्रुतज्ञानाय नमः ।

३२. असंज्ञि श्रुतज्ञानाय नमः ।

३३. सम्यक् श्रुतज्ञानाय नमः ।

३४. मिथ्या श्रुतज्ञानाय नमः ।

३५. सादि श्रुतज्ञानाय नमः ।

३६. अनादि श्रुतज्ञानाय नमः ।

३७. सपर्यवसित श्रुतज्ञानाय नमः ।

३८. अपर्यवसित श्रुतज्ञानाय नमः ।

३९. गमिक श्रुतज्ञानाय नमः ।

४०. अगमिक श्रुतज्ञानाय नमः ।

४१. अंग प्रविष्ट श्रुतज्ञानाय नमः ।

४२. अनंग प्रविष्ट श्रुतज्ञानाय नमः ।

४३. अनुगामिकाऽवधिज्ञानाय नमः ।

४४. अनानुगामिकाऽवधिज्ञानाय नमः ।

४५. वर्धमानावधिज्ञानाय नमः ।

४६. हीयमानावधिज्ञानाय नमः ।

४७. प्रतिपात्यवधिज्ञानाय नमः ।

४८. अप्रतिपात्यवधिज्ञानाय नमः ।

४९. ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानाय नमः ।

५०. विपुलमति मनःपर्यवज्ञानाय नमः ।

५१. लोकालोक प्रकाशक श्री केवलज्ञानाय नमः ।

आठवाँ दिन–चारित्र पद । गुण ७०

(वर्ण-सफेद, आयंबिल चांवल का करना)

जाप–ॐ ह्रीं नमो चारित्तस्स । नवकारवाली २० । काउसग्ग ७० लोगस्स का । स्वस्तिक ७० । खमासमण ७० । प्रदक्षिणा ७० ।

।। दोहा ।।

जाण चारित्र ते आतमा, निज स्वभावमां रमतोरे ।
लेश्या शुद्ध अलंकर्यो, मोह वने नवि भमतोरे ।। वीर० ।।

१. सर्वतः प्राणातिपात विरमण व्रत स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

२. सर्वतः मृषावाद विरमण व्रत स्वरूप श्री चारित्राय नमः

३. सर्वतो अदत्तादान विरमण व्रत स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

४. सर्वतो मैथुन विरमण व्रत स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

५. सर्वतः परिग्रह विरमण व्रत स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

६. सम्यक् क्षमा धर्म स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

७. सम्यक् मार्दव धर्म स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

८. सम्यक् आर्जव धर्म स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

९. सम्यक् मुक्ति धर्म स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

१०. सम्यक् तपोधर्म स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

११. सम्यक् संयम धर्म स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

१२. सम्यक् सत्य धर्म स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

१३. सम्यक् शौच धर्म स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

१४. सम्यक् अकिंचन्य धर्म स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

१५. सम्यक् ब्रह्मचर्य धर्म स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

१६. पृथ्वीकाय जीव रक्षा संयम स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

१७. अप्काय जीव रक्षा संयम स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

१८. तेजस्काय जीव रक्षा संयम स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

१९. वायुकाय जीव रक्षा संयम स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

२०. वनस्पति जीव रक्षा संयम स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

२१. द्वीन्द्रिय जीव रक्षा संयम स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

२२. त्रीन्द्रिय जीव रक्षा संयम स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

२३. चतुरिन्द्रिय जीव रक्षा संयम स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

२४. पंचेन्द्रिय जीव रक्षा संयम स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

२५. अजीव संयम स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

२६. प्रेक्षा संयम स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

२७. उपेक्षा संयम स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

२८. प्रमार्जन संयम स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

२९. परिष्ठापन संयम स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

३०. मनः संयम स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

३१. वचन संयम स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

३२. काय संयम स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

३३. आचार्य वैयावृत्य स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

३४. उपाध्याय वैयावृत्य स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

३५. तपस्वी वैयावृत्य स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

३६. लघुशिष्य वैयावृत्य स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

३७. ग्लान साधु वैयावृत्य स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

३८. स्थविर वैयावृत्य स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

३९. समनोज्ञ समाचारी कारक वैयावृत्य स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

४०. श्रमण संघ वैयावृत्य स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

४१. चन्द्रादि कुल वैयावृत्य स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

४२. कौटिकादि गण वैयावृत्य स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

४३. स्त्री पशु पंडकरहित वसतिवास शुद्ध ब्रह्मगुप्ति स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

४४. स्त्री सहसराग वार्त्तालाप वर्जन शुद्ध ब्रह्मगुप्ति स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

४५. स्त्री आसन वर्जन शुद्ध ब्रह्मगुप्ति स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

४६. स्त्री सराग अंगोपांग निरीक्षण वर्जन शुद्ध ब्रह्मगुप्ति स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

४७. कुडयान्तरित स्त्री पुरुष क्रीड़ा स्थान वर्जन शुद्ध ब्रह्मगुप्ति स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

४८. पूर्व भुक्त स्त्री संग क्रीड़ा विलास स्मरण वर्जन शुद्ध ब्रह्मगुप्ति स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

४९. सरसाहार वर्जन शुद्ध ब्रह्मगुप्ति स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

५०. अति मात्राहार वर्जन शुद्ध ब्रह्मगुप्ति स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

५१. विभूषादि शरीर शोभा वर्जन शुद्ध ब्रह्मगुप्ति स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

५२. श्री सम्यक् ज्ञान स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

५३. श्री सम्यक् दर्शन स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

५४. श्री सम्यक् चारित्र स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

५५. अनशन तप स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

५६. औनोदर्य तप स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

५७. वृत्ति संक्षेप तप स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

५८. रस त्याग तप स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

५९. लोचादि काय क्लेश सहन तप स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

६०. संलीनता तप स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

६१. प्रायश्चित ग्रहण रूपाभ्यन्तर तप स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

६२. विनय करणाभ्यन्तर तप स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

६३. वैयावृत्य करण रूपाभ्यन्तर तप स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

६४. स्वाध्याय करण रूपाभ्यन्तर तप स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

६५. शुभ ध्यान करण रूपाभ्यन्तर तप स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

६६. उत्सर्ग करणाभ्यन्तर तप स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

६७. क्रोध निग्रह स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

६८. मान निग्रह स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

६९. माया निग्रह स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

७०. लोभ निग्रह स्वरूप श्री चारित्राय नमः ।

नौवाँ दिन–तप पद । गुण ५०

(वर्ण–सफेद, आयंबिल चांवल का करना)

जाप–ॐ ह्रीं नमो तवस्स । नवकारवाली २० । काउसग्ग ५० लोगस्स का । स्वस्तिक ५० । खमासमण ५० । प्रदक्षिणा ५० ।

।। दोहा ।।

इच्छारोधे संवरी, परिणति समता योगेरे ।
तप ते एहिज आतमा, वरते निज गुण भोगेरे ।। वीर० ।।

१. श्री यावत्कथिकानशन स्वरूप तपसे नमः ।

२. श्री इत्वरिकानशन स्वरूप तपसे नमः ।

३. श्री बाह्योनोदर्य स्वरूप तपसे नमः ।

४. श्री अभ्यंतरौनोदर्य स्वरूप तपसे नमः ।

५. श्री द्रव्यतो वृत्तिसंक्षेप स्वरूप तपसे नमः ।

६. श्री क्षेत्रतो वृत्तिसंक्षेप स्वरूप तपसे नमः ।

७. श्री कालतो वृत्तिसंक्षेप स्वरूप तपसे नमः ।

८. श्री भावतो वृत्तिसंक्षेप स्वरूप तपसे नमः ।

९. श्री लोचादि काय क्लेश (रसत्याग) स्वरूप तपसे नमः ।

१०. श्री रस त्याग स्वरूप तपसे नमः ।

११. श्री इंद्रिय कषाय योग संलीनता स्वरूप तपसे नमः ।

१२. श्री स्त्री पशु पंडकादि वर्जित व सत्य व स्थान स्वरूप तपसे नमः ।

१३. आलोचना प्रायश्चित स्वरूप श्री तपसे नमः ।

१४. प्रतिक्रमण प्रायश्चित स्वरूप श्री तपसे नमः ।

१५. मिश्र प्रायश्चित स्वरूप श्री तपसे नमः ।

१६. विवेक प्रायश्चित स्वरूप श्री तपसे नमः ।

१७. उत्सर्ग प्रायश्चित स्वरूप श्री तपसे नमः ।

१८. तपः प्रायश्चित स्वरूप श्री तपसे नमः ।

१९. छेद प्रायश्चित स्वरूप श्री तपसे नमः ।

२०. मूल प्रायश्चित स्वरूप श्री तपसे नमः ।

२१. अनवस्थाप्य प्रायश्चित स्वरूप श्री तपसे नमः ।

२२. पारांचित प्रायश्चित स्वरूप श्री तपसे नमः ।

२३. ज्ञान विनय स्वरूप श्री तपसे नमः ।

२४. दर्शन विनय स्वरूप श्री तपसे नमः ।

२५. चारित्र विनय स्वरूप श्री तपसे नमः ।

२६. शुभ मनः प्रवृत्ति विनय स्वरूप श्री तपसे नमः ।

२७. शुभ वचन प्रवृत्ति विनय स्वरूप श्री तपसे नमः ।

२८. शुभ काय प्रवृत्ति विनय स्वरूप श्री तपसे नमः ।

२९. औपचारिक विनय स्वरूप श्री तपसे नमः ।

३०. आचार्य वैयावृत्य स्वरूप श्री तपसे नमः ।

३१. उपाध्याय वैयावृत्य स्वरूप श्री तपसे नमः ।

३२. स्थविर साधु वैयावृत्य स्वरूप श्री तपसे नमः ।

३३. तपस्वी साधु वैयावृत्य स्वरूप श्री तपसे नमः ।

३४. लघु शिष्यादि वैयावृत्य स्वरूप श्री तपसे नमः ।

३५. ग्लान साधु वैयावृत्य स्वरूप श्री तपसे नमः ।

३६. समनोज्ञ सामाचारी कारक वैयावृत्य स्वरूप श्री तपसे नमः ।

३७. श्रमण संघ वैयावृत्य स्वरूप श्री तपसे नमः ।

३८. चांद्रादिकुल वैयावृत्य स्वरूप श्री तपसे नमः ।

३९. कौटिकादि गण वैयावृत्य स्वरूप श्री तपसे नमः ।

४०. वाचना स्वाध्याय स्वरूप श्री तपसे नमः ।

४१. पृच्छना स्वाध्याय स्वरूप श्री तपसे नमः ।

४२. परावर्तना स्वाध्याय स्वरूप श्री तपसे नमः ।

४३. अनुप्रेक्षा स्वाध्याय स्वरूप श्री तपसे नमः ।

४४. धर्म कथा स्वाध्याय स्वरूप श्री तपसे नमः ।

४५. आर्त्त ध्यान निवृत्ति ध्यान स्वरूप श्री तपसे नमः ।

४६. रौद्र ध्यान निवृत्ति ध्यान स्वरूप श्री तपसे नमः ।

४७. धर्म ध्यान प्रवृत्ति ध्यान स्वरूप श्री तपसे नमः ।

४८. शुक्ल ध्यान प्रवृत्ति ध्यान स्वरूप श्री तपसे नमः ।

४९. बाह्योत्सर्ग स्वरूप श्री तपसे नमः ।

५०. अभ्यंतरोत्सर्ग स्वरूप श्री तपसे नमः ।

श्री अरिहंत पद चैत्यवंदन

उप्पन्न सन्नाण महो मयाणं, सप्पाडिहेरा सग संठियाणं। सदेसणाणं दिय सज्जणाणं, नमो नमो होउ सया जिणाणं ।। १ ।। नमोऽनंत संत प्रमोद प्रदान प्रधानाय भव्यात्मने भास्वताय। थया जेहना ध्यानथी सौख्य भाजा, सदा सिद्ध चक्राय श्रीपाल राजा ।। २ ।। कर्या कर्म दुर्मम चकचूर जेणे, भला भव्य नवपद ध्यानेन तेणे। करी पूजना भव्य भावे त्रिकाले, सदा वासियो आतमा तेणे काले ।। ३ ।। जिके तीर्थंकर कर्म उदये करीने, दिये देशना भव्यने हित धरीने। सदा आठ महापडिहारे समेता, सुरेशे नरेशे स्तव्या ब्रह्मपुत्ता ।। ४ ।। कर्या घातिया कर्म चारे अलग्गा, भवोपग्रही चार जे छे विलग्गा। जगत पंच कल्याण के सौख्य पामे, नमो तेह तीर्थंकरा मोक्ष कामे ।। ५ ।।

इसके बाद जंकिंचि, नमुत्थुणं, जावंतिचेई, खमासमण देकर जावंतकेवि० नमोर्हत्० कहने बाद स्तवन कहना।

स्तवन

त्रीजे भव वरस्थानक तप करी, जेणे बांध्युं जिन नाम। चोसठ इन्द्रे पूजित जे जिन, कीजे तास प्रणाम रे। भविका ! सिद्ध चक्र पद वंदो, जेम चिरकाले नंदो रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। १ ।। ए आंकणी ।। जेहने होय कल्याणक दिवसे, नरके पण अजवालुं। सकल अधिक गुण अतिशय धारी, ते जिन नमी अघ टालुं रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। २ ।। जे तिहुं नाण समग्ग उप्पन्ना, भोग करम क्षीण जाणी। लइ दीक्षा शिक्षा दिये जनने, ते नमिये जिन नाणीरे ।। भविका ।। सिद्ध ।। ३ ।। महागोप महामाहण कहिये, नियामक सत्थवाह। उपमा एहवी जेहणे छाजे, ते जिन नमिये उत्साहरे ।। भविका ।। सिद्ध ।। ४ ।। आठ प्रातिहारज जस छाजे,

पांत्रीस गुण युक्त वाणी । जे प्रतिबोध करे जग जनने, ते जिन नमिये प्राणीरे ।। भविका ।। सिद्ध चक्र० ।। ५ ।।

इसके बाद जयवीयराय० अरिहंत चेईआणं० अन्नत्थ कहकर एक नवकार का काउसग्ग करके नमोर्हत् कह स्तुति कहना ।

स्तुति

सकल द्रव्य पर्याय प्ररूपक, लोकालोक सरूपोजी ।
केवलज्ञान को ज्योति प्रकाशक, अनंत गुणे करी पूरोजी ।।
तीजे भव थानक आराधी, गोत्र तीर्थंकर नूरोजी ।
बार गुणाकर एहवा अरिहंत, आराधो गुण भूरोजी ।। १ ।।

श्री सिद्ध पद चैत्यवंदन

सिद्धाणमाणंद रमालयाणं, नमो नमोऽणंत चउक्कयाणं । करी आठ कर्म क्षये पार पाम्या, जरा जन्म मरणादि भय जे गे वाम्या । निरावरण जे आत्म रूपे प्रसिद्धा, थया पार पामी सदा सिद्ध बुद्धा ।। २ ।। त्रिभागोन देहावगाहात्म देशा, रह्या ज्ञान मय जातवर्णादि लेशा । सदानंद सौख्याश्रिता ज्योतिरूपा, अनाबाध अपुनर्भवादि स्वरूपा ।। ३ ।।

स्तवन

समय पए संतर अण फरसी, चरम तिभाग विशेष । अवगाहन लही जे शिव पहोता, सिद्ध नमो ते अशेष रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। ।। १ ।। पूर्व प्रयोग ने गति परिणामे, बंधन छेद असंग । समय एक ऊर्ध्वगति जेहनी, ते सिद्ध प्रणमो रंग रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। २ ।। निर्मल सिद्ध शिलानी ऊपरे, जोयण एक लोगंत । सादि अनंत तिहां स्थिति जेहनी, ते सिद्ध प्रणमो संतरे ।। भाविका ।। सिद्ध ।। ३ ।।

जाणे पण न शके कही पर गुण, प्राकृत तेम गुण जास । उपमा विण नाणी भवमांहे, ते सिद्ध दीयो उल्लास रे ।। भाविका ।। सिद्ध ।।४।। ज्योतिशुं ज्योति मली जस अनुपम, विरमी सकल उपाधि । आतमराम रमापति समरो, ते सिद्ध सहज समाधि रे ।। भविका ।। सिद्ध चक्र० ।। ५ ।।

स्तुति

अष्ट करमकुं दमन करीने, गमन कियो शिववासीजी ।
अव्याबाध सादि अनादि, चिदानंद चिद राशिजी ।।
परमातम पद पूरण विलासी, अघघन दाघ विनाशीजी ।
अनंत चतुष्टय शिवपद ध्यावो, केवलज्ञानी भाषीजी ।। १ ।।

श्री आचार्य पद चैत्यवंदन

सूरीण दुरीकय कुग्गहाणं, नमो नमो सूर समप्पहाणं ।। १ ।। नमुं सूरि राजा सदा तत्वताजा, जिनेंद्रागमे प्रौढ साम्राज्य भाजा । षट्वर्ग वर्गित गुणे शोभमाना, पंचाचार ने पालवे सावधाना ।। २ ।। भविप्राणी ने देशना देश काले, सदा अप्रमत्ता यथा सूत्र आले । जिके शासनाधार दिग्दंति कल्पा, जगे ते चिरं जीव जो शुद्ध जल्पा ।। ३ ।।

स्तवन

पंच आचार जे शुद्धा पाले, मारग भाखे साचो । ते आचारज नमिये नेहशुं, प्रेम करीने जाचोरे ।। भविका ।। सिद्ध ।। १ ।। वर छत्रीश गुणे करी सोहे, युग प्रधान जन मोहे । जग बोहे न रहे खिण कोहे, सूरि नमुं ते जोहे रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। २ ।। नित्य अप्रमत्त धर्म उवएसे, नहीं विकथा न कषाय । जेहने ते आचारज नमिये, अकलुष अमल अमायरे ।। भविका ।। सिद्ध ।। ३ ।। जे दिये सारण वारण चोयण, पडी चोयण वली जनने । पट्टधारी गच्छ थंभ

आचारज, ते मान्या मुनि मनने रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। ४ ।। अत्थमिये जिन सूरज केवल, वंदोजे जगदीवो । भुवन पदारथ प्रकटन पटु ते, आचारज चिरंजीवोरे ।। भविका ।। सिद्ध चक्र० ।। ५ ।।

स्तुति

पंचाचार पाले उजवाले, दोष रहित गुण धारो जी ।
गुण छत्तीसे आगम धारो, द्वादश अंग विचारी जी ।।
प्रबल सबल घनमोह हरणकुं, अनिल समो गुण वाणीजी ।
क्षमा सहित जे संयम पाले, आचारज गुण ध्यानी जी ।। १ ।।

श्री उपाध्याय पद चैत्यवंदन

सुतत्थ वित्थारण तप्पराणं, नमो नमो वायग कुंजराणं ।। १ ।। नहीं सूरि पण सूरि गुण ने सुहाया, नमुं वाचका त्यक्त मद मोह माया । वलि द्वादशांगादि सूत्रार्थ दाने, जिके सावधाना निरुद्धाभिमाने ।। २ ।। धरे पंचने वर्ग वर्गित गुणौघा, प्रवादि द्विषोच्छेदने तुल्य सिंघा । गणी गुणी गच्छ संधारणे स्थंभभूता, उपाध्याय ते वंदिये चित् प्रभूता ।। ३ ।।

स्तवन

द्वादश अंग सज्झाय करे जे, पारग धारग तास । सूत्र अर्थ विस्तार रसिक ते, नमो उवज्झाय उल्लासरे ।। भविका ।। सिद्ध ।। १ ।। अर्थ सूत्रने दान विभागे, आचारज उवज्झाय । भव त्रीजे जे लहे शिव संपद, नमिये ते सुपसायरे ।। भविका ।। सिद्ध ।। २ ।। मूरख शिष्य निपाई जे प्रभु, पाहण ने पल्लव आणे । ते उवज्झाय सकल जन पूजित, सूत्र अर्थ सवि जाणे रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। ३ ।। राज कुमर सरीखा गण चिंतक, आचारज पद योग । जे उवज्झाय सदा ते नमतां, नावे भव भय सोगरे ।। भविका ।। सिद्ध ।। ४ ।।

बावना चंदन रस सम वयणे, अहित ताप सवि टाले । ते उवज्झाय नमीजे जे वलो, जिन शासन अजुवाले रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। ५ ।।

स्तुति

अंग इग्यारे चउदे पूरव, गुण पचवीसना धारीजी ।
सूत्र अरथधर पाठक कहोये, योग समाधि विचारीजी ।।
तप गुण शूरा आगम पूरा, नय निक्षेपे तारीजी ।
मुनि गुणधारी बुध विस्तारी, पाठक पूजो अविकारीजी ।। १ ।।

श्री साधु पद चैत्यवंदन

साहूण संसाहिय संजमाणं, नमो नमो शुद्ध दयादमाणं ।। १ ।। करे सेवना सूरिवायग गणिनी, करूं वर्णना तेहनी शी मुणिनी । समेता सदा पंच समिति त्रिगुप्ता, त्रिगुप्ते नहीं काम भोगेषु लिप्ता ।। २ ।। वली बाह्य अभ्यंतर ग्रंथि टाली, होये मुक्ति ने योग्य चारित्र पाली । शुभाष्टांग योगे रमे चित्त वाली, नमुं साधु ने तेह निज पाप टाली ।। ३ ।।

स्तवन

जेम तरु पल्लवे भमरो बेसे, पीडा तस न उपावे । लेइ रस आतम संतोषे, तेम मुनि गोचरी जावे रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। १ ।। पंच इंद्रिय ने जे नित्य जीपे, षट्कायक प्रतिपाल । संयम सत्तर प्रकारे आराधे, वंदु तेह दयाल रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। २ ।। अढार सहस्स शीलांगना धोरी, अचल आचार चरित्र । मुनि महंत जयणायुत वंदी, कीजे जन्म पवित्र रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। ३ ।। नवविध ब्रह्म गुप्ति जे पाले, बारसविह तप शूरा । एहवा मुनि नमिये जो प्रगटे, पूरव पुण्य अंकुरा रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। ४ ।। सोना

तणी परे परीक्षा दीसे, दिन दिन चढते वाने । संजम खप करता मुनि नमिये, देशकाल अनुमाने रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। ५ ।।

स्तुति

समिति गुप्ति कर संयम पाले, दोष बयालीश टालेजी ।
षटकाया गोकुल रखवाले, नव विध ब्रह्मव्रत् पालेजी ।।
पंच महाव्रत सूधां पाले, धर्म शुक्ल उजवालेजी ।
क्षपक श्रेणि करी कर्म खपावे, दसपद गुण उपजावेजी ।।

श्री दर्शन पद चैत्यवंदन

जिणुत्त तत्ते रुइ लक्खणस्स, नमो नमो निम्मल दंसणस्स ।। १ ।। विपर्यास हठ वासना रूप मिथ्या, टले जे अनादि अच्छे जेम पथ्या । जिनोक्ते होये सहज थी श्रद्धानं, कहिये दर्शन तेह परमं निधानं ।। २ ।। बिना जेहथी ज्ञान अज्ञान रूपं, चरित्रं विचित्रं भवारण्य कूपं । प्रकृति सातने उपशमे क्षय तेह होवे, तिहां आप रूपे सदा आप जोवे ।। ३ ।।

स्तवन

शुद्ध देव गुरु धर्म परीक्षा, सद्दहणा परिणाम । जेह पामीजे तेह नमीजे, सम्यग्दर्शन नाम रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। १ ।। मल उपशम क्षय उपशम क्षयथी, जे होय त्रिविध अभंग । सम्यग्दर्शन तेह नमीजे, जिन धर्मे दृढ रंग रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। २ ।। पंच वार उपशमिय लहीजे, क्षय उपशमिय असंख । एक बार क्षायिक ते समकित, दर्शन नमिये असंख रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। ३ ।। जे विण नाण प्रमाण न होवे, चारित्र तरु नवि फलियो । सुख निर्वाण न जे विण लहीये, समकित दर्शन बलियो रे ।। भविका ।।

सिद्ध ।। ४ ।। सडसठ बोले जे अलंकरियुं, ज्ञान चारित्रनुं मूल । समकित दर्शन ते नित्य प्रणामुं, शिव पंथनु अनुकूल रे । भविका । सिद्ध ।। ५ ।।

स्तुति

जिन पन्नत तत्त सुधा सरधे, समकित गुण उजवालेजी ।
भेद छेद करी आतम निरखो, पशु टाली सुर पावेजी ।।
प्रत्याख्याने सम तुल्य भाख्यो, गणधर अरिहंत शूराजी ।
ए दरशन पद नित नित वंदो, भवसागर को तीराजी ।।

श्री ज्ञान पद चैत्यवंदन

अन्नाण संमोह तमोहरस्स, नमो नमो नाण दिवायरस्स ।। १ ।। होये जेहथी ज्ञान शुद्ध प्रबोधे, यथा वर्ण नासे विचित्राव-बोधे । तेणे जाणिये वस्तु षड द्रव्य भावा, न हुये वितत्था निजेच्छा स्वभावा ।। २ ।। होय पंच मत्यादि सुज्ञान भेदे, गुरू पास्तिथी योग्यता तेह वेदे । वली ज्ञेय हेय उपादेय रूपे, लहे चित्तमां जेम ध्वांत प्रदीपे ।। ३ ।।

स्तवन

भक्ष्याभक्ष्य न जे विण लहिये, पेय अपेय विचार । कृत्य अकृत्य न जे विण लहिये, ज्ञान ते सकल आधार रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। १ ।। प्रथम ज्ञान ने पछी अहिंसा, श्री सिद्धांते भाख्युं । ज्ञानने वंदो ज्ञान म निंदो, ज्ञानीये शिवसुख चाख्युं रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। २ ।। सकल क्रियानुं मूल जे श्रद्धा, तेहनुं मूल जे कहिये । तेह ज्ञान नित नित वंदीजे, ते विण कहो केम रहिये रे ।।भविका।। सिद्ध ।। ३ ।। पंच ज्ञान मांहि जेह सदागम, स्वपर प्रकाशक जेह । दीपक परे त्रिभुवन उपकारी, वलि जेम रवि शशि मेहरे ।।

भविका ।। सिद्ध ।। ४ ।। लोक ऊर्ध्व अधो तिर्यग ज्योतिष वैमानिक ने सिद्ध। लोकालोक प्रगट सवि जेह थी, तेह ज्ञान मुज शुद्ध रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। ५ ।।

स्तुति

मति श्रुत इंद्रिय जनित कहिए, लहीए गुण गंभीरोजी।
आतमधारी गणधर विचारी, द्वादश अंग विस्तारोजी ।।
अवधि मनःपर्यव केवल वली, प्रत्यक्ष रूप अवधारोजी।
ए पंच ज्ञान को वंदो पूजो, भविजन ने सुखकारोजी ।।

श्री चारित्र पद चैत्यवंदन

आराहिअ खंडिअ सक्किअस्स, नमो नमो संजम वीरिअस्स ।। १ ।। वली ज्ञान फल चरण धरीये सुरंगे, निराशंसता द्वाररोध प्रसंगे। भवांभोधि संतारणे यान तुल्यं, धरूं तेह चारित्र अप्राप्त मूल्यं ।। २ ।। होये जास महिमा थकी रंक राजा, वली द्वादशांगी भणी होय ताजा। वली पाप रूपोऽपि निःपाप थाय, थइ सिद्ध ते कर्म ने पार जाय ।। ३ ।।

स्तवन

देशविरतिने सर्वविरति जे, गृहि यतिने अभिराम। ते चारित्र जगत जयवंतु, कीजे तास प्रणामरे ।। भविका ।। सिद्ध ।। १ ।। तृण परे जे षट्खंड सुख छंडी, चक्रवर्ती पण वरियो ते। चारित्र अक्षय सुख कारण, ते मैं मन मांहे धरियो रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। २ ।। हुआ रांक पण जे आदरी, पूजित इंद नरिंदे। अशरण शरण चरण ते वंदू, पूर्यु ज्ञान आनन्द रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। ३ ।। बार मास पर्याये जेहने, अनुत्तर सुख अतिक्रमिये। शुक्ल शुक्ल अभिजात्य ते उपरे, ते चारित्र ने नमिये रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। ४ ।।

चय ते आठ करमनो संचय, रिक्त करे जे तेह। चारित्र नाम निरुत्ते भाख्यु, ते वंदु, गुणगेह रे ।। भविका ।। सिद्ध ।। ५।।

स्तुति

कर्म अपचय दूर खपावे, आतम ध्यान लगावेजी।
बारे भावना सूधी भावे, सागर पार उतारेजी ।।
षट् खंड राजकुं दूर तजीने, चक्री संजम धारेजी।
एहवो चारित्र पद नित वंदो, आतम गुण हितकारेजी ।।

श्री तप पद चैत्यवंदन

कम्मदुमोम्मूलण कुंजरस्स, नमो नमो तिव्व तवोभरस्स ।। १ ।। इय नव पय सिद्धं, लद्धि विज्जा समिद्धं। पयडिय सरवग्गं, हींति रेहा समग्गं। दिसिवइ सुरसारं, खोणि पीढा वयारं। तिजय विजय चक्कं, सिद्ध चक्कं नमामि ।। २ ।। त्रिकालिक पणे कर्म कषाय टाले, निकाचित पणे बांधिया तेह बाले। कह्युं तेह तप बाह्य अंतर दु भेदे, क्षमायुक्त निर्हेतु दुर्ध्यान छेदे ।। ३ ।। होये जास महिमा थकी लब्धि सिद्धि, अवांछकपणे कर्म आवरण शुद्धि। तपो तेह तप जे महानंद हेते, होय सिद्धि सीमंतिनी जिम संकेते ।। ४ ।। इम नव पद ध्यान ने जेह ध्यावे, सदानंद चिद्रूपता तेह पावे। वली ज्ञान विमलादि गुण रत्न धामा, नमुं ते सदा सिद्धचक्र प्रधाना ।। ५ ।।

इम नवपद ध्यावे, परम आनन्द पावे।
नवमें भव शिव जावे, देव नर भव पावे ।।
ज्ञान विमल गुण गावे, सिद्ध चक्र प्रभावे।
संवि दुरित शमावे, विश्व जयकार पावे ।। ६ ।।

स्तवन

जाणता तिहु ज्ञाने संयुत, ते भव मुक्ति जिनंद । जेह आदरे कर्म खपेवा, ते तप शिवतरु कंदरे ।। भविका ।। सिद्ध० ।। १ ।। कर्म निकाचित पण क्षय जाये, क्षमा सहित जे करतां । ते तप नमिये जेह दीपावे, जिन शासन उजमंता रे ।। भविका ।। सिद्ध० ।। १ ।। आमोसही पमुहा बहु लद्धि, होवे जास प्रभावे । अष्ट महा सिद्धि नव निधि प्रगटे, नमिये ते तप भावे रे ।। भविका ।। सिद्ध० ।। ३ ।। फल शिव सुख महोटुं सुर नरवर, संपत्ति जेहनुं फूल । ते तप सुरतरु सरिखुं वंदू, शम मकरंद अमूल रे ।। भविका ।। सिद्ध० ।। ४ ।। सर्व मंगलमां पहेलुं मंगल, वरणवीये जे ग्रंथे । ते तप पद त्रिहुं काल नमीजे, वर सहाय शिव पंथे रे ।। भविका ।। सिद्ध० ।। ५ ।। एम नवपद थुणतो तिहां लीनो, हुओ तन्मय श्रीपाल । सुजस विलासे चौथे खंडे, एह अग्यारमी ढाल रे । भविका । सिद्ध० ।। ६ ।।

स्तुति

इच्छारोधन तप ते भाख्यो, आगम तेहने साखीजी ।
द्रव्य भाव से द्वादश दाखी, जोग समाधि राखीजी ।।
चेतन निज गुण परणति पेखी, तेहोज तप गुण दाखीजी ।
लब्धि सकलनो कारण देखी, ईश्वर से मुख भाखीजी ।।

श्री नवपद चैत्यवंदन १

श्री सिद्धचक्र आराधिए, आसो चैतर मास ।
नव दिन नव आंबिल करी, कीजे ओली खास ।। १ ।।

केशर चंदन घसी घणा, कस्तूरी बरास ।
जुगते जिनवर पूजिया, मयणा ने श्रीपाल ।। २ ।।

पूजा अष्ट प्रकार नो, देववंदन त्रण काल।
मंत्र जपो त्रण काल ने, गणणु तेर हजार ।। ३ ।।

कष्ट टल्युं उंबर तणु, जपतां नवपद ध्यान।
श्री श्रीपाल नरिंद थया, वाध्यो बमणो वान ।। ४ ।।

सात सौ कोढी सुख लह्यो, पाम्या निज आवास।
पुण्ये मुक्ति वधु वर्या, पाम्या लील विलास ।। ५ ।।

चैत्यवंदन २

बार गुण अरिहंतना, तेम सिद्धना आठ।
छत्रीश गुण आचार्यना, ज्ञान तणा भंडार ।। १ ।।

पचीस गुण उपाध्यायना, साधु सत्तावीश।
शाम वर्ण तनु शोभता, जिन शासनना ईश ।। २ ।।

ज्ञान नमुं एकावने, दर्शन ना सड़सठ।
सीत्तेर गुण चारित्रना, तपना बारते जिट्ठ ।। ३ ।।

एम नवपद युक्ते करी त्रण शत अष्ट (३०८) गुण थाय।
पूजे जे भवी भावशुं, तेहना पातिक जाय ।। ४ ।।

पूज्या मयणा सुन्दरी, तेम नरपति श्रीपाल।
पुण्ये मुक्ति सुख लह्या, वरत्या मंगल माल ।। ५ ।।

चैत्यवंदन ३

श्री सिद्धचक्र महा मंत्र, राज पूजा परसिद्ध।
जास नमन थी संपजे, संपूरण रिद्ध ।। १ ।।

अरिहंतादिक नवपद, नित्य नव निधि दाता।
ए संसार असार सार, होवे पार विख्याता ।। २ ।।

अमरांचल पद संपजे, पूरे मनना कोड ।
मोहन कहे विधि युत करो, जिम होवे भवनो छोड ।। ३ ।।

चैत्यवंदन ४

सुललित नवपद ध्यान थी, परमानंद लहिये ।
ध्यान अग्नि थी कर्मना, ईंधन पुण दहिये ।। १ ।।

ईति भीति ने रोग शोक, सवि दूर पणासे ।
भोग संजोग सुबुद्धिता, प्राप्त सुविलासे ।। २ ।।

सिद्धचक्र तप कीजताए, उत्तम प्रभुता संग ।
मोहन नाण प्रसिद्धता, गंगा रंग तरंग ।। ३ ।।

चैत्यवंदन ५

सकल मंगल परम कमला, केलि मंजुल मंदिरं ।
भवकोटि संचित पापनाशन, नमो नवपद जयकरं ।। १ ।।

अरिहंत सिद्ध सूरीश वाचक, साधु दर्शन सुखकरं ।
वर ज्ञान पद चारित्र तप ए, नमो नवपद जयकरं ।। २ ।।

श्रीपाल राजा शरीर साजा, सेवता नवपद वरं ।
जगमांहि गाजा कीर्ति भाजा, नमो नवपद जयकरं ।। ३ ।।

श्री सिद्धचक्र पसाय संकट, आपदा नासे सवे ।
वली विस्तरे सुख मनोवांछित, नमो नवपद जयकरं ।। ४ ।।

आंबिल नवदिन देववंदन, त्रण टंक निरंतरं ।
बे बार पडिकमणां पलेवण, नमो नवपद जयकरं ।। ५ ।।

त्रण काल भावे पूजिये, भवतारकं तीर्थंकरं।
तिम गणणुं दोय हजार गणीए, नमो नवपद जयकरं ।। ६ ।।

विधि सहित मन वचन काया, वश करी आराधीए।
तप वर्ष साडाचार नवपद, शुद्ध साधन साधीए ।।७ ।।

गद कष्ट चूरे शर्म पूरे, यक्ष विमलेश्वर वरं।
श्री सिद्धचक्र प्रताप जाणी, विजय विलसे सुखभरं ।।८ ।।

चैत्यवंदन ६

सिद्ध सकल समरूं सदा, अविचल अविनाशी।
थाशे ने वली थाय छे, थया अड कर्म विनाशी ।। १ ।।

लोकालोक प्रकाश भास, कहेवा कोण शूरो।
सिद्ध बुद्ध पारंगते, गुण थी नहीं अधूरो ।। २ ।।

अनंत सिद्ध एणी परे नमुं ए, वलि अनंत अरिहंत।
ज्ञान विमल गुण संपदा, पाम्या ते भगवंत ।। ३ ।।

चैत्यवंदन ७

जय जय तुं जिनराज, आज मिलियो मुज स्वामी।
अविनाशी अकलंक अरु, जग अंतरजामी ।। १ ।।

रूपारूपी धर्म देव, आतम आरामी।
चिदानंद है चितंद, शिव लीला पामी ।। २ ।।

सिद्ध बुद्ध तुम वंदताए, सकल सिद्ध पडिबुद्ध।
आतमराम ध्याने करी, प्रगटे आतम रिद्ध ।। ३ ।।

काल बहु थावर करिए, भमियो भव मांहीं।
विगलेन्द्री मांहे वस्यो, थिरता नहीं कांही ।। ४ ।।

तिरि पंचेन्द्री मांहीं देव, करमें हूँ आयो।
करी कुकर्म नरके गयो, तुम दरिशण नहीं पायो ।। ५ ।।

एम अनंत काल करीए, पाम्यो नर अवतार।
हवे जगतारण तूं मिल्यो, भवजल पार उतार ।। ६ ।।

श्री नवपदजी का स्तवन १

भवि तुमे नवपद धरजो ध्यान, भवि तुमे नवपद धरजो ध्यान। ए नवपदनुं ध्यान करंता, पामे जीव विसराम ।। भवि० ।। ।। १ ।। अरिहंत सिद्ध आचारज पाठक, साधु सकल गुणवान ।। भवि० ।।२।। दर्शन ज्ञान चारित्र ए उत्तम, तप तपो करो बहुमान ।। भवि० ।। ३ ।। आसो चैत्रनो सुद सातम थो, पुनम लगे परमाण ।। भवि० ।। ४ ।। एम एक्यासी आंबिल कीजे, वरस साडा चार नु मान ।। भवि० ।। ५ ।। पडिक्कमणा दोय टंकना कीजे, पडिलेहण बे वार ।। भवि० ।। ६ ।। देववदन त्रण टंकना कीजे, देव पूजो त्रिकाल ।। भवि० ।। ७ ।। बार आठ छत्रीश पचवीशनो, सत्ताविश सणसठ सार ।। भवि० ।। ८ ।। एकावन सित्तेर पच्चासनो, काउसग्ग करो सावधान ।। भवि० ।। ९ ।। एक एक पदनु गणणु, गणिये दोय हजार भवि० ।। १० ।। ए विधि जे ए तप आराधे, ते पामे भव पार भवि० ।। ११ ।। करजोडी सेवक गुण गावे, मोहन गुण मणि माल। तास शिष्य मुनि हेम कहे छे, जन्म मरण दुःख वार। भवि०। १२।

स्तवन २

चाल—जग जीवन जग वाल हो।

श्री सिद्धचक्र आराधिये, शिव सुख फल सहकार लालरे।
ज्ञानादिक त्रण रत्न नुं, तेज चढावणहार लालरे ।। श्री सिद्ध० ।।
।। १ ।। श्री गौतमे पूछतां कह्यो, वीर जिणंद विचार लालरे।

नवपद मंत्र आराधता, फल लहे भविक अपार लालरे ।। श्री सिद्ध० ।। २ ।। धर्मरथ ना चार चक्र छे, उपशम सुविवेक लालरे । संवर जाणिये, चोथु सिद्धचक्र छेक लालरे ।। श्री सिद्ध० ।। ३ ।। चक्री चक्र रयण बले, साधे सयल छखंड लालरे । तिम सिद्धचक्र प्रभाव थी, तेज प्रताप अखंड लालरे ।। श्री सिद्ध० ।। ४ ।। मयणा ने श्रीपालजी, जपता बहु फल लीध लालरे । गुण जसवंत जिनेन्द्रना, ज्ञान विनोद प्रसिद्ध लालरे ।। श्री सिद्ध० ।। ५ ।।

स्तवन ३

(देशी—आछेलाल की)

नवपद महिमा सार, सांभलजो नरनार आछेलाल हेज धरि आराधियेजी । तो पामो भवपार, पुत्र कलत्र परिवार, आछे० नवपद मंत्रआराधियेजी ।। १ ।। आसो मास विचार, नव आंबिल निरधार । आछे० विधि सुं जिनवर पूजियेजी । अरिहंत सिद्ध पद सार, गणुं जी तेर हजार । आछे० नवपदनुं इम कीजियेजी ।। २ ।। मयणा सुन्दरी श्रीपाल, आराध्यो ततकाल । आछे० फल दायक तेहने थयोजी । कंचन वरणी काय, देह तेहनी थाय । आछे० श्री सिद्ध-चक्र महिमा कह्योजी ।। ३ ।। सांभली सहु नरनार, आराध्यो नव वार । आ० हेज धरि हियडे घणुजी । चैस मासे वली एह, नवपद सुं धरो नेह । आ० पूजो दे शिवसुख घणुंजी ।। ४ ।। इणी-परे गौतमस्वाम, नवनिधि जेहने नाम । आ० नवपद महिमा बखाणियोजी । उत्तम सागर शिष्य, प्रणमे ते निशदिश । आ० नवपद महिमा जाणियोजी ।। ५ ।।

स्तवन ४

चाल—पूज्य पधारो मरु देश ।

नवपद महिमा सांभलो, वीर भाखे हो सुणो परषदा बार के ।

ए सरीखो जग को नहीं, आराध्यो हो शिवपद दातार के ।। नव० ।। ।। १ ।। नव ओली आंबिल तणी, भवि करिए हो मनने उलास के। भूमि शयन ब्रह्मव्रत धरो, नित सुणिये हो श्रीपाल नो रास के ।। ।। नव० ।। २ ।। नव विधि पूर्वक तप करि, उजमणो हो कीजे विस्तार के। साहमी सामिणी पोषिए, जेम लहिये हो भव निस्तार के ।। नव० ।। ३ ।। नरसुख सुर सुख पामिये, वलि पामे हो भव भव जिन धर्म के। अनुक्रमे शिव पद पण लहे, जिहां मोटा हो अक्षय सुख शर्म के ।। नव० ।। ४ ।। सांभली भवियण दिल धरो, सुखदायी हो नवपद अधिकार के। वचन विनोद जिनेन्द्रनो, मुज हो जो भव भव आधार के ।। नव० ।। ५ ।।

स्तवन ५

नवपद ध्यान सदा जयकारी ।। ए आंकडी ।। अरिहंत सिद्ध आचारज पाठक, साधु देखो गुण रूप उदारी ।। नव० ।। १ ।। दर्शन ज्ञान चारित्र है नत्तम, तप दोय भेदे हृदय विचारी ।। नव० ।। ।। २ ।। मंत्र जडी और तंत्र घणेरा, उन सब को हम दूर विसारी ।। नव० ।। ३ ।। बहोत जीव भव जल से तारे, गुण गावत है बहु नर नारी ।। नव० ।। ४ ।। श्री जिन भक्त मोहन मुनि वंदन, दिन-दिन चढते हरख अपारी ।। नव० ।। ५ ।।

स्तवन ६

सब दुःख दूर होते हैं, नवपद के ध्याने से।
होते हैं मंगल माल भी, नवपद के ध्याने से ।। १ ।।

श्रीपाल मैना सुंदरी ने, ध्यान जब किया।
दारिद्र दूर सब हुए, नवपद के ध्याने से ।। २ ।।

असहाय को भी सहाय देता, मंत्र ये सदा।
होती विजय है सर्वदा, नवपद के ध्याने से ।। ३ ।।

इस भव में साथ देता है, परभव का सार्थी है।
भव भव के फंदे कटते हैं, नवपद के ध्याने से ।। ४ ।।

जिनदास "छोटेलाल" को है, शरणा नवपद का।
होता है आनंद सबको ही, नवपद के ध्याने से ।। ५ ।।

स्तवन ७

श्री सिद्धचक्र आराधो, मनवांछित कारज साधो रे ।। भवियां ।। श्री० ।। ए आंकणी ।। पद पहिले अरिहंत ध्यावो, जेम अरिहंत पदवी पावोरे ।। भवियां ।। श्री० ।। पद दूजे सिद्ध मनावो, जेम सिद्ध सरूपी होई जावोरे ।। भ० ।। श्री० ।। सूरि त्रीजे गुणवंता, जस नायक जग जयवंतारे ।। भ० ।। श्री० ।। चोथे पदे उवझाया, जेणे मारग आण बताव्यारे ।। भ० ।। श्री० ।। साधु सकल गुणधारी, पद पंचमे जग हितकारीरे ।। भ० ।। श्री० ।। दरसण पद छट्ठे दंदो, जेम कोरति होय शीर नंदोरे ।। भ० ।। श्री० ।। ज्ञानपद सातमें दाख्यो, चारित्र पद आठमे भाख्योरे ।। भ० ।। श्री० ।। तप नवमे पद शाख्यो, जेम वीरजी ने वचने राख्योरे ।। भ० ।। श्री० ।। श्रीपालने मयणा लीधो, नवमे भव कारज सिध्योरे ।। भ० ।। श्री० ।। नवपद महिमा जाणी, जिनचंद्र होए मन आणी रे ।। भ० ।। श्री० ।।

स्तवन ८

राग प्रभाती

नवपद ध्यान धरोरे ।। भविका न० ।। मन वच काया कर एकते, विकथा दूर हरोरे ।। भ० न० ।। १ ।। मंत्र जडी अरु तंत्र घणेरा, इन सबकुं विसरो रे। अरिहंतादिक नवपद जपने, पुण्य भंडार भरोरे ।। भ० न० ।। २ ।। अड सिद्ध नव निध मंगलमाला, संपत्ति सहज वरोरे ।। लालचंद याकी बलिहारी, शिवतरु बीज खरोरे ।। भ० न० ।। ३ ।।

स्तवन ६

अवसर पामीने रे, कीजे नव आंबिलनी ओली ।। ओली करतां आपद जाये, रिद्धि सिद्धि लहिए बहुली ।। अ० ।। १ ।। आसौ ने चैत्रे आदरशुं, सातम थी संभाली ।। आलस मेली आंबिल करशे, तस घर नित्य दिवाली ।। अ० ।। २ ।। पूनमने दिन पूरी थाते, प्रेमशुं पखाली रे ।। सिद्धचक्रने शुद्ध आराधी, जाप जपे जपमाली ।। अ० ।। ३ ।। देहरे जइने देव जुहारो, आदीश्वर अरिहंत रे ।। चोवीशे चाहिने पूजो, भावशुं भगवंत ।। अ० ।। ४ ।। बे टंके पडिक्कमणुं बोल्युं, देववंदन त्रण काल रे ।। श्री श्रीपाल तणी परे समजी, चित्तमां राखो चाल ।। अ० ।। ५ ।। समकित पामी अंतरजामी, आराधो एकांत रे । स्याद्वाद पंथे संचरतां, आवे भवनो अंत ।। अ० ।। ६ ।। सत्तर चोराणु सुदि चैत्रीए, बारशे बनावी रे ।। सिद्धचक्र गाता सुख संपत्ति, चालीने घेर आवी ।। अ० ।। ७ ।। उदयरतन वाचक उपदेशे, जे नर नारी चाले रे ।। भवनी भावठ ते भांजीने, मुक्तिपुरीमां महाले ।। अ० ।। ८ ।। इति ।।

श्री सिद्धचक्र स्तुति

वीर जिनेश्वर अति अवलेश्वर, गौतम गुणना दरीआजी ।
एक दिन आणा वीरजीनी लई ने, राजगृही संचरियाजी ।।
श्रेणिक राजा वंदन आव्या, उलट मनमां आणीजी ।
पर्षदा आगल बार बिराजे, हवे सुणो भवि प्राणीजी ।।१।।

मानव भव तुमे पुण्ये पाम्या, श्री सिद्धचक्र आराधोजी ।
अरिहंत सिद्ध सूरि उवज्झाया, साधु देखी गुण वाधेजी ।।
दरशण नाण चारित्र तप कीजे, नवपद ध्यान धरीजेजी ।
धुर आसोथी करवा आंबिल, सुख संपदा पामीजेजी ।।२।।

श्रेणिक राय गौतम ने पूछे, स्वामि ए तप केणे कोधोजी ।
नव आंबिल तप विधिशु करतां, वंछित फल केणे लोधोजी ।।
मधुरी ध्वनि बोल्या श्री गौतम, सांभलो श्रेणिकराय वयणाजी ।
रोग गयो ने संपदा पाम्या, श्री श्रीपाल ने मयणाजी ।।३।।

रुमझुम करती पांये ने उर, दीसे देवी रूपालीजी ।
नाम चक्केसरी ने सिद्धाई, आदि जिन वीर रखवालोजी ।
विघ्न कोड हरे सहु संघना, जे सेवे एहना पांयजी ।।
भाणविजय कवि सेवक नय कहे, सानिध्य करजो मोरी मांयजी ।४।

स्तुति २

प्रह उठी वंदू, सिद्धचक्र सदाय ।
जपिये नवपद नो, जाप सदा सुखदाय ।।
विधि पूर्वक ए तप, जे करे थई उजमाल ।
ते सवि सुख पामें, जेम मयणा श्रीपाल ।। १ ।।

मालवपति पुत्री, मयणा अति गुणवंत ।
तस कर्म संयोगे, कोढी मलियो कंत ।।
गुरु वयणे तेणें, आराध्युं तप एह ।
सुख संपद वरिया, तरिया भव जल तेह ।। २ ।।

आंबिल ने उपवास, छट्ठ वली अट्ठम ।
दस अट्ठाई पंदर मासी, छमासी विशेष ।।
इत्यादिक तप बहु, सहु मांहि सिरदार ।
जे भवियण करशे, ते तरसे संसार ।। ३ ।।

तप सानिध्य करशे, श्री विमलेश्वर यक्ष ।
सहु संघना संकट, चूरे थई प्रत्यक्ष ।।
पुंडरिक गणधर, कनक विजय बुद्ध शिष्य ।
बुद्ध दर्श विजय कहे, पहोंचे सयल जगीश ।। ४ ।।

स्तुति ३

जिन शासन वंछित, पूरण देव रसाल ।
भावे भवि भणिये, सिद्धचक्र गुणमाल ।।
त्रिहु काले एहनी, पूजा करे उजमाल ।
ते अजर अमर पद, सुख पामें सु विशाल ।। १ ।।

अरिहंत सिद्ध वंदो, आचारज उवज्झाय ।
मुनि दरिसण नाण, चरण तप ए समुदाय ।।
ए नवपद समुदित, सिद्धचक्र सुखदाय ।
ए ध्याने भविना, भव कोटि दुख जाय ।। २ ।।

आसो चैतरमां, सुदी सातम थी सार ।
पूनम लग कीजे, नव आंबिल निरधार ।।
दोय सहस गणेवु, पद सम साडा चार ।
एक्यासी आंबिल, तप आगम अनुसार ।। ३ ।।

श्री सिद्धचक्रनो सेवक, श्री विमलेसर देव ।
श्रीपाल तणी परे, सुख पूरे स्वयमेव ।।
दुःख दोहग नावे, जे करे एहनी सेव ।
श्री सुमति सुगुरु नो, राम कहे नित्य मेव ।। ४ ।।

स्तुति ४

श्री सिद्धचक्र सेवो सुविचार, आणी हैडे हरख अपार, जिम लहो सुख श्रीकार ।। मन शुद्धे ओली तप कीजे, अहोनिश नवपद ध्यान धरीजे, जिनवर पूजा कीजे ।। पडिक्कमणां दोय टंकना कीजे, आठे थुइए देव वांदीजे, भूमि संथारो कीजे ।। मृषा तणो कीजे परिहार, अंगे शीयल धरीजे सार, दीजे दान अपार ।। १ ।।

अरिहंत सिद्ध आचार्य नमीजे, वाचक सर्व साधु वंदीजे, दंसण नाण सुणीजे ।। चारित्र तपनुं ध्यान धरीजे, अहोनिश नवपद गणा गणीजे, नव आंबिल पण कीजे । निश्चल राखी मन हो निश्चे, जपीए पद एक एक ईश, नोकरवाली बीश ।। छेल्ले आंबिल मोटो तप कीजे, सत्तरभेदी जिनपूजा रचीजे, मानवभव लाहो लीजे ।। २ ।।

सातसे कुष्ठीयाना रोग, नाठा यंत्र न्हवण संजोग, दूर हुआ कर्मना भोग ।। अढ़ारे कुष्ठ दूरे जाये, दुःख दोहग दूर पलाये, मनवांछित सुख थाये ।। निरधनीयाने दे बहु धन्न, अपुत्रीयाने दे पुत्र रतन्न, जे सेवे शुद्ध मन ।। नवकार समो नहीं कोई मंत्र, सिद्धचक्र समो नहीं कोई जंत्र, सेवो भवि हरखंत ।। ३ ।।

जिम सेव्या मयणा श्रीपाल, उंबर रोग गयो सुख रसाल पाम्या मंगलमाल ।। श्रीपाल तणी पेरे जे आराधे, दिन दिन दौलत तस घर वाधे, अति शिवसुख साधे ।। विमलेश्वर यज्ञ सेवा सारे, आपदा कष्ट ने दूर निवारे, दौलत लक्ष्मी वधारे ।। मेघविजय कवियण ना शिष्य, आणी हैडे भाव जगीश, विनय वंदे निशदिश ।। ४ ।।

स्तुति ५

अरिहंत नमो वली सिद्ध नमो, आचारज वाचक साहु नमो ।
दर्शन ज्ञान चारित्र नमो, तप ए सिद्धचक्र सदा प्रणमो ।। १ ।।

अरिहंत अनंत थया थाशे, वली भाव निक्षेपे गुण गाशे ।
पडिक्कमणां देववंदन विधिशुं, आंबिल तप गणणुं गणो विधिशुं ।२।

छरि पाली जे तप करशे, श्रीपाल तणी परे भव तरशे ।
सिद्धचक्रने कुण आवे तोले, एहवा जिनआगम गुण बोले ।। ३ ।।

साडा चारे वरषे तप पूरूं, ए कर्म विदारण तप शुरूं ।
सिद्धचक्र ने मनमंदिर थापो, नय विमलेश्वर वर आपो ।। ४ ।।

स्तुति ६

अंगदेश चंपापुरी वासी, मयणा ने श्रीपाल सुखाशी, समकितसुं मनवासी । आदि जिनेश्वर ने उल्लासी, भाव पूजा कीधी मन आशी, भाव धरी विश्वासी । गलित कोढ़ गयो तेणे नाशी, सुविधिसु सिद्धचक्र उपासी, थया स्वर्ग ना वासी । आशो चैत्र तणी पौर्णमासी, प्रेमे पूजो भक्ति विकाशी, आदि पुरुष अविनाशी ।। १ ।।

केशर चंदन मृगमद घोली, हरखसुं भरी हेम कचौली, शुद्ध जले अंघोली । नव आंबिलनी कीजे ओली, आसो सुदी सातमथी खोली, पूजो श्रीजिन टोली । चउगतिमांहे आपदा चोली, दुर्गतिना दुःख दूरे ढोली, कर्म निकाचित रोली । कर्म कषाय तणा मद रोली, जिम शिवरमणी भमर भोली, पाम्या सुखनी ओली ।। २ ।।

आसो सुदी सातमसुं विचारी, चैत्री पण चित्तसु निरधारी, नव आंबिलनी सारी । ओली कीजे आलस वारी, प्रतिक्रमण बे कीजे धारी, सिद्धचक्र पूजो सुखकारी । श्रीजिनभाषित पर उपकारी, नवपद जाप जपो नरनारी, जिम लहो मोक्षनी बारी । नवपद महिमा अति मनोहारी, जिन आगम भाखे चमत्कारी, जाऊं तेहनि बलिहारी ।। ३ ।।

श्याम भमर सम वीणा काली, अति सोहे सुन्दर सु कुमाली, जाणे राजमराली । जलहल चक्र धरे रूपाली, श्री जिनशासननी रखवाली, चक्रेश्वरी म्हे भाली । जे ए ओली करे उजमाली, तेनां विघ्न हरे सहु बाली, सेवक जन संभाली ।

'उदयरतन' कहे आलस टाली, जे जिन नाम जपे जपमाली, ते घर नित्य दीवाली ।। ४ ।।

देववंदन विधि

पहले खमासमण देकर इरिया० तस्स० अन्नत्थ, कहकर एक लोगस्स या चार नवकार का काउसग्ग करना बाद लोगस्स कहना फिर उत्तरासन करके खमासमण देकर इच्छा० चैत्यवंदन करूं इच्छं कहकर चैत्यवंदन करना। बाद जंकिंचि०, नमुत्थु०, जयवि० आभवमखंडा तक कहने के बाद फिर खमासमण देकर इच्छा० चैत्यवंदन करूं, इच्छं, कहकर चैत्यवंदन कहना बाद जंकिंचि० नमुत्थु०, अरिहंत चेई०, अन्नत्थ० कहकर एक नवकार का काउसग्ग करके नमोर्हत्० कहकर स्तुति पहली कहना, बाद लोगस्स० सव्वलोए अरिहंत चेई० अन्नत्थ कह एक नवकार का काउसग्ग करके नमो अरिहंताणं कह दूसरी स्तुति कहना बाद पुक्खरवरदी० वंदण वत्ति० अन्नत्थ कह एक नवकार का काउसग्ग कर नमो अरिहंताणं कह तीसरी स्तुति कहना फिर सिद्धाणं० वैयावच्च अन्नत्थ० कह एक नवकार का काउसग्ग कर नमो अरिहंताणं नमोऽर्हत्० कह चतुर्थ स्तुति कहना।

फिर नमुत्थुणं, अरिहंत चेइ० अन्नत्थ कह एक नवकार का काउसग्ग करके नमो अरिहंताणं नमोर्हत्. कह पहली स्तुति कहना। फिर लोगस्स, सव्वलोए अरिहंत चेई., अन्नत्थ कह एक नवकार का काउसग्ग करके नमो अरिहंताणं कह दूसरी स्तुति कहना बाद पुक्खर-वरदी० वंदण० अन्नत्थ० कह एक नवकार का काउसग्ग कर नमो अरिहंताणं कहकर तीसरी स्तुति कहना बाद में सिद्धा० वैयावच्च. अन्नत्थ कह एक नवकार का काउसग्ग करके नमो अरिहंताणं नमोर्हत्० कह चतुर्थ स्तुति कहना. (फिर)

नमुत्थुणं, जावंति चेई० खमासमण देकर जावंत केवि. नमोऽर्हत्, कहकर स्तवन कहना. बाद जयविय. आभवमखंडा. तक कहना बाद खमासमण देकर इच्छा. चैत्य वंदन करूँ. ऐसा कहकर चैत्यवंदन कहे. बाद जंकिंचि० नमुत्थुणं. जयवि. सम्पूर्ण कहकर खमासमण देकर अविधि आशातना का मिच्छामि दुक्कडं देना. सुबह की वक्त हो तो खमासमण देकर इच्छा. सज्झाय करूं ऐसा कहकर एक नवकार गिनके मन्हजिणाणं की सज्झाय कहना. बाद में नवकार नहीं कहना. सज्झाय करते वक्त उत्तरासण निकाल देना. व खड़े पाँव से बैठना।

मन्ह जिणाणं की सज्झाय

मन्ह जिणाणं आणं, मिच्छं परिहर धर सम्मतं।
छव्विह आवस्सयंमि, उज्जुत्तो होई पई दिवसं ।। १ ।।

पव्वेसु पोसह वयं, दाणं सिलं तवोअ भावोअ।
सज्झाय नमुक्कारो, परोवयारो अ जयणा अ ।। २ ।।

जिण पूआ जिण थुणीणं, गुरुथुअ साहम्मिआण वच्छलं।
ववहारस्सय सुद्धि, रहजुत्ता तित्थ जुत्ताय ।। ३ ।।

उवसम विवेग संवर, भासा समिय छजीव करुणाय।
धम्मिअ जण संसग्गो, करण दमो चरण परिणामो ।। ४ ।।

संघोवरि बहुमाणो, पुत्थय लिहणं पभावणा तित्थं।
सड्ढाण किच्च मेअं, निच्चं सुगुरु वएसेणं ।। ५ ।।

पडिलेहण विधि

पहले खमासमण देकर इच्छा० इरिया० तस्स उत्तरी अन्नत्थ कहकर एक लोगस्स या चार नवकार का काउसग्ग करके बाद

लोगस्स कहना फिर खमासमण देकर इच्छाकारेण० पडिलेहन करूं ऐसा कहकर मुहपत्ती चरवला आसनादि उपकरणों का व उपयोग में आने वाले वस्त्रों का पडिलेहण करना बाद काजा निकाल कर एक जगह इकट्ठा करके इरियावहियं करके बाद काजे को शुद्ध जमीन पर डाल देना।

पच्चक्खाण पारने की विधि

प्रथम खमासमण देकर इरिया० तस्स उ० अन्नत्थ० कह एक लोगस्स या चार नवकार का काउस्सग्ग करना बाद लोगस्स कहना तदनंतर उत्तरासण करके खमासमण दे इच्छा० चैत्य वंदन करूं ऐसा कहकर जग चिंतामणि का चैत्य वंदन करना, बाद में जंकिंचि० नमुत्थुणं० जावंतिचेई० खमासमण देकर जावंत केवि० नमोर्हत्० उवसग्ग० कह जयवीयराय संपूर्ण कहना बाद में खमासमण देकर इच्छा० सज्झाय करूं ऐसा कहकर एक नवकार गिनना बाद मन्हजिणाणं की सज्झाय कहकर नवकार कहना फिर खमासमण देकर इच्छा० मुहपत्ति पडिलेहुं इच्छं कहकर मुहपत्ति पडिलेहना फिर खमा० इच्छा० पच्चक्खाण पारूं (गुरु कहे पुणोवि कायव्वं) यथाशक्ति फिर खमा० इच्छा० पच्चक्खाण पायुं (गुरु कहे-आयारो न मुतव्वो) तहत्ति कहकर जीमणे हाथ की मुट्ठी बंद करके चरवले पर स्थापन करना बाद एक नवकार गिनकर पच्चक्खाण पारने की गाथा पढ़ना तदनंतर एक नवकार पढ़कर उठना।

पच्चक्खाण पारने की गाथा

उग्गए सूरे नमुक्कार सहियं, पोरिसि, साढ्ढ पोरिसि, मुट्ठिसहियं पच्चक्खाण किया चउविहार आयंबिल, निवि एकासणा किया तिविहार पच्चक्खाण पालियं फासियं सोहियं तिरियं किट्टीयं आराहियं जं च न आराहियं तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

आयंबिल का पच्चक्खाण

उग्गए सूरे नमुक्कार सहियं पोरिसिं साढ पोरिसिं सूरे उग्गए पुरिमड्ढ, अवड्ढ, मुट्ठिसहियं पच्चक्खाइ उग्गए सूरे चउव्विहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणा भोगेणं, सहसा गारेणं, पछन्न कालेणं, दिसा मोहेणं, साहू वयणेणं, महत्तरागारेणं, सव्व समाहि वत्तियागारेणं आयंबिल पच्चक्खाई, अन्नत्थणा भोगेणं, सहसागारेणं, लेवा लेवेणं, गिहत्थ संसट्ठेणं उक्खित्तविवेगेणं, परिट्ठावणिया गारेणं, महत्तरागारेणं सव्वसमाहि वत्तियागारेणं, एगासणं पच्चक्खाइ, तिविहंपि आहारं, असणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणा भोगेणं सहसागारेणं, सागारियागारेणं, आउटण पसारेणं, गुरु अब्भुट्ठाणेणं, पारिट्ठावणिया गारेणं महत्तरागारेणं, सव्व समाहि वत्तियागारेणं, पाणस्स लेवेण वा अलेवेण वा अच्छेण वा बहुलेवेण वा ससित्थेण वा असित्थेण वा वोसिरई ।।

आयंबिल कर लेने पर मुखशुद्धि करके उठते समय—

तिविहार का पच्चक्खाण

दिवस चरिमं पच्चक्खाई, तिविहंपि आहारं असणं खाइमं साइमं अन्नत्थणा भोगेणं सहसागारेणं महत्तरागारेणं सव्व समाहि वत्तिया गारेणं वोसिरई ।।

संथारा पोरसी पाठ

❀ निसीहि निसीहि निसीहि, नमो खमासमणाणं गोयमाईणं महामुणीणं ।।

❀ इनके बाद १ नवकार मंत्र व एक वक्त करेमि भंते कहके फिर दूसरी वक्त 'निसीहि' का पाठ कहकर १ नवकार व करेमि भंते सूत्र कहना. फिर तीसरी वक्त 'निसीहि' कहकर नवकार मंत्र, करेमि भंते कहके तीन वक्त पूरा कहना. पीछे दूसरी गाथाएं कहने की हैं ।

अणुजाणह जिट्ठिजा ! अणुजाणह, परमगुरु ! गुरुगुणरयणेहिं ।
मंडियसरीरा ! बहुपडिपुन्ना पोरिसि, राइय संथारए ठामि ।। १ ।।

अणुजाणह संथारं, बाहुवहाणेण वामपासेणं ।
कुक्कडि पाय पसारणं, अतरंत पमज्जए भूमिं ।। २ ।।

संकोइअ संडासा, उव्वट्टंते अ कायपडिलेहा ।
दव्वाई उवओगं, ऊसासनिरूंभणा लोए ।। ३ ।।

जइ मे हुज्ज पमाओ, इमस्स देहस्सिमाइरयणी ए ।
आहार मुवहिदेहं, सव्वं तिविहेण वोसिरिअं ।। ४ ।।

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहु मंगलं, केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं ।। ५ ।।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा
साहू लोगुत्तमा, केवलिपन्नंतो धम्मो लोगुत्तमा ।। ६ ।।

चत्तारि सरणं पवज्जामि, अरिहंते सरणं पवज्जामि,
सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहु सरणं पवज्जामि,
केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ।। ७ ।।

पाणाइवायमलियं, चोरिक्कं मेहुणं दविणमुच्छं ।
कोहं माणं मायं, लोभं पिज्जं तहा दोसं ।। ८ ।।

कलहं अब्भक्खाणं, पेसुन्नं रइ-अरइ समाउत्तं ।
परपरिवायं मायामोसं, मिच्छत्त सल्लं च ।। ९ ।।

वोसिरिसु इम्माइं, मुक्खमग्गसंसग्गविग्घभूआइं ।
दुग्गइ निबंधणाइं, अट्ठारस पावठाणाइं ।। १० ।।

एगोऽहं नत्थि मे कोई, नाहमन्नस्स कस्सई ।
एवं अदीणमणसो, अप्पाणमणुसासई ।। ११ ।।

एगो मे सासओ अप्पा, नाणदंसण संजुत्तो ।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा ।। १२ ।।

संजोगमूला जीवेण, पत्ता दुक्खपरंपरा ।
तम्हा संजोगसम्बन्ध, सव्वं तिविहेण वोसिरिअं ।। १३ ।।

❀ अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।
जिणपन्नत्तं तत्तं, इअ सम्मत्त मे गहिअं ।। १४ ।।

खमिअ खमाविअ मई खमिअ, सव्वह जीव निकाय ।
सिद्धह साख आलोयणह, मुज्झह वइर न भाव ।। १५ ।।

सव्वे जीवा कम्मवस, चउदह राज भमंत ।
ते मे सव्व खमाविआ, मुज्झवि तेह खमंत ।। १६ ।।

जं जं मणेण बद्धं, जं जं वाएण भासिअं पावं ।
जं जं काएण कयं, मिच्छामि दुक्कडं तस्स ।। १७ ।।

वासक्षेप पूजा

अरिहंतपद पूजा ।। १ ।।

परम मंत्र प्रणमि करि, तास धरी उर ध्यान ।
अरिहंत पद पूजा करो, निज निज शक्ति प्रमाण ।।
अरिहंत पद ध्यातो थको, दव्वह गुण पज्जाय रे ।
भेद छेद करि आतमा, अरिहंत रूपी थाय रे ।। वीर० ।।

❀ [यह गाथा नं. १४ तीन वक्त कहना बाद सात नवकार मंत्र गिनकर गाथा नं. १५–१६–१७ कहना.]

सिद्धपद पूजा ।। २ ।।

बूजो पूजा सिद्ध की, कीजे दिल खुशियाल ।
अशुभ कर्म दूरे टले, फले मनोरथ माल ।।
रूपातीत स्वभाव जे, केवल दंसण नाणी रे ।
ते ध्याता निज आतमा, होय सिद्ध गुण खाणी रे ।। वीर० ।।

आचार्यपद पूजा ।। ३ ।।

हवे आचारज पद तणी, पूजा करो विशेष ।
मोह तिमिर दूरे हरे, सूझे भाव अशेष ।।
ध्याता आचारज भला, महा मंत्र शुभ ध्यानी रे ।
पंच प्रस्थाने आतमा, आचारज होय प्राणी रे ।। वीर० ।।

उपाध्यायपद पूजा ।। ४ ।।

गुण अनेक जग जेहना, सुन्दर शोभित गात्र ।
उवज्झाय पद अरचिए, अनुभव रस नो पात्र ।।
तप सज्झाये रत सदा, द्वादश अंगनो ध्याता रे ।
उपाध्याय ते आतमा, जग बंधव जग भ्राता रे ।। वीर० ।।

साधुपद पूजा ।। ५ ।।

मोक्ष मारग साधन भणी, सावधान भया जेह ।
ते मुनिवर पद वंदता, निर्मल थाये देह ।।
अप्रमत्त जे नित रहे, नवि हरखे नवि शोचे रे ।
साधु सुधा ते आतमा, शुं मुंडे शुं लोचे रे ।। वीर० ।।

दर्शनपद पूजा ।। ६ ।।

जिनवर भाषित शुद्ध नय, तत्त्व तणी परतीत ।
ते सम्यग्दर्शन सदा, आदरीये शुभ रीत ।।
शम संवेगादिक गुणा, क्षय उपशम जे आवे रे ।।
दर्शन तेहिज आतमा, शुं होय नाम धरावे रे ।। वीर० ।।

ज्ञानपद पूजा ।। ७ ।।

सप्तम पद श्री ज्ञान नुं, सिद्धचक्र पद मांहि ।
आराधोजे शुभ मने, दिन दिन अधिक उच्छाहि ।।
ज्ञानावरणीय जे कर्म छे, क्षय उपशम तस थाय रे ।
तो हुए एहिज आतमा, ज्ञान अबोधता जाय रे ।। वीर० ।।

चारित्रपद पूजा ।। ८ ।।

अष्टम पद चारित्र नुं, पूजो धरी उम्मेद ।
पूजत अनुभव रस मिले, पातिक होय उच्छेद ।।
जाण चारित्र ते आतमा, निज स्वभाव मां रमतो रे ।
लेश्या शुद्ध अलंकर्यो, मोह वने नवी भमतो रे ।। वीर० ।।

तपपद पूजा ।। ९ ।।

कर्म काष्ठ प्रतिजालवा, परतिख अग्नि समान ।
ते तप पद पूजो सदा, निर्मल धरिए ध्यान ।।
इच्छारोधे संवरो, परिणति समता योगे रे ।
तप ते एहिज आतमा, वर्ते निज गुण भोगे रे ।. वीर० ।।

आगम नोआगम तणो, भाव ते जाणो साचो रे ।
आतम भावे थिर हो जो, पर भावे मत राचो रे ।। वीर० ।।

अष्ट सकल समृद्धि नो, घट मांहि ऋद्धि दाखी रे ।
तेम नवपद ऋद्धि जाणजो, आतमराम छे साखी रे ।। वीर० ।।

योग असंख्य छे जिन कह्या, नवपद मुख्य ते जाणो रे ।
एह तणे अवलंबने, आतम ध्यान प्रमाणो रे ।। वीर० ।।

ढाल बारमी एहवी, चौथे खंडे पूरी रे ।
वाणी वाचक जस तणो, कोई नये न अधूरी रे ।। वीर० ।।

।। श्री पं० वीरविजयजी कृत स्नात्रपूजा ।।

पूर्व या उत्तर दिशा में बाजोट (त्रिगडा) रखकर उस पर कुंकुम का साथिया करना । त्रिगडे में अक्षत का साथिया करके उस पर नारियल व थापना रखना । उस पर सिंहासन रखकर केशर का साथिया कर तीन नवकार मंत्र गिनकर पंच तीर्थ की प्रतिमा की स्थापना करना । फिर तीन नवकार मंत्र गिनकर पंचामृत का कलश हाथ में लेना । प्रभु के जीमणी तरफ खड़े रहकर सर्वप्रथम मंगलाचरण का श्लोक दोहा बोलकर भगवान के चरण (अंगूठे) का अभिषेक करना ।

सरस शान्ति सुधारस सागरं, शुचितरं गुणरत्न महागरम् ।
भविक पंकज बोध दिवाकरं, प्रतिदिनं प्रणमामि जिनेश्वरम् ।। १ ।।

।। दोहा ।।

कुसुमाभरण उतारी ने, पडिमा धरिय विवेक ।
मज्जन पीठे थापी ने, करिये जल अभिषेक ।। १ ।। (अभिषेक करना)

फिर जीमणे हाथ में साथिया करके कुसुमांजलि हाथ में लेकर क्रम से गाथा दोहा बोलकर भगवान के चरण पर चढ़ाना ।

।। गाथा ।।

जिण जम्म समये मेरु सिहरे, रयण कणय कलसेहिं ।
देवा सुरेहिं ण्हविओ, ते धन्ना चेहिं दिट्ठोसि ।। १ ।।
नमोऽर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्यः ।

।। ढाल ।।

निर्मल जल कलशे न्हवरावे, वस्त्र अमूलक अंग धरावे ।
कुसुमांजलि मेलो आदि जिणंदा, सिद्ध स्वरूपी अंग पखाली ।।
आतम निर्मल हुई सुकुमाली कुसु० ।। १ ।।

।। मन्त्र ।।

ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय कुसुमांजलिं यजामहे स्वाहा । कुसुमांजली चढ़ाना ।

।। गाथा ।।

मचकुन्द चंप मालईं कमलाईं पुप्फ पंच वण्णाईं ।
जगनाह न्हवण समये, देवा कुसुमांजलि दिंती ।। २ ।।
नमोऽर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्यः ।

।। ढाल ।।

रयण सिंहासन-जिन थापीजे, कुसुमांजलि प्रभु चरणे दीजे ।
कुसुमांजलि मेलो शान्ति जिणंदा, सिद्ध स्वरूपी० ।। २ ।।

।। मन्त्र ।।

ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय कुसुमांजलिं यजामहे स्वाहा ।

।। दोहा ।।

जिण तिहुं कालय सिद्धनी, पडिमा गुण भंडार ।
तसु चरणे कुसुमांजलि, भविक दुरित हरनार ।। ३ ।।
नमोर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यः ।

।। ढाल ।।

कृष्णागरु वर धूप धरीजे, सुगंध कर कुसुमांजलि दीजे ।
कुसुमांजलि मेलो नेमि जिणंदा, सिद्ध स्वरूपी० ।। ३ ।।

।। मन्त्र ।।

ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय कुसुमांजलिं यजामहे स्वाहा ।।

।। गाथा ।।

जसु परिमल बल दह दिसिं, महुकर झंकार सद् संगीया ।
जिण चलणोवरि मुक्का, सुर नर कुसुमांजलि सिद्धा ।। ४ ।।
नमोर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यः ।

।। ढाल ।।

पास जिणेसर जग जयकारी, जल थल फूल उदक कर धारी ।
कुसुमांजलि मेलो पार्श्व जिनंदा, सिद्ध स्वरूपी० ।। ४ ।।

।। मन्त्र ।।

ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय कुसुमांजलिं यजामहे स्वाहा ।

।। दोहा ।।

मूके कुसुमांजलि सुरा, वीर चरण सुकुमाल ।
ते कुसुमांजलि भविकनां, पाप हरे त्रण काल ।। ५ ।।
नमोर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यः ।

।। ढाल ।।

विविध कुसुम वर जाति गहेवी, जिन चरणे पणमंत ठवेवी ।
कुसुमांजलि मेलो वीर जिणंदा, सिद्ध स्वरूपी० ।। ५ ।।

।। मन्त्र ।।

ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय कुसुमांजलिं यजामहे स्वाहा ।

।। वस्तु छन्द ।।

न्हवण काले न्वहण काले, देवदाणव समुच्चिय ।
कुसुमांजलि तहिं संठवियं, पसरंत दिसि परिमल सुगंधिय ।
जिण पय कमले निवडइं विग्घहर जसनाम मंतो ।
अनंत चउविस जिन वासव, मलिय असेस,
सा कुसुमांजलि सुह करो, चउविह संघ विशेष ।। ६ ।।
नमोर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यः ।

।। ढाल ।।

अनन्त चोवीसी जिनजी जुहारुं, वर्तमान चोवीसी संभारुं ।
कुसुमांजलि मेलो चोवीस जिणिंदा, सिद्ध स्वरूपी० ।। ६ ।।

।। मन्त्र ।।

ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय कुसुमांजलिं यजामहे स्वाहा ।।

।। दोहा ।।

महा विदेहे सम्प्रति, विहरमान जिन वीश ।
भक्ति भरे ते पूजिया, करो संघ सुजगीश ।। ७ ।।
नमोर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यः ।

।। ढाल ।।

अपच्छर मंडलि गीत उच्चारा, श्री शुभवीर विजय जयकारा ।
कुसुमांजलि मेलो सर्व जिणिंदा, सिद्ध स्वरूपी० ।। ७ ।।

।। मन्त्र ।।

ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय कुसुमांजलिं यजामहे स्वाहा ।। ७ ।।

फिर तीन प्रदक्षिणा देकर, तीन खमासमण देकर जगचिंतामणि से लेकर सम्पूर्ण जयवीयराय तक चैत्यवन्दन करना । बाद में हाथ धोकर पंचामृत का कलश हाथ में लेकर प्रभु के जीमणी तरफ खड़े रहना । पंखा, चंवर, दर्पण, धूप, दीपक, जल का कलश तथा राखडी आदि तैयार रखना ।

।। अथ कलश ।। दोहा ।।

सयल जिनेसर पाय नमी, कल्याणक विधि तास ।
वर्णवता सुणता थका, संघनी पूगे आश ।। १ ।।

।। ढाल ।।

समकित गुण ठाणे परिणम्या, वलि व्रत धर संयम सुख रम्या ।
वीश स्थानक विधिये तप करी, ऐसी भाव दया दिल मां धरी ।।१।।

जो होवे मुझ शक्ति इसी, सवि जीव करूँ शासन रसी ।
शुचि रस ढलते तिहाँ बाँधता, तीर्थङ्कर नाम निकाचता ।। २ ।।

सराग थी संयम आचरी, वचमां एक देव नो भव करी ।
चवि पन्नर क्षेत्रे अवतरे, मध्य खण्डे पण राजवी घरे (कुले) ।३।

पटराणी कूखे गुण नीलो, जेम मान सरोवर हंसलो ।
सुख शय्याये रजनी शेषे, उतरतां चउद सुपन देखे ।। ४ ।।

।। ढाल–स्वप्न की ।।

पहेले गजवर दीठो, बीजे वृषभ पइट्ठो ।
त्रीजे केसरी सिंह, चोथे लक्ष्मी अभीह ।। १ ।।

पाँचमें फूलनी माला, छट्ठे चन्द्र विशाला ।
रवि रातो ध्वज म्होटो, पूरण कलश नहीं छोटो ।। २ ।।

दशमें पद्म सरोवर, अग्यार में रत्नाकर ।
भुवन विमान रत्नगंजी, अग्निशिखा धूम वर्जी ।। ३ ।।

स्वप्न लहि जई रायने भाखे, राजा अर्थ प्रकाशे ।
पुत्र तीर्थंकर त्रिभुवन नमशे, सकल मनोरथ फलशे ।। ४ ।।

।। वस्तु छन्द ।।

अवधिनाणे अवधिनाणे, ऊपना जिनराज । जगत जस परमाणुआ, विस्तर्या विश्व जंतु सुखकार । मिथ्यात्व तारा निर्बला, धर्म उदय परभात सुन्दर । माता पण आनंदिया, जागती धर्म विधान । जाणंति जग तिलक समो, होशे पुत्र प्रधान ।। १ ।।

।। दोहा ।।

शुभ लग्ने जिन जनमिया, नारकी मां सुख ज्योत ।
सुख पाम्या त्रिभुवन जना, हुओ जगत उद्योत ।। १ ।।

।। ढाल कड़खा की तर्ज ।।

सांभलो कलश जिन महोत्सवनो इहां ।
छप्पन कुमरी दिशि विदिशि आवे तिहां ।।
माय सुत नमिय, आणंद अधिको धरे ।
अष्ट संवर्त्त वायु थी कचरो हरे ।। १ ।।

वृष्टि गंधोदके, अष्ट कुमरी करे ।
अष्ट कलशा भरी, अष्ट दर्पण धरे ।।
अष्ट चामर धरे, अष्ट पंखा लही ।
चार रक्षा करी, चार दीपक ग्रही ।। २ ।।

घर करी केलना, माय सुत लावती ।
करण शुचि कर्म जल, कलशे न्हवरावती ।।
कुसुम पूजी अलंकार पहेरावती ।
राखड़ी बांधी जई, शयन पधरावती ।। ३ ।।

नमिय कहे माय तुज बाल लीलावती ।
मेरु रवि चन्द्र लगे, जीवजो जगपति ।।
स्वामि गुण गावती, निज घरे जावती ।
तिण समे इन्द्र सिंहासन कंपती ।। ४ ।।

।। ढाल-एकवीशा की तर्ज ।।

जिन जनम्याजी, जिण वेला जननी घरे ।
तिण वेलाजी, इन्द्र सिंहासन थरहरे ।।
दाहिणोत्तरजी, जेता जिन जनमे यदा ।
दिशि नायकजी, सोहम ईशान बिहुं तदा ।। १ ।।

।। त्रोटक छंद ।।

तदा खिते इन्द्र मनमां, कोण अवसर ए बन्यो ।
जिन जन्म अवधिनाणे जाणी, हर्ष आनन्द ऊपन्यो ।।

सुघोष आदे घंटनादे, घोषणा सुर में करे । (घण्टा बजाना)
सवि देवी देवा जन्म महोत्सवे, आवजो सुरगिरिवरे ।। २ ।।

।। ढाल पूर्वली ।।

एम सांभलीजी, सुरवर कोडी आवी मले ।
जन्म महोत्सवजी, करवा मेरु ऊपर चले ।।
सोहमपतिजी, बहु परिवारे आविया ।
माय जिननेजी, वांदी प्रभुने बधाविया ।। २ ।।
(चांवल अथवा पुष्प से भगवान को बधाना)

।। त्रोटक ।।

वधावी बोलो, हे रत्नकूँख, धारणी तुज सुत तणो ।
हुँ शक्र सोहम नामे करशु, जन्म महोत्सव अति घणो ।।
एम कही जिन प्रतिबिम्ब स्थापी, पंचरूपे प्रभु ग्रही ।
देवदेवी नाचे हर्ष साथे, (नाचना) सुरगिरि आव्या वही ।। ३ ।।

।। ढाल—पूर्वली ।।

मेरु ऊपरजी, पांडुक वन में चिहुं दिशे ।
शिला ऊपरजी, सिंहासन मन उल्लसे ।
तिहाँ बेसीजी, शक्रे जिन खोले धर्या ।
हरि त्रेसठजी, बीजा तिहां आवी मल्या ।। ३ ।।

।। त्रोटक छन्द ।।

मल्या चोसठ सुरपति तिहां, करे कलश अडजाति ना ।
मागधादि जल तीर्थ औषधि, धूप वली बहु भाँति ना ।।
अच्युतपतिये हुकम कीनो, सांभलो देवा सवे,
खीर जलधि गंगा नीर लावो, झटिति श्रीजिन महोत्सवे ।। ४ ।।

॥ ढाल–विवाहला की तर्ज ॥

सुर सांभली ने संचरिया, मागध बरदामे चलीया ।
पद्म द्रह गंगा आवे, निर्मल जल कलश भरावे ॥ १ ॥

तीरथ फल औषधि लेता, वली खीर समुद्रे जाता ।
जल कलशा बहुल भरावे, फूल चंगेरी थाला लावे ॥ २ ॥

सिंहासन चामर धारी, धूप घाणाँ रकेबी सारी ।
सिद्धांते भाख्या जेह, उपकरण मिलावे तेह ॥ ३ ॥

ते देवा सुरगिरि आवे, प्रभु देखी आनन्द पावे ।
कलशादिक सहु तिहाँ ठावे, भक्ते प्रभुना-गुण गावे ॥ ४ ॥

॥ ढाल–राग धन्याश्री ॥

आतम भक्ति मल्या केई देवा, केता मित्तनु जाई ।
नारी प्रेर्या वलि निज कुलवट, धर्मी धर्म सखाई ॥
जोइस व्यंतर भुवन पतिना, वैमानिक सुर आवे ।
अच्युतपति हुकमे धरी कलशा, अरिहाने नवरावे ॥ आ. १ ॥

अडजाति कलशा प्रत्येके, आठ आठ सहस प्रमाणो ।
चउसठ सहस हुआ अभिषेके, अढ़ीशे गुणा करी जाणो ॥
साठ लाख ऊपर एक कोड़ी, कलशानो अधिकार ।
बासठ इन्द्र तणा तिहां बासठ, लोकपालना चार ॥ आ. २ ॥

चन्द्रनी पंक्ति छासठ छासठ, रविश्रेणी नर लोको ।
गुरु स्थानक सुर केरो एकज, सामानिक नो एको ॥
सोहमपति ईशानपतिनी, इन्द्राणी ना सोल ।
असुरनी दश इन्द्राणी नागनी, बार करे कलोल ॥ आ. ३ ॥

ज्योतिष व्यंतर इन्द्रनो चउ चउ, पर्षदा त्रणनो एको ।
कटकपति अंगरक्षक केरो, एक एक सुविवेको ।।
परचूरण सुरनो एक छेल्लो, ए अढ़ीषें अभिषेको ।
ईशान इन्द्र कहे मुज आपो, प्रभु ने क्षण अतिरेको ।। आ. ४ ।।

तव तस खोले ठवि अरिहाने, सोहमपति मनरंगे ।
वृषभ रूप करि शृंग जले भरी, न्हवण करे प्रभु अंगे ।।
पुष्पादिक पूजी ने छांटे, करि केशर रज रोले ।
मंगल दीवो आरती करतां, सुरवर जय जय बोले ।। आ. ५ ।।

भेरी भूंगल ताल बजावत, वलिया जिन करधारी ।
जननी घर माता ने सोंपी, एणि परे वचन उच्चारी ।।
पुत्र तुम्हारो स्वामी हमारो, अम सेवक आधार ।
पंच धावी रंभादिक थापी, प्रभु खेलावण हार ।। आ. ६ ।।

❀ बत्रीश कोड़ी कनकपणि माणिक, वस्त्रनी वृष्टि करावे ।
पूरण हर्ष करेवा कारण, द्वीप नंदीश्वर जावे ।।
करिय अट्ठाई उत्सव देवा, निज निज कल्प सधावे ।
दीक्षा केवलने अभिलाषे, नित नित जिन गुण गावे ।।आ.७।।

तपगच्छ ईसरसिंह सूरीसर, केरा शिष्य वडेरा ।
सत्य विजय पंन्यास तणे पद, कपूर विजय गंभीरा ।।
खिमा विजय तस सुजस विजयना, श्री शुभविजय सवाया ।
पंडित वीरविजय शिष्ये, जिन जन्म महोत्सव गाया ।।आ.८।।

उत्कृष्टा एकसौ ने सित्तेर, संप्रति विचरे वीश ।
अतीत अनागत काले अनंता, तीर्थंकर जगदीश ।।

❀ अपनी शक्ति के अनुसार रुपया-पैसा भगवान पर निछरावल करना ।

सांधारण ए कलश जे गावे, श्री शुभवीर सवाई ।
मंगल लीला सुख भर पावे, घर घर हर्ष बधाई ।। आ. ६ ।।

।। स्नात्र पूजा संपूर्ण ।।

प्रभुजी का प्रक्षाल अंगलूहनादि करके अष्टप्रकारी पूजा करना

।। अथ अष्टप्रकारी पूजा ।।

।। जल पूजा ।।

जल पूजा जुगते करो, मेल अनादि विनाश ।
जल पूजा फल मुज हजो, मांगो एम प्रभु पास ।।
ज्ञान कलश भरी आतमा, समता रस भरपूर ।
श्री जिन ने नवरावतां, कर्म होय चकचूर ।। १ ।।

मंत्र-ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय, जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय जलं यजामहे स्वाहा ।

।। चंदन पूजा ।।

शीतल गुण जेहमां रह्यो, शीतल प्रभु मुख रंग ।
आत्म शीतल करवा भणी, पूजो अरिहा अंग ।। २ ।।

मंत्र-ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय चंदनं यजामहे स्वाहा ।

।। पुष्प पूजा ।।

सुरभि अखण्ड कुसुम ग्रही, पूजो गत संताप ।
सुम जंतु भव्यज परे, करिये समकित छाप ।। ३ ।।

मन्त्र-ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय पुष्पं यजामहे स्वाहा ।

।। धूप पूजा ।।

ध्यान घटा प्रगटाविये, वाम नयन जिन धूप ।
मिच्छत दुर्गन्ध दूरे टले, प्रगटे आत्म स्वरूप ।। ४ ।।

मन्त्र–ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय धूपं यजामहे स्वाहा ।

।। दीपक पूजा ।।

द्रव्य दीप सुविवेक थी, करतां दुःख होय फोक ।
भाव प्रदीप प्रगट हुवे, भासित लोकालोक ।। ५ ।।

मन्त्र–ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय दीपं यजामहे स्वाहा ।

।। अक्षत पूजा ।।

शुद्ध अखण्ड अक्षत ग्रही, नंदावर्त विशाल ।
पूरी प्रभु संमुख रहो, टाली सकल जंजाल ।। ६ ।।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय अक्षतान् यजामहे स्वाहा ।

।। नैवेद्य पूजा ।।

अणाहारी पद में कर्या, विग्गह गइय अणंत ।
दूर करी ते दीजिये, अणाहारी शिवसंत ।। ७ ।।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय नैवेद्यं यजामहे स्वाहा ।

।। फल पूजा ।।

इंद्रादिक पूजा भणी, फल लावे धरी राग ।
पुरुषोत्तम पूजी करी, मांगे शिवफल त्याग ।। ८ ।।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय फलं यजामहे स्वाहा ।

।। अष्टप्रकारी पूजा समाप्ता ।।

अष्ट प्रकारी पूजा करके लूण उतारने के बाद आरती तथा मंगल दीवा उतारना ।

लूण उतारने के दोहे

लूण उतारो जिनवर अंगे, निर्मल जलधारा मन रंगे । लू. १ ।
जिम जिम तड तड लूणज फूटे, तिम तिम अशुभ कर्मबंध त्रुटे ।लू.२।
नयण सलूणां श्री जिनजीनां, अनुपम रूप दया रस भीनां । लू. ३ ।
रूप सलूणुं जिनजीनुं दीसे, लाज्युं लूण ते जलमां पेसे । लू. ४ ।
त्रण प्रदक्षिणा देइ जलधारा, जलण खेपवीये लूण उदारा । लू. ५ ।
जे जिन ऊपर दुमणो प्राणी, ते एम थाजो लूण ज्युं प्राणी । लू. ६ ।
अगर कृष्णागरु कुंदरु सुगंधे, धूप करी जे विविध प्रबन्धे । लू. ७ ।

।। नवपदजी की आरती ।।

जय जय आरती, नवपद तेरी । आश फली सब, आज हमेरी ।। जय० ।। पहले पद, अरिहंत ने ध्यावो । जनम-जनम का पाप गमावो ।। जय० ।। बीजे सिद्ध बुद्ध ध्यान लगावो । सुर नरनारी मिल गुण गावो ।। जय० ।। त्रीजे सूरि शासन शोभावे । चोथे पाठक भणे भणावे ।। जय० ।। धर्म सेवन में साधु शूरा । दर्शन ज्ञान संयम तप पूरा ।। जय० ।। सकल देव गुरु धर्म ने सेवो । चउगति चूरण अनुपम मेवो ।। जय० ।। नवपद सेवो भवि भावे । ऋद्धि सिद्धि सब रंग भर आवे ।। जय० ।। उज्जैन नगरे श्री श्रीपाले । सेव्या सह मयणा त्रिकाले ।। जय० ।। जय जय मंगल जय जग बोले । नवपद चन्द्र प्रसाद अमोले ।। जय० ।। इति.

श्री मंगल दीवो

दीवो रे दीवो प्रभु मंगलिक दीवो, आरती उतारीने बहु चिरंजीवो ।। दी० १ ।। सोहामणुं घेर पर्व दीवाली, अंबर खेले अमरा बाली ।। दी० २ ।। दीपाल भणे एणे कुल अजुवाली, भावे भगते विघन निवारी ।। दी० ३ ।। दीपाल भणे एणे ए कलिकाले, आरती उतारी राजा कुमारपाले ।। दी० ४ ।। अम घेर मंगलिक तुम घेर मंगलिक, मंगलिक चतुर्विध संघने हो जो ।। दी० ५ ।।

दसवाँ दिन

पारणा के दिन की विधि

पारणे के दिन कम से कम बियासणे का पच्चक्खाण करके हमेशा मुताबिक प्रतिक्रमण, पडिलेहन, देववंदन, वासक्षेपपूजा, गुरुवंदन इत्यादि करके स्नानादि करके स्नात्र तथा सत्तरभेदी पूजा पढ़ाना ।

जाप—

"ॐ ह्रीं श्री विमलेश्वर देव चक्रेश्वरी देवी पूजिताय श्री सिद्धचक्राय नमः" नवकारवाली २० । काउसग्ग ९ लोगस्स का । स्वस्तिक ९ । खमासमण ९ । प्रदक्षिणा ९ ।

परिशिष्ट-२

नवपदजीनी ४ ढालोनुं स्तवन

(ढाल पहली)

आसो मासे ते ओली आदरी रे लोल,
धर्युं नवपदजीनुं ध्यान रे;
श्रीपाल महाराजा मयणासुन्दरी रे लोल० । १ ।

मालव देशनो राजीयो रे लोल,
नामे प्रजापाल भूप रे । श्रीपाल० । २ ।

सौभाग्य सुन्दरी रूप सुन्दरी रे लोल,
राणी बे रूप भण्डार रे । श्रीपाल० । ३ ।

एक मिथ्यात्वी धर्म ने रे लोल,
बीजीने जैन धर्म राग रे । श्रीपाल० । ४ ।

पुत्री एकेकी बेउने रे लोल,
वधे जेम बीज केरो चन्द्र रे । श्रीपाल० । ५ ।

सौभाग्य सुन्दरी सुर सुन्दरी रे लोल,
भणावे मिथ्यात्वी नी पास रे । श्रीपाल० । ६ ।

रूपसुन्दरी मयणासुन्दरी रे लोल,
भणावे जैन धर्म सार रे । श्रीपाल० । ७ ।

रूप कला शोभती रे लोल,
चोसठ कलानी जाण रे । श्रीपाल० । ८ ।

बेठो सभामां राजवी रे लोल,
बोलावे बालिका दोय रे । श्रीपाल० । ९ ।

सोले शणगारे शोभंती रे लोल,
आवी ऊभी पितानी पासे दोय रे । श्रीपाल० । १० ।

विद्या भणवानुं जोवुं पारखुं रे लोल,
राजा हवे प्रश्न रे । श्रीपाल० । ११ ।

साखी:— जीव लक्षण शुं जाणवु, कोण कामदेव धरनार ।
शुं करे परणी कुमारी का, उत्तम कुल शुं सार ।।
राजा पूछे चारनो, आपो उत्तर एक ।
बुद्धिशाली कुंवरी, उत्तर आपे एक ।।
श्वास लक्षण पहेलुं जीवनुं, रति कामदेव धरनार ।
जाय कुल उत्तम जातिमां, कन्या परणीने सासरे जाय ।।

ढाल:— चारे प्रश्ननो उत्तर एकमां रे लोल,
सासरें जाय एम थाय रे । श्रीपाल० । १२ ।

साखी:— प्रथम अक्षर विना, जीवाडनार जगनो कह्यो ।
मध्यम अक्षर विना, संहार ते जगनो थयो ।।
अंतिम अक्षर विना, सौ मन मीठु होय ।
आपो उत्तर एकमां, जेम स्त्रीने वहालुं होय ।।

ढाल:— आपे उत्तर मयणासुंदरी रे लोल,
मारी आँखोमां काजल रे । श्रीपाल० । १३ ।

साखी:— पहेलो अक्षर काढतां, स्नेहे नरपति सोय ।
मध्याक्षर विना जाणवुं, स्त्री मन वहालुं होय ।।
त्रीजे अक्षर काढतां, पंडित प्यारो थाय ।
मांगुं उत्तर एकमां, ताते पुत्री ने कह्यो ।।

ढाल:— मयणाए उत्तर आपीयो रे लोल,
अर्थ त्रणेनो वादल थाय रे । श्रीपाल० । १४ ।

राजा पूछे सुरसुंदरी रे लोल.
कहो पुन्यथी शुं पमाय रे । श्रीपाल० । १५ ।

धन यौवन सुंदर देहडी रे लोल,
चोथो मनवल्लभ भरतार रे । श्रीपाल० । १६ ।

कहे मयणा निज तातने रे लोल,
सहु पामे पुन्य पसाय रे । श्रीपाल० । १७ ।

शिलयव्रते शोभे देहडी रे लोल,
बीजी बुद्धि न्याये करी होय रे । श्रीपाल० । १८

गुणवंत गुरुनी संगति रे लोल,
मले वस्तु पुन्यने योग रे । श्रीपाल० । १९ ।

बोले राजा अभिमान करी रे लोल,
करूं निर्धनने धनवंत रे । श्रीपाल० । २० ।

सर्व लोको सुख भोगवे रे लोल,
ए सघलो छे मारो पसाय रे । श्रीपाल० । २१ ।

सुरसुंदरी कहे तातने रे लोल,
ए साचामांशानो संदेह रे । श्रीपाल० । २२ ।

राय तुठी सुरसुंदरी रे लोल,
परणावी पहेरामणी कीध रे । श्रीपाल० । २३ ।

शंखपुरीनो राजीयो रे लोल,
जेनुं अरिदमन नाम रे । श्रीपाल० । २४ ।

राय सेवार्थे आवीयोरे लोल,
सुरसुंदरी आपी सोय रे । श्रीपाल० । २५ ।

राये मयणाने पूछीयुं रे लोल,
वातमां तने संदेह रे । श्रीपाल० । २६ ।

मयणा कहे रायने रे लोल,
तमे शाने करो छो अभिमान रे । श्रीपाल० । २७ ।

संसारमां सुख दुःख भोगवे रे लोल,
ते तो कर्मनो जाणो पसाय रे । श्रीपाल० । २८ ।

राजा क्रोधे बहु कलकल्यो रे लोल,
भांखे मयणाशुं रोष वयण रे । श्रीपाल० । २९ ।

रत्नहिंडोले तुं हिंचती रे लोल,
पहेरी रेशमी ऊँचा चीर रे । श्रीपाल० । ३० ।

जगत सौ जी जी करे रे लोल,
थारी चाकरी करे पग सेव रे । श्रीपाल० । ३१ ।

ते मारा पसायथी जाणजे रे लोल,
सौ रूली नाखुं पल मांय रे । श्रीपाल० । ३२ ।

मयणा कहे तुम कुलमां रे लोल,
उपजवानो क्यां जोयो जोष रे । श्रीपाल० । ३३ ।

कर्म संयोगे उपनी रे लोल,
मल्या खान-पान आराम रे। श्रीपाल०। ३४।

तमे म्होरे मने म्हलावता रे लोल,
मुज कर्म तणो छे पसाय रे। श्रीपाल०। ३५।

राजा कहे कर्म उपरे रे लोल,
दिसे मन घणो हठवाद रे। श्रीपाल०। ३६।

कर्मे आपेला भरतारने रे लोल,
परणावी उतारू गुमान रे। श्रीपाल०। ३७।

राजानो क्रोध निवारवा रे लोल,
लई आव्यो रयवाड़ी प्रधान रे। श्रीपाल०। ३८।

नवपद ध्यान पसायथी रे लोल,
सवि संकट दूरे पलाय रे। श्रीपाल०। ३९।

कहे न्यायसागर पहेली ढालमां रे लोल,
नवपदे नवनिधि थाय रे। श्रीपाल०। ४०।

(ढाल बीजी)

राजा चाल्यो रयवाड़ी ए,
साथे लीधो सैन्यनो परिवार रे;
साहेली मोरी ध्यान धरो अरिहंतनुं। साहेली १।

ढोल निशान तिहां घुरके,
बरछीओ ने भालानो झलहलार रे। साहेली०। २।

धुल उडे ने लोको आवतां,
राजा पूछे प्रधानने ए कोण रे। साहेली०। ३।

प्रधान कहे सुणो भूपति,
ए छे सातसौ कोढियानुं सैन्य रे । साहेली० । ४ ।

राजानी पासे याचवा,
आवे कोढिया स्थापी राजा एक रे । साहेली० । ५ ।

कोढे गली छे जेनी अंगुली,
पहेचवा आव्या कोढिया केरो दूत रे ।साहेली० ।६।

राणी नहिं अमारा राय ने,
उच्चकुलनी कन्या मले कोय रे । साहेली० । ७ ।

दाढ़ खरे के रे जाणे कांकरो,
नयन खटके ते तो रेणु समान रे । साहेली० । ८ ।

नयणे खटके जिम पालो,
राजाना हैडे खटके मयणानां बोल रे । साहेली० । ९ ।

कोढिया राजाने कहेरावीयुं,
आवजो नयरी उज्जयनीमांय रे । साहेली० । १० ।

कीर्ति अविचल मारी राखवा,
आपीश मारी कुंवारी राज कन्याय रे । साहेली० ।११

उंबर राणो हवे आवीयो,
साथे सातसौ कोढियानुं सैन्य रे । साहेली० । १२ ।

आव्यो वरघोड़ो मध्यचोकमां,
खच्चर ऊपर बैठो उंबरदाय रे । साहेली० । १३ ।

कोई लुला ने कोई पांगुला,
मुख ऊपर माखीना भणकार रे । साहेली० । १४ ।

सोर बकोर सुणी सामटा,
लाखो लोको जोवा भेगा थाय रे । साहेली० । १५ ।

सर्वे मली लोको पूछता,
भूत-प्रेत के रखे होय पिशाच रे । साहेली० । १६ ।

भूतड़ा जाणीने भसे कूतरा,
लोको मन थयो छे उत्पात रे । साहेली० । १७ ।

जान लइने अमें आवीया,
परणे अमारो राणो राज कन्याय रे । साहेली० ।१८।

कौतुक जोवाने लोको साथमां,
उंबर राणो आव्यो रायनी पास रे । साहेली ।१९।

हवे राय कहे मयणा सांभलो,
कर्मे आव्यो करो भरतार रे । साहेली० । २० ।

तमे करो अनुभव सुखनो,
जुओ तमारो कर्म तणो पसाय रे । साहेली० ।२१।

कहे 'न्यायसागर' बीजी ढालमां,
नवपद ध्याने ध्यावे मंगलमाल रे । साहेली० ।२२।

(ढाल त्रीजी)

तात आदेशे मयणा चिंतवे रे लोल,
जे ज्ञानीनुं दीठुं थाय रे;
कर्म तणी गति पेखजो रे । लोल० । १ ।

अंश मात्र खेद नथी आणती रे लोल,
नहीं मुखड़ानो रंग पलटाय रे । कर्म० । २ ।

कहे राजानो के रंकनो रे लोल,
पिता सोंपे छे पंचनो साखरे। कर्म०। ३।

एने देवनी पेरे आराधवा रे लोल,
उत्तमकुलनी स्त्रीनो आचार रे। कर्म०। ४।

एम विचारे मयणासुन्दरी रे लोल,
कर्युं तात वचन प्रमाण रे। कर्म०। ५।

मुख रंग पुनमनी चांदली रे लोल,
स्नान लग्न वेला जाणे शुद्ध रे। कर्म०। ६।

आवी उंबरराणानी डाबी बाजुए रे लोल,
जाते करे छे हस्त मेलाप रे। कर्म०। ७।

कोढ़ीयानो राणो कहे रायने रे लोल,
काग कंठे मोती न सुहाय रे। कर्म०। ८।

होय दासी कन्या तो परणावजो रे लोल,
कोढ़ीया साथे शुं राजकन्याय रे। कर्म०। ९।

माता मयणानी झुरती रे लोल,
रूवे कुटुम्ब सर्व परिवार रे। कर्म०। १०।

राजा ते हठ मूके नहिं रे लोल,
कहे मारो नहिं कोई दोष रे। कर्म०। ११।

कोई राजाना दोषने धिक्कारता रे लोल,
कोई कहे कन्या अपराध रे। कर्म०। १२।

देखी राजकुमारी सती दीपती रे लोल,
रोगी सर्व थया रसीयात रे। कर्म०। १३।

चाली मयणा उंबरनी साथमांरे लोल,
ज्यां छे कोढ़ियातणो आवास रे। कर्म०। १४।

हवे उंबरराणो मन चिंतवे रे लोल,
धिकधिक मारो अवतार रे। कर्म०। १५।

सुंदर रंगीली छबी शोभती रे लोल,
तेनुं जीवन में कर्युं धुल रे। कर्म०। १६।

कहे उंबरराणो मयणासुंदरी रे लोल,
तमे उंडो कर्यो जे आलोच रे। कर्म०। १७।

तारी सोना सरीखी छे देहडी रे लोल,
मारी संगतिथी थाशे विनाश रे। कर्म०। १८।

तूं तो रूपे करी रंभा सारीखी रे लोल,
भुज कोढ़िया साथे शुं स्नेह रे। कर्म०। १९।

पति उंबरराणाना वचन सांभली रे लोल,
मयणा हैडे दुःख न माय रे। कर्म०। २०।

ढलक ढलक आंसू ढले रे लोल,
काग हसे हेडक जीव जाय रे। कर्म०। २१।

साखी:— कमलिनी जलमां वसे चन्द्र वसे आकाश।
जे जिहां रे मन वसे ते तिहां रे पास॥
हवे मयणा कहे उंबररायने रे लोल,
तमे व्हाला छो जीवनप्राण रे। कर्म०। २२।

पश्चिम रवि उगे नहि रे लोल,
नहिं लोप जलधि मर्याद रे। कर्म०। २३।

सती अवर पुरुष इच्छे नहिं रे लोल,
कदी प्राण जाय परलोक रे। कर्म०। २४।

पंचनी साखे परणावीयो रे लोल,
अवर पुरुष बंधव मुज होय रे। कर्म०। २५।

हवे पाये लागीने विनवे रे लोल,
तमे बोलो विचारीने बोल रे। कर्म०। २६।

रात्री बीती एम वातमां रे लोल,
बीजे दिने थयो प्रभात रे। कर्म०। २७।

हवे मयणा आदीश्वर भेटवा रे लोल,
जाय साथे लेई भरतार रे। कर्म०। २८।

प्रभु कुमकुम चन्दने पूजीया रे लोल,
वली प्रभु कंठे ठवी फुलमाल रे। कर्म०। २९।

करी चैत्यवंदन भावे भावना रे लोल,
धरे मयणा काउसग्ग ध्यान रे। कर्म०। ३०।

प्रभु हाथे बीजोरूं शोभतुं रे लोल,
वली कंठे सोहे फुलमाल रे। कर्म०। ३१।

शासनदेव सहु देवता रे लोल,
आप्यो बीजोरूं ने फुलमाल रे। कर्म०। ३२।

लीधुं उंबरराणाए एना हाथमां रे लोल.
मयणा हैडे हर्ष न माय रे। कर्म०। ३३।

पौषधशालामां गुरु वांदवा रे लोल,
चाली मयणा साथे भरतार रे। कर्म०। ३४।

गुरु आपे धर्मनी देशना रे लोल,
दोहीलो मनुष्य अवतार रे । कर्म० । ३५ ।

पांचे भूल्यो ने चारे चुकव्यो रे लोल,
त्रणनु जाण्युं नहिं नाम रे । कर्म० । ३६ ।

जग ढंढेरो फेरव्यो रे लोल,
श्रावक मारू नाम रे । कर्म० । ३७ ।

लल्ला शुं लागी रह्यो रे लोल,
व्हांला रह्यो छे हजूर रे । कर्म० ३८ ।

उंबर मयणा गुरु वांदीया रे लोल,
गुरुए दीधो धर्मलाभ रे । कर्म० । ३९ ।

सखी परिवारे शोभती रे लोल,
आज सखी न दीसे एक रे । कर्म० । ४० ।

सर्व वृत्तांत सुणावीयो रे लोल,
एक वातनु छे मने दुःख रे । कर्म० ४१ ।

देखी जिनशासननी हेलना रे लोल,
करे मूर्ख मिथ्यात्वी लोक रे । कर्म० । ४२ ।

हवे मयणा गुरुने विनवे रे लोल,
मटे रोग जो भरतार रे । कर्म० । ४३ ।

लोक निंदा टले जेहथी रे लोल,
उपाय कहो गुरुराय रे । कर्म० । ४४ ।

यंत्र जड़ीबुट्टी औषधी रे लोल,
मणी मन्त्र बीजा उपाय रे । कर्म० । ४५ ।

गुरु कहे मयणा सांभलो रे लोल,
नहि साधुनो एह आचार रे । कर्म० । ४६ ।

गुरु कहे मयणा सुंदरी रे लोल,
आराधो नवपद ध्यान रे । कर्म० । ४७ ।

जेथी विघ्न सहु दूरे थशे रे लोल,
धर्म ऊपर राखो मन दृढ़ रे । कर्म० । ४८ ।

कहे 'न्यायसागर' त्रीजी ढालमां रे लोल,
तमे सांभलजो नरनार रे । कर्म० । ४९ ।

(ढाल चौथी)

मयणा सिद्धचक्र आराधे गुलाबमां,
रमतीती निज पति उंबरनी साथ;
जापोने जपती नो० ।१।

पहेले पदे पूजो अरिहंत गुलाबमां,
हण्या घाती अघाती धूजे । जापोने० । २ ।

त्रणलोकनी ठकुराई छाजे गुलाबमां,
वाणी पुर जगतमां गाजे । जापोने० । ३ ।

बीजे सोहे सिद्ध महाराज गुलाबमां,
त्रण लोकमां थई शिरताज । जापोने० । ४ ।

त्रीजे पदे आचारज जाणो गुलाबमां,
मली लाकड़ी अंध प्रमाणो । जापोने० । ५ ।

चौथे पदे उपाध्याय सोहे गुलाबमां,
भणे भणावे भवि मन मोहे । जापोने० । ६ ।

पद पांचमे साधु मुनिराया गुलाब मां,
गुण सत्तावीशे सोहाया । जापोने० । ७ ।

मन वचन गोपवी काया गुलाबमां,
वंदु तेहवा मुनि पद पाया । जापोने० । ८ ।

छट्ठे दर्शन पद छे मूल गुलाबमां,
कोई आवे नहिं तस तोल । जापोने० । ९ ।

सोहे सातमु पद वर ज्ञान गुलाबमां,
तेना भेद एकावन जाणो । जापोने० । १० ।

ज्ञान पचमु केवल पाया गुलाबमां,
त्रणलोकना भाव जणाया । जापोने० । ११ ।

पद आठमे चारित्र आवे गुलाबमां,
देवो इच्छा करे न पावे । जापोने० । १२ ।

भवि जीव ते भावना भावे गुलाबमां,
बहु भाग्ये उदयमां आवे । जापोने० । १३ ।

करो नवमे तपपद भावे गुलाबमां,
आठ कर्मो बली राख थावे । जापोने० । १४ ।

सिद्धो आतम अनंता पावे गुलाबमां,
देव देवी मली गुण गावे । जापोने० । १५ ।

प्रभु पूजो केसर मां घोली गुलाबमां,
भरी हरखे हेम कचोली । जापोने० । १६ ।

भरी शुद्ध जले अंगुली गुलाबमां,
चंउगतिनी आपद चोली । जापोने० । १७ ।

दुर्गतिना दुःख दूर ढोली गुलाबमां,
आसो सुदी सातमथी ओली । जापोने० । १८ ।

करी नव आयंबिलनी ओली गुलाबमां,
मली सरखी साहेलीनी टोली । जापोने० । १९ ।

मयणा घरे नवपदनुं ध्यान गुलाबमां,
पति काया थई कंचन समान । जापोने० । २० ।

सहु मंत्रमां छे शिरदार गुलाबमां,
तमे आराधो सहु नरनार । जापोने० । २१ ।

'न्यायसागर' कहे ढाल चौथी गुलाबमां,
तमे पूजोने ज्ञाननी पोथी । जापोने० । २२ ।

परिशिष्ट–३

तखतगढ़ चातुर्मास विवरण

।। सद्गुरुभ्यो नमः ।।

जैनधर्मदिवाकर–राजस्थानदीपक–मरुधरदेशोद्धारक–परम-पूज्य **आचार्यदेव श्रमद्विजयसुशील सूरीश्वरजी म० सा०** के विक्रम संवत् २०३९ की साल में **श्रीतखतगढ़ नगर** में अनुपम शासन प्रभावना पूर्वक सम्पन्न हुए **चातुर्मास** का संक्षिप्त वर्णन ।

(१)

चातुर्मासार्थ नगर–प्रवेश

श्रीवीर सं० २५०९ विक्रम सं० २०३९ नेमि सं० ३४ के आषाढ़ सुद ११ बुधवार दिनांक २०–७–१९८३ को तखतगढ़ नगर में शास्त्र-विशारद-साहित्यरत्न-कविभूषण परमपूज्य आचार्यदेव **श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म० सा०** ने पूज्य मुनिराज श्री प्रमोदविजयजी म० सा०, पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तमविजयजी म० सा० तथा पूज्य मुनिराज श्री अरिहंतविजयजी म० सा० आदि समेत श्रीसंघ के अदम्य उत्साह के साथ बेन्ड युक्त स्वागतपूर्वक प्रवेश किया । पूज्य साध्वी श्री भाग्यलता श्रीजी म० आदि ने भी प्रवेश किया । अनेक गहुंलियाँ हुईं । दोनों विशाल श्री आदिनाथ जिनमन्दिरों के दर्शन किये । पश्चात् मन्दिरगली के नूतन विशाल

'श्री आदिनाथ जैन आराधना भवन' में प्रथम चातुर्मासार्थे मंगल-प्रवेश किया। व्याख्यान के पाट पर पूज्यपाद आचार्य म० सा० आदि बिराजमान हुए।

श्री जैन धार्मिक पाठशाला की बालिकाओं का स्वागत-गीत होने के पश्चात् पूज्यपाद आचार्य म० सा० का **मंगलप्रवचन** तथा **'चातुर्मास की विशिष्टता'** पर व्याख्यान होने के बाद विद्वान् प्रवक्ता पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तमविजयजी म० श्री का भी प्रवचन हुआ। अन्त में सर्वमंगल के बाद प्रभावना हुई। संघ में से १०८ आयंबिल हुए। दोपहर में पंचकल्याणक की पूजा (प्रभावना युक्त) जिन-मन्दिर में पढ़ाई गई। प्रतिदिन परमपूज्य आचार्य म० श्री के प्रवचन का लाभ श्रीसंघ को बराबर मिलता रहा।

(२)

आषाढ़ शुक्ला १३ शुक्रवार दिनांक २२-७-८३ से संघ में चातुर्मास पूर्णाहुति कार्तिक शुक्ला १५ रविवार दिनांक २०-११-८३ तक क्रमशः अखण्ड एकेक अट्ठम तप करने का प्रारम्भ हुआ। अट्ठम करने वाले तपस्वी महानुभाव को बहुमान तरीके तिलक कर ५१ रुपयों की प्रभावना श्रीसंघ की ओर से व्याख्यान में देने का भी कार्यक्रम चालू रहा।

(३)

श्रावण (आषाढ़) वद ४ शुक्रवार दिनांक २९-७-८३ को आदेश लेने वाले शा० भूरमल धनाजी **पू. श्रीभगवतीसूत्र** को रथ में पधराकर पूज्यपाद आचार्य म० सा० आदि चतुर्विध संघ सहित वाजते-गाजते अपने घर पर ले गये। ज्ञानपूजन-मंगल प्रवचन के पश्चात् प० पू० आ० म० सा० की प्रेरणा से शा० भूरमलजी ने उद्यापन-महोत्सव कराने की प्रतिज्ञा ली। प्रभावना की। रात्रिजागरण में भी प्रभावना की।

।। पू० श्रीभगवतीजीसूत्र का प्रारम्भ ।।

श्रावण (आषाढ़) वद ५ शनिवार दिनांक ३०-७-८३ को व्याख्यान के हॉल में आदेश लेकर पूज्यपाद आचार्य म० श्री को शा० शुकराज दानाजी की ओर से **पू० श्रीभगवतीजी सूत्र** को वहोराया तथा **श्रीविक्रमचरित्र** को शा० चुनीलाल वीसाजी की ओर से वहोराया। पहला ज्ञानपूजन गीनी से शा० ओटरमल ताराचन्दजी केलावाला ने किया। दूसरा पूजन रूपानाणा से शा० पूनमचन्द जीतमल भूताजी ने किया। तीसरा पूजन रूपानाणा से शा० देवीचन्द श्रीचन्दजी ने किया। चौथा पूजन रूपानाणा से शा० जुवानमल सुजाजी ने किया। पाँचवाँ पूजन शा० जीवराज पूनमचन्दजी ने किया तथा धूप-दीपक आदि का पूजन शा० ओटरमल ताराचन्दजी केलावाला ने फिर किया। पीछे सकल संघ ने भी रूपानाणा से पू० श्री भगवतीजी सूत्र का पूजन किया। पश्चाद् प० पू० आ० म० श्री ने पू० श्रीभगवतीजी सूत्र का तथा श्रीविक्रमचरित्र-वांचन का सोत्साह प्रारम्भ किया।

अन्त में सर्वमंगल के बाद श्रीसंघ की ओर से प्रभावना की तथा पैंतालीस आगम की भी प्रभावनायुक्त पूजा पढ़ाई। श्रीनमस्कार महामन्त्र के नव दिन के आराधना तप का भी प्रारम्भ हुआ। इसमें ३२५ भाई-बहिन विधिपूर्वक आराधना करने के लिये एकत्र हुए।

(१) इस दिन एकासणां शा० केसरीमल नरसाजी की तरफ से हुआ। प्रतिदिन तत्त्वगर्भित पू० श्रीभगवतीजी सूत्र तथा श्रीविक्रमचरित्र श्रवण करने का सुन्दर लाभ श्रीसंघ को सानंद मिलता रहा।

(२) श्रावण (आषाढ़) वद ६ रविवार दिनांक ३१-७-८३ को दूसरा एकासणां शा० लालचन्दजी घनाजी की ओर से हुआ।

(३) श्रावण (आषाढ़) वद ७ सोमवार दिनांक १-८-८३ को तीसरा एकासणां श्रीसंघ की तरफ से हुआ।

(४) श्रावण (आषाढ़) वद ८ मंगलवार दिनांक २-८-८३ को आयंबिल संघवी श्रीदेवीचन्द श्रीचन्दजी की ओर से हुआ।

(५) श्रावण (आषाढ़) वद ९ बुधवार दिनांक ३-८-८३ को एकासणां श्रीमती कंकुबाई जवानमलजी की तरफ से हुआ।

(६) श्रावण (आषाढ़) वद १० गुरुवार दिनांक ४-८-८३ को एकासणां शा० बाबूलाल हिन्दुजी की ओर से हुआ।

(७) श्रावण (आषाढ़) वद ११ शुक्रवार दिनांक ५-८-८३ को एकासणां श्रीसंघ की तरफ से हुआ।

(८) श्रावण (आषाढ़) वद १२-१३ शनिवार दिनांक ६-८-८३ को भी एकासणां श्रीसंघ की ओर से हुआ।

(९) श्रावण (आषाढ़) वद १४ रविवार दिनांक ७-८-८३ को आयंबिल शा० भीमराज चमनाजी की तरफ से हुआ।

श्रीनमस्कार महामन्त्र तप की नौ दिन की आराधना विधि-पूर्वक पूर्ण हुई।

(५)

अट्ठम तप का प्रारम्भ

श्रावण सुद ४ शुक्रवार दिनांक १२-८-८३ को श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु का अट्ठम तप (तेला) प्रारम्भ हुआ। उसमें अट्ठम

करने वाले १०८ उपरान्त भाई-बहिनों की संख्या थी। इन सभी के पारणे श्रावण सुद ७ सोमवार दिनांक १५-८-८३ को श्रीसंघ की ओर से हुए।

(६)

अष्टाह्निका महोत्सव का प्रारम्भ

श्रावण सुद ८ मंगलवार दिनांक १६-८-८३ को परम पूज्य आचार्यदेव **श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म० सा०** को चलती हुई **श्रीवर्द्धमान तप** की ४७ मी ओली की पूर्णाहुति निमित्ते श्रीसंघ की तरफ से **श्रीउवसग्गहरं पूजन** तथा **श्रीसिद्धचक्र महापूजन** युक्त **अष्टाह्निका महोत्सव** का प्रारम्भ हुआ।

(१) उसी दिन **'श्रीउवसग्गहरं पूजन'** शा० धनरूपचन्द कृत्स्नाजी बलदरा वाले की ओर से प्रभावनायुक्त विधिपूर्वक पढ़ाया गया। प्रतिदिन पूज्य श्रीभगवतीसूत्र तथा श्रीविक्रमचरित्र के प्रवचन के साथ प्रभावनायुक्त पूजा का भी कार्यक्रम चालू रहा।

(२) श्रावण सुद ९ बुधवार दिनांक १७-८-८३ को ओली के पारणा निमित्ते पूज्यपाद आचार्य म० सा० चतुर्विध संघ युक्त वाजते-गाजते शा० बाबूलाल रकबीचन्दजी बलदरा वाले के घर पर पधारकर पगलां किये। वहां ज्ञानपूजन तथा मंगल प्रवचन के पश्चाद् प्रभावना हुई।

(३) श्रावण सुद १० गुरुवार दिनांक १८-८-८३ को दीपक प्रगटाकर मात्र पाँच मिनिट का केवल शीरे के एकासणे का कार्यक्रम रहा। उसमें १५१ उपरान्त भाई-बहिनों के एकासणां हुए।

(४) श्रावण सुद १४ सोमवार दिनांक २२-८-८३ को श्रीगौतमस्वामी भगवन्त के छट्ठ (बेला) का प्रारम्भ हुआ। उसमें

१०१ भाई-बहिनों ने बेला किया ।

(५) श्रावण सुद १५ मंगलवार दिनांक २३-८-८३ को **'श्री सिद्धचक्र महापूजन'** श्रामनी चुनीबाई खसाजी की ओर से विधि-पूर्वक प्रभावनायुक्त पढ़ाया गया ।

(६) भादरवा (श्रावण) वद १ बुधवार दिनांक २४-८-८३ को पू० साध्वी श्रीदिव्यप्रज्ञाश्रीजी म० को श्री वर्द्धमान तप की ४५ वीं ओली की तथा पू० साध्वी श्रीशीलगुणाश्रीजी म० को ४८ वीं ओली की पूर्णाहुति के पश्चात् पारणा के उपलक्ष में पगलां करने के लिये परम पूज्य आचार्य भगवन्त चतुर्विध संघ सहित वाजते-गाजते शा० जसराज कपूरचन्दजी के घर पर पधारे । वहां पर ज्ञानपूजन और मंगलप्रवचन के बाद प्रभावना हुई । उसी दिन श्रीगौतमस्वामी के छट्ठ (बेला) करने वाले के पारणे क्षीर से एकासणां युक्त हुए ।

(७)

श्रीपर्युषणा महापर्व की आराधना

भादरवा (श्रावण) वद ११ शनिवार दिनांक ३-९-८३ को **श्रीपर्युषणा महापर्व की आराधना** का आरम्भ हुआ । तीन दिन अट्ठाई व्याख्यान का, बाद में पाँच दिन श्रीकल्पसूत्र व्याख्यान का लाभ श्रीसंघ को प० पू० आचार्य म० सा० तथा पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तम विजयजी म० सा० द्वारा सुन्दर मिला । उसमें चौंसठ पहोरी पौषधधारी एकासणां करने वाले तपस्वियों के एकासणे बारस के दिन शा० सतराजी सरूपचन्दजी की ओर से हुए । तेरस के दिन एकासणे शा० भगवानमलजी अगवरी वाले की तरफ से हुए ।

अमावस के दिन एकासणे शा० सतराजी सरूपजी की तरफ से हुए । श्रीकल्पसूत्र को शा० नरसाजी रामाजी अपने घर पर

वाजते-गाजते प० पू० आ० म० सा० आदि चतुर्विध संघ युक्त लाकर पधराये तथा ज्ञानपूजन एवं मंगलाचरण के बाद प्रभावना की। रात्रिजागरण में भी प्रभुभक्ति के पश्चाद् प्रभावना की।

भादरवा सुद ३ शुक्रवार दिनांक ६-६-८३ को व्याख्यान में शा० ओटरमल ताराचन्दजी केलावाले की ओर से संघपूजा हुई। प० पू० आ० म० सा० को वन्दनार्थे बस द्वारा आये हुए डोरडा श्रीसंघ की तरफ से व्याख्यान के बाद प्रभावना हुई।

भादरवा सुद ४ शनिवार दिनांक १०-६-८३ को बारसा सूत्र का श्रवण, चैत्यपरिपाटी एवं संवत्सरी प्रतिक्रमण का कार्यक्रम सुन्दर रहा। श्रीपर्युषण महापर्व में प्रतिदिन प्रभुजी की रचाती हुई भव्य आंगी का उत्तम लाभ श्रीसंघ को मिलता रहा। नूतन **'श्रीआदिनाथ जैन आराधना भवन'** में सर्व प्रथम बार देवद्रव्य, ज्ञान-द्रव्य, साधारणद्रव्य आदि की विशिष्ट उपज एवं सकल संघ के अपूर्व उत्साह के साथ **श्रीपर्युषणा महापर्व** की मंगल आराधना सुसम्पन्न हुई।

भादरवा सुद ५ रविवार दिनांक ११-६-८३ को तपस्वियों का **पारणा** एवं श्रीसंघ का **स्वामी वात्सल्य** सुश्री गजीबाई के मासक्षमण निमित्ते शा० पूनमचन्द, जसराज, धीसूलाल, त्रिलोक चन्दजी परकाजी की तरफ से हुआ।

।। चतुर्विध संघ में हुई नोंध पात्र तपश्चर्या ।।

चातुर्मास प्रारम्भ से आज तक हुई नोंध पात्र विशेष तपश्चर्या नीचे मुजब है—

❀ चातुर्मास दरम्यान श्रृंखलाबद्ध संलग्न विशिष्ट प्रभावना-युक्त महामंगलकारी श्री अट्ठम तप की आराधना चालू रही।

(साधु–साध्वी वर्ग में)

(१) परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद्विजयसुशीलसूरीश्वरजी म० सा० की श्री वर्द्धमान तप की ओली की पूर्णाहुति हुई ।

(२) पूज्य साध्वी श्री भाग्यलता श्रीजी म० की चल रही श्री गौतमस्वामीजी के छट्ठ की तपश्चर्या में १८५ छट्ठ हो गये हैं। आगे चालू हैं ।

(३) पूज्य साध्वी श्री भव्यगुणा श्रीजी म० तथा पूज्य साध्वी श्री प्रफुल्लप्रभा श्रीजी म० की श्रीवर्षी तप की आराधना चल रही है ।

(४) पूज्य साध्वी श्री दिव्यप्रज्ञा श्रीजी म० ने क्रमशः ४५ वीं श्री वर्द्धमान तप की ओली पूर्ण कर ४६ वीं ओली का प्रारम्भ कर दिया है तथा पूज्य साध्वी श्री शीलगुणा श्रीजी म० ने भी ४८ वीं श्री वर्द्धमान तप की ओली पूर्ण कर ४९ वीं ओली का प्रारम्भ कर दिया है ।

(५) पूज्य साध्वी श्री यशःप्रभा श्रीजी म० की क्रमशः १०८ अट्ठम की तपश्चर्या चल रही है । उसमें संलग्न ग्यारह उपवास की तपश्चर्या की है ।

(श्रावक-श्राविका वर्ग में)

(१) श्रीनमस्कार महामन्त्र के ९ एकासणे ।

(२) श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथ के अट्ठम (तेले) ।

(३) एक ही द्रव्य शीरे का ठाम चउविहार एकासणे ।

(४) श्रीगौतमस्वामीजी भगवन्त के छट्ठ (बेले) ।

(५) श्रीअरिहन्त पद की आराधना स्वरूप दो द्रव्य के एकासणे ।

(६) एक ही द्रव्य (चावल) के आयंबिल ।

उपरोक्त तपश्चर्या अनेक संख्या में विशेष रूप से हुई ।

श्रीपर्युषणा महापर्व के उपलक्ष में

१. मासखमण यानी एक महिने के उपवास दुआणा वाले माली असलाजी दोलाजी ने किये ।

२. सुश्री गजीबाई तिलोकचन्दजी ने भी मासखमण किया, तखतगढ़ ।

३. श्रीमान् कान्तिलाल धनरूपचन्दजी ने पंदरह उपवास किये, तखतगढ़ ।

४. श्रीलसुबहिन सरेमलजी ने भी पंदरह उपवास किये, तखतगढ़ ।

५. श्रीपुरीबाई रिखबचन्दजी ने दस उपवास किये, तखतगढ़ ।

६. अट्ठाई यानी आठ उपवास की संख्या अनेक रही ।

७. चौंसठ पहरी पौषध की संख्या ७५ उपरान्त हुई ।

(८)

वशाह्निका–महोत्सव

श्रीसंघ ने उक्त शासनप्रभावक, अनुमोदनीय, विशिष्ट धर्म-आराधनाओं के उपलक्ष में श्री भक्तामरपूजन, श्री पार्श्वनाथ भगवान

के १०८ अभिषेक पूजन, श्री नव्वाणु अभिषेक की पूजा युक्त श्री जिनेन्द्रभक्ति स्वरूप दशाह्निका-महोत्सव मनाने का निर्णय किया।

(१) भादरवा सुद ७ मंगलवार दिनांक १३-९-८३ को दशाह्निका-महोत्सव प्रारम्भ हुआ। रथ-हाथी-बैन्ड युक्त भव्य शानदार वरघोड़ा निकाला। श्री पंचकल्याणक की पूजा स्व० श्री देवीबाई के स्मरणार्थ शा० चुनीलालजी बीसाजी की ओर से पढ़ाई गई। शा० कान्तिलाल धनरूपचन्दजी के १५ उपवास एवं उनकी धर्मपत्नी अ० सौ० सुशीला बहिन के अट्ठाई तथा शा० सुखराज धनरूपचन्दजी की धर्मपत्नी अ० सौ० दाड़मी बहिन के अट्ठाई तप निमित्ते शा० लादमल, धनरूपचन्द किसनाजी की तरफ से स्वामीवात्सल्य हुआ और उन्हीं के घर पर बैन्ड तथा चतुर्विध संघ युक्त पूज्यपाद आचार्य म० सा० के पगलां हुए। ज्ञानपूजन-मंगलाचरण के बाद प्रभावना भी हुई।

(२) भादरवा सुद ८ बुधवार दिनांक १४-९-८३ को प्रातः पू० श्री भगवती सूत्र के व्याख्यान प्रसंगे तपस्वी भाई-बहिनों का सम्मान समारोह हुआ। दोपहर में शा० सरेमल ठाकरजी की ओर से श्री अन्तराय कर्म निवारण की पूजा प्रभावना सहित पढ़ाई गई।

(३) भादरवा सुद ९ गुरुवार दिनांक १५-९-८३ को शा० मगनलाल मोतीजी की तरफ से श्री नवपदजी की पूजा प्रभावना सहित पढ़ाई गई।

(४) भादरवा सुद १० शुक्रवार दिनांक १६-९-८३ को शा० भूरमल पूनमचन्दजी की ओर से श्री वीशस्थानक की पूजा प्रभावना समेत पढ़ाई गई। शा० कपूरचन्दजी अमीचन्दजी की धर्मपत्नी सुश्री देवीबाई को श्री पद्मावती सुनाने के लिये उनके घर परमपूज्य आचार्य भगवन्त चतुर्विध संघ युक्त पधारे। वहाँ ज्ञानपूजन तथा श्री पद्मावती आदि श्रवण के पश्चात् प्रभावना हुई।

(५) भादरवा सुद ११ शनिवार दिनांक १७-९-८३ को शा० घीसूलाल तिलोकचन्दजी की माता सुश्री गजीबाई कृत मासखमण की तपश्चर्या निमित्ते श्री पार्श्वनाथ भगवान के १०८ अभिषेक पूजन शा० तिलोकचन्दजी परकाजी की तरफ से विधिपूर्वक प्रभावना युक्त पढाये गये। उनके घर पर चतुर्विध संघ सहित पूज्यपाद आचार्यदेव पधारे। वहाँ ज्ञानपूजन एवं मंगलप्रवचन के पश्चात् संघपूजा हुई।

(६) भादरवा सुद १२ रविवार दिनांक १८-९-८३ को परमपूज्य आचार्यदेव के ६७ वें जन्मदिन की भव्य उजवणी श्री आदिनाथ जैन आराधना भवन में व्याख्यान प्रसंगे हुई। उसमें गुढा-बालोतान की श्री श्वेताम्बर जैन छात्रावास की संगीत मण्डली का, सिरोही के श्री महावीर जैन बेन्ड का एवं तखतगढ़ की श्री जैन पाठशाला की बहिनों का कार्यक्रम सुन्दर रहा। व्याख्यान के बाद चैत्यपरिपाटी का भी कार्यक्रम हुआ। दोपहर में संघवी श्री सांकल-चन्द दानाजी की ओर से प्रभावना युक्त **श्रीभक्तामरपूजन** विधिपूर्वक मैंने (धार्मिक शिक्षक विधिकारक शा० बाबूलाल मणिलाल भाभर वाले ने) पढ़ाया।

(७) भादरवा सुद १३ (प्रथम) सोमवार दिनांक १९-९-८३ को श्री गजीबाई पोमराज समनाजी की तरफ से नवाणु प्रकारी पूजा प्रभावना सहित पढ़ाई गई।

(८) भादरवा सुद १३ (द्वितीय) मंगलवार दिनांक २०-९-८३ को बारह व्रत की पूजा प्रभावना श्री सुकीबाई भबूत-मलजी की ओर से पढ़ाई गई। उस दिन चाणस्मा (उत्तर गुजरात) से शा० बाबूभाई गभरूचन्द, शा० रमणलाल श्रीकमलाल, शा० बबलचन्द्र वस्ताचन्द, शा० चन्दुभाई तथा शा० दलपतभाई आदि मेटाडोर द्वारा पूज्यपाद आचार्य महाराज श्री की वन्दनार्थ

आए। उन्होंने व्याख्यान के बाद प्रभावना की। उदयपुर से श्री विजयसिंहजी सामर आदि वन्दनार्थ आये।

(९) भादरवा सुद १४ बुधवार दिनांक २१-९-८३ को स्व० मेथीबाई के श्रेयार्थे शा० भूरमल तलसाजी की तरफ से श्रीवेदनीय कर्म निवारण की पूजा प्रभावना समेत पढ़ाई गई।

(१०) भादरवा सुद १५ गुरुवार दिनांक २२-९-८३ को शा० कान्तिलाल धनरूपचन्दजी के १५ उपवास एवं उनकी धर्म-पत्नी अ० सौ० सुशीला बहन के अट्ठाई तथा शा० सुखराज धनरूप-चन्दजी की धर्मपत्नी अ० सौ० दाड़मी बहन के अट्ठाई तप निमित्ते शा० लादमल धनरूपचन्द किसनाजी की ओर से श्री नव्वाणुं अभिषेक की पूजा प्रभावना युक्त पढ़ाई गई। जोधपुर से आई हुई भजन मण्डली ने भी पूजा तथा भावना में प्रभु-भक्ति का सुन्दर लाभ लिया। इस तरह **'दशाह्निका महोत्सव'** का कार्य सुसम्पन्न हुआ।

पू० श्री भगवतीसूत्र तथा श्रीविक्रमचरित्र श्रवण का लाभ आगे भी श्रीसंघ को अहर्निश मिलता रहा।

❀ आसो (भादरवा) वद २ शनिवार दिनांक २४-९-८३ को श्री अगवरी संघ ने प० पू० आ० म० श्री की वन्दनार्थ आकर घर दीठ एकेक रुपये की प्रभावना की।

❀ आसो (भादरवा) वद ६ बुधवार दिनांक २८-९-८३ को श्री रानीगांव संघ ने पूज्यपाद आचार्य म० श्री की वन्दनार्थ मोटर द्वारा आकर आगामी चातुर्मास रानीगांव करने की विनती की।

❀ आसो (भादरवा) वद १४ बुधवार दिनांक ५-१०-८३ को सुमेरपुर से मजिस्ट्रेट श्री गोरधनसिंहजी सुराणा उदयपुर वाले परम पूज्य आचार्यदेव की वन्दना हेतु आये।

❀ आसो (भादरवा) वद ●)) गुरुवार दिनांक ६-१०-८३ को सिरोही समीपवर्ती श्री कोलरतीर्थ के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करने के लिये कमेटी के कार्यकर्त्ता प० पू० आ० म० सा० के पास आये थे। व्याख्यान में श्रीकोलरतीर्थ के विकास के लिये एक ईंट की योजना रखते हुए २१०० उपरान्त की टीप तत्काल पूज्य-पाद गुरुदेव के सदुपदेश से हो गई थी। विशेष सहयोग के बारे में श्रीसंघ ने आश्वासन भी दिया था।

(९)

आसो सुद २ शनिवार दिनांक ८-१०-८३ को स्व० शा० हजारीमलजी भूताजी के सुपुत्र श्री मूलचन्दजी तथा श्री पुखराजजी के घर पूज्यपाद आचार्य भगवन्त चतुर्विध संघ युक्त वाजते-गाजते पगलां करने के लिए पधारे। वहां ज्ञानपूजन तथा मंगलप्रवचन हुआ। परम पूज्य आचार्य भगवन्त के सदुपदेश से दोनों बन्धुओं ने किसी भी तीर्थ का पैदल संघ निकालने की प्रतिज्ञा की। प्रान्ते प्रभावना भी की।

आसो सुद ५ मंगलवार दिनांक ११-१०-८३ को व्याख्यान में शा० अचलदास हजारीमलजी रानी स्टेशन वालों की ओर से संघपूजा हुई।

(१०)

अष्टाह्निका महोत्सव

आसो सुद ७ गुरुवार दिनांक १३-१०-८३ को आसो मास की **शाश्वती ओली** का प्रारम्भ हुआ तथा श्रीसंघ की ओर से **'अष्टाह्निका-महोत्सव'** भी शुरू हुआ।

नवे दिन श्रीसिद्धचक्र का तत्त्वगर्भित व्याख्यान तथा श्री श्रीपाल-मयणाचरित्र का अनुपम लाभ श्रीसंघ को मिलता रहा। नवे दिन प्रभावना युक्त पूजा का लाभ भी मिला। नवे दिन आराधकों को कराने के महामंगलकारी आयंबिल शा० हीराचन्दजी लखमाजी की तरफ से शुरू हुए।

❀ आसो सुद आठम के दिन सादड़ी वाले शा० लक्ष्मीचन्द दीपचन्दजी वन्दनार्थ आए।

❀ आसो सुद नवमी के दिन श्री कोलर तीर्थ की कमेटी वाले वन्दनार्थ आए।

❀ आसो सुद दशमी के दिन सिरोही संघ पेढ़ी के ट्रस्टी मंडल वन्दनार्थ आए। ग्यारस के दिन श्रीउपधान तप में प्रवेश करने वाले का अन्तर वायणा शा० हजारीमलजी भूताजी की तरफ से शाम को हुआ।

श्री उपधान तप

आसो सुद ११ सोमवार १७-१०-८३ को शा० हजारीमलजी भूताजी की ओर से महामंगलकारी **श्री उपधान तप** का प्रारम्भ हुआ, जिसमें १०५ महानुभावों ने प्रथम मुहूर्त्त में मंगल प्रवेश किया।

❀ आसो सुद १२ के दिन उमेदपुर से जैनबालाश्रम के ११३ बालकों को बेन्ड पार्टी के साथ लेकर शा० पारसमलजी भण्डारी वन्दनार्थ आए।

❀ आसो सुद १३ बुधवार दिनांक १९-१०-८३ को श्री उपधान तप के दूसरे मुहूर्त्त में आठ आराधक महानुभावों ने विधि-पूर्वक मंगल प्रवेश किया। उपधानवाहियों की कुल संख्या ११३ हुई।

❀ आसो सुद १५ शुक्रवार दिनांक २१-१०-८३ को यहीं

आसो मास की ओली कराने वाले शा० हीराचन्द लखमाजी की तरफ से **श्रीसिद्धचक्र महापूजन** विधिपूर्वक पढ़ाया गया। वयोवृद्ध सेवाभावी पूज्य मुनिराज श्री प्रमोद विजयजी म० की श्रीवर्द्धमान तप की चौदमी ओली पूर्ण हुई।

❀ कार्त्तिक (आसो) वद १ शनिवार दिनांक २२-१०-८३ को ओली करने वाले सभी भाई-बहिनों के पारणे शा० हीराचन्द लखमीचन्दजी की तरफ से हुए। पू० साध्वीश्री शीलगुणा श्री जी म० के भी श्री वर्द्धमान तप की ४९ वीं ओली का पारणा उसी दिन हुआ।

❀ कार्त्तिक (आसो) वद २ रविवार दिनांक २३-१०-८३ को पू० साध्वी श्री दिव्यप्रज्ञा श्रीजी म० के श्री वर्द्धमान तप की ४७ वीं ओली का पारणा हुआ। इस निमित्ते भैरूबाग में पूज्यपाद आचार्य म० सा० के चतुर्विध संघ युक्त पगलां हुए।

❀ कार्त्तिक (आसो) वद ३ सोमवार दिनांक २४-१०-८३ को उदयपुर से बसों द्वारा यात्रार्थ निकले हुए २५० भाई-बहिन पूज्यपाद आचार्य म० सा० की वन्दनार्थ आये। उनमें से श्री दौलतसिंहजी गांधी तथा श्री भगवतसिंहजी महेता दोनों संघवीजी को अब तीर्थ-यात्रार्थ पैदल संघ निकालने की प्रतिज्ञा प० पू० आचार्य गुरु महाराज सा० ने करायी।

(११)

श्री दीवाली पर्व की आराधना

कार्त्तिक (आसो) वद ●)) शुक्रवार दिनांक ४-११-८३ को श्री महावीर स्वामी का निर्वाणकल्याणक दिन होने से व्याख्यान में **'श्री दीवाली पर्व का माहात्म्य'** श्रवण करने का लाभ श्रीसंघ को मिला। श्री दीवाली पर्व के देववन्दन भी विधिपूर्वक हुए।

प्रत्येक जिनमन्दिर में आंगी आदि का कार्यक्रम रहा। चौदस और अमावस इन दो दिनों के छट्ठ करने वालों की संख्या १२५ हुई। आज पूजा भी पढ़ाई गई।

(१२)

नूतनवर्ष का प्रारम्भ तथा मांगलिक

श्रीवीर सं० २५१० विक्रम सं० २०४० नेमि सं० ३५ शनिवार दिनांक ५-११-८३ को प्रातः चतुर्विध संघ को जैनधर्मदिवाकर-राजस्थानदीपक-मरुधरदेशोद्धारक-परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म० सा० ने मंगलाचरण-सातस्मरण कर श्रुतकेवली श्रीगौतमस्वामी गणधर भगवन्त का संस्कृत अष्टक तथा शासनसम्राट्-परमगुरुदेव श्रीमद् विजय नेमि सूरीश्वरजी म० सा० का अष्टक सुनाया। पूज्यपाद आचार्य म० सा० के विद्वान्-प्रवक्ता शिष्यरत्न पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तमविजयजी म० श्री ने भी श्रीगौतमस्वामीजी का रास सानंद सुनाया।

❀ उपधान कराने वाले शा० हजारीमलजी भूताजी की तरफ से प० पू० आ० म० सा० आदि मुनि भगवन्तों का तथा पू० साध्वी जी महाराज का कार्तिक पूनम के दिन चातुर्मास परावर्त्तन का एवं उपधानमाला महोत्सव के बाद श्री जालौर-सुवर्णगिरि तीर्थ का पैदल छरी पालित संघ निकालने का आदेश श्रीसंघ के पास श्री मूलचन्दजी तथा श्री पुखराजजी ने लिया। श्रीसंघ ने श्री आदिनाथ भगवान की जय बुलवायी। बन्ने बन्धुए ज्ञान-पूजन कर पूज्य आचार्यदेव के पास अपने मस्तक पर वासक्षेप नखवाया। उस समय जालौर से आये हुए श्री नैनमलजी वकील तथा श्री उगमराजजी वकील आदि ने दोनों बन्धुओं का तिलक कर, माला पहिनाकर तथा श्रीफल आदि देकर बहुमान किया।

❀ दीवाली का छठ करने वालों को आज एकासणा प्रसंगे तखतगढ़ श्रीजैनसंघ की ओर से प्रभावना में ग्यारह रुपये तथा उपधान कराने वाले की तरफ से एक-एक रुपया दिया गया। आज भी श्रीपंचकल्याणक की प्रभावना युक्त पूजा पढ़ाई गई।

❀ कार्तिक सुद बीज से पू० श्री भगवतीजी सूत्र तथा श्री-विक्रमचरित्र का व्याख्यान चालू रहा। पूज्य मुनिराज श्रीजिनोत्तमविजयजी म० के प्रवचन का लाभ भी प्रतिदिन संघ को मिलता रहा।

❀ कार्तिक सुद तीज के दिन सिरोही से श्री पार्श्व महिला मंडल ने वन्दनार्थ आकर पूजा पढ़ाई।

(१३)

श्री ज्ञानपंचमी की आराधना

कार्तिक सुद ५ (ज्ञानपंचमी) बुधवार दिनांक ९-११-८३ को पूज्यपाद आचार्य म० श्री ने पूज्य श्री भगवतीजी सूत्र के व्याख्यान में ज्ञान पंचमी की महत्ता विषयक प्रवचन वरदत्त-गुणमंजरी दृष्टांत युक्त दिया। दोपहर को शणगारा हुआ, ज्ञान की सन्मुख देववन्दन का कार्यक्रम रहा।

(१४)

श्री भगवतीसूत्र के प्रथम शतक की पूर्णाहुति

कार्तिक सुद १३ शुक्रवार दिनांक १८-११-८३ को परम-पूज्य आचार्य गुरुभगवंत ने गौनी आदि पाँच पूजनादि युक्त पूज्य श्री भगवतीजी सूत्र के प्रथम शतक की तथा श्री विक्रमचरित्र की पूर्णा-

हुति व्याख्यान में की। पश्चाद् पूज्य श्री भगवतीजी सूत्र का जुलूस वरघोड़ा निकाला। पैंतालीस आगमों की पूजा भी श्रीसघ ने पढ़ाई।

❀ कार्तिक सुद चौदस के दिन चातुर्मासिक प्रवचन का लाभ श्रीसंघ को मिला। देववन्दन भी हुआ।

(१५)

चातुर्मास परावर्त्तन एवं महोत्सव का प्रारम्भ

कार्तिक सुद १५ रविवार दिनांक २०-११-८३ को उपधान कराने वाले शा० हजारीमलजी भूताजी की ओर से परम शासन प्रभावक पूज्यपाद आचार्यदेव आदि मुनि भगवन्तों का तथा पूज्य साध्वीजी महाराजों का चातुर्मास परावर्त्तन हुआ। शा० मूलचन्द जी तथा शा० पुखराजजी के घर पर चतुर्विध संघ सहित गाजे-बाजे के साथ पूज्य गुरुदेव पधारे। वहां ज्ञानपूजन एवं मगलप्रवचन के पश्चात् प्रभावना हुई।

उनकी तरफ से तेरह छोड़ से युक्त उद्यापन का, उपधान की माला का तथा श्री जालौर-सुवर्णगिरि तीर्थ का पैदल छरी पालित संघ निकालने का, ग्यारह दिन का श्री जिनेन्द्र भक्ति स्वरूप महोत्सव का प्रारम्भ हुआ। प्रतिदिन व्याख्यान तथा पूजा, प्रभावना एवं रात को भावना का कार्यक्रम चालू रहा।

❀ मागशर (कार्तिक) वद २ मंगलवार दिनांक २२-११-८३ को शासनरत्न-तीर्थप्रभावक-परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म० सा० ने सुविशुद्ध दीक्षा पर्याय के ५२ वर्ष पूर्ण करके ५३ वें वर्ष में मंगल प्रवेश किया।

❀ मागशर (कार्त्तिक) वद ५ शुक्रवार दिनांक २५-११-८३ को **'श्री ऋषिमंडल महापूजन'** विधिपूर्वक चालू महोत्सव में पढ़ाया।

❀ मागशर (कार्त्तिक) वद ९ सोमवार दिनांक २८-११-८३ को चालू महोत्सव में **'श्रीसिद्धचक्र महापूजन'** विधिपूर्वक प्रभावना युक्त पढ़ाया गया।

❀ मागशर (कार्त्तिक) वद १० मंगलवार दिनांक २९-११-८३ को श्री उपधान तप की माला का रथ-इन्द्रध्वज-हाथी-घोड़े-मोटर तथा बेन्ड आदि युक्त भव्य जुलूस-वरघोड़ा शानदार निकाला।

❀ मागशर (कार्त्तिक) वद ११ बुधवार दिनांक ३०-११-८३ को प्रातः श्री उपधान तपमाला प्रथम उपधानवाही ८६ भाई-बहिनों को विधिपूर्वक पहराने का कार्यक्रम शासन प्रभावनापूर्वक सुन्दर रहा। शा० हजारीमलजी भूताजी की ओर से स्वामी-वात्सल्य भी हुआ। **श्री उपधान तपमाला का ग्यारह दिन का महोत्सव कार्य** सुसम्पन्न हुआ।

❀ मागशर (कार्त्तिक) वद १२ गुरुवार दिनांक १-१२-८३ को सुबह में उपधानवाहियों के पारणे उपधान कराने वाले की तरफ से निर्विघ्न हुए।

(१६)

छ 'री' पालित पैदल संघ का प्रयाण

मागशर (कार्त्तिक) वद १३ शुक्रवार दिनांक २-१२-८३ को तीर्थप्रभावक--शास्त्रविशारद--साहित्यरत्न--कविभूषण---परमपूज्य आचार्यदेव के सदुपदेश से उन्हीं की तारक-पावन निश्रा में शा० हजारीमलजी भूताजी परिवार की ओर से श्री जालोर-सुवर्णगिरि

तीर्थ की यात्रा हेतु छ 'री' पालित पैदल संघ प्रस्थान हुआ, जिसमें श्री जिनेश्वरदेव की मूर्त्ति, रथ, हाथी, घोड़े, बैन्ड तथा प० पू० आचार्यदेव, पूज्य उपाध्याय श्री विनोदविजयजी गणिवर्य, पूज्य मुनि श्री शालिभद्र विजयजी म०, पूज्य मुनि श्री जिनोत्तम विजयजी म० एवं पूज्य मुनि श्री अरिहन्तविजयजी म० आदि साधु भगवन्त तथा पू० साध्वी श्री भाग्यलता श्रीजी, पू० साध्वी श्री भव्यगुणा श्रीजी, पू० साध्वी श्री दिव्यप्रज्ञा श्रीजी, पू० साध्वी श्री शीलगुणा श्रीजी तथा पू० साध्वी श्री प्रफुल्लप्रज्ञा श्रीजी आदि साध्वी महाराज थे। श्रावक-श्राविकाओं की संख्या लगभग ३५० थी। प्रतिदिन व्याख्यान, पूजा-प्रभावना और रात को भावना एवं छ'री' पालन का कार्यक्रम चालू रहा।

उमेदपुर, अगवरी, गुढ़ा-बालोतान, दयालपरा, चल्ली, आहोर, भैंसवाड़ा, गोदन, लेटा आदि के दर्शन कर **जालौर-नंदीश्वर-द्वीप** पहुँचे। सर्वत्र स्वागत संघपूजा एवं साधर्मिक भक्ति का कार्यक्रम रहा।

।। श्री सुवर्णगिरि तीर्थ पर तीर्थमाला ।।

मागशर सुद ५ शुक्रवार दिनांक ६-१२-८३ को श्रीसुवर्ण-गिरि तीर्थ पर तीर्थप्रभावक परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म० सा० की शुभ निश्रा में, स्व० शा० हजारी-मलजी भूताजी तखतगढ़ वालों के परिवार में संघवी श्री मूलचन्दजी (सजोड़े) तथा संघवी श्री पुखराजजी (सजोड़े) एवं दोनों बन्धुओं के पुत्रों तथा पुत्रवधुओं को विधिपूर्वक तीर्थमाला श्रीसंघ ने उत्साह के साथ पहिनाई। उस समय दोनों संघवीजी ने सजोड़े चतुर्थ ब्रह्मचर्य व्रत उच्चर कर, श्रीसिद्धाचलजी महातीर्थ की ६६ यात्रा कराने की प्रतिज्ञा की। बाद में **'श्री नंदीश्वरद्वीप'** में जीम कर

संघ बसों द्वारा तखतगढ़ रवाना हुआ। पूज्यपाद आचार्य म० श्री आदि ने वहाँ पर स्थिरता की।

(१६)

श्रीसुवर्णगिरि तीर्थ पर पंचाह्निका महोत्सव

पौष (मागशर) वद ८ मंगलवार दिनांक २७-१२-८३ को जैनधर्मदिवाकर पूज्यपाद आचार्यदेव की पावन निश्रा में श्री-सुवर्णगिरि तीर्थ पर **पंचाह्निका महोत्सव** प्रारम्भ हुआ। पौष दशमी की आराधना श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथ अट्ठम आदि तप से भी चालू हुई।

❀ पौष (मागशर) वद १० गुरुवार दिनांक २९-१२-८३ को तीर्थ पर श्री महावीर स्वामी के जिनमन्दिर में श्री पार्श्वनाथ प्रभु के १०८ अभिषेक पूजन हुए।

(१७)

बादनवाड़ी में श्रीनमस्कार महामन्त्र पूजन

पौष सुद १० शुक्रवार दिनांक १३-१-८४ को बादनवाड़ी में शा० सागरमल लुम्बाजी की ओर से चालू महोत्सव में प० पू० आ० म० सा० आदि की शुभ निश्रा में **'श्री नमस्कार महामन्त्र पूजन'** विधिपूर्वक पढ़ाया गया।

(१८)

श्री तखतगढ़ में अंजनशलाका प्रतिष्ठा महोत्सव

(१) महा (पौष) वद १ दिनांक गुरुवार १९-१-८४ को राजस्थानदीपक परमपूज्य आचार्यदेव श्रीम. विजय सुशील सूरीश्वरजी

म० श्री ने तखतगढ़ में अंजनशलाका एवं प्रतिष्ठा महोत्सव के उपलक्ष में श्रीसंघ के अनन्य उत्साहपूर्वक गाजे-बाजे के साथ भव्य प्रवेश किया। प्रतिदिन व्याख्यानादिक का कार्यक्रम चलता था।

(२) महा (पौष) वद ६ सोमवार दिनांक २३-१-८४ को तखतगढ़ में नूतन श्री सीमन्धरस्वामी, श्री पुंडरीकस्वामी, श्री गौतमस्वामी, श्री आदिनाथ भगवान की चरण पादुकाएँ तथा श्री ऋषभदेव भगवान का आरस का पट्ट इत्यादि सभी को रथादिक में रखकर बाजते-गाजते प्रवेश करवाकर **'श्री आदिनाथ जैन आराधना भवन'** में लाये।

(३) महा (पौष) वद १२ रविवार दिनांक २९-१-८४ को तखतगढ़ में बारह दिन का **'श्री अंजनशलाका प्रतिष्ठा-महोत्सव'** प्रारम्भ हुआ। कुम्भस्थापनादि हुए तथा **'श्रीसिद्धचक्र महापूजन'** शा० लादमल, धनरूपचन्द किसनाजी की तरफ से प्रभावना युक्त विधिपूर्वक पढ़ाया गया। प्रतिदिन व्याख्यान, पूजा-प्रभावना, साधर्मिक भक्ति तथा रात को भावना आदि का कार्यक्रम चालू रहा।

(४) महा (पौष) वद १३ सोमवार दिनांक ३०-१-८४ को शा० लादमल धनरूपचन्द किसनाजी की तरफ से प्रभावना युक्त पूजा पढ़ाई गई।

(५) महा (पौष) वद १४ मंगलवार दिनांक ३१-१-८४ को शा० शेषमलजी प्रतापचन्दजी की ओर से प्रभावना युक्त पूजा पढ़ाई गई।

(६) महा (पौष) वद ●)) बुधवार दिनांक १-२-८४ को भी शा० शेषमल प्रतापचन्दजी की तरफ से प्रभावना युक्त पूजा पढ़ाई गई।

(७) महा सुद १ (प्रथम) गुरुवार दिनांक २-२-८४ को

संघवी श्री देवीचन्द श्रीचन्दजी की ओर से **'श्री भक्तामरपूजन'** विधि-पूर्वक पढ़ाई गई।

(८) महा सुद १ (दूसरी) शुक्रवार दिनांक ३-२-८४ को च्यवन कल्याणक की विधि हुई। प्रभुजी के पिता एवं माता बनने का आदेश लेने वाले शा० भेरूमल मूलचन्दजी के घर गाजे-बाजे सहित परमपूज्य आचार्य म० सा० चतुर्विध संघ सहित पधारे। वहाँ पूज्य आचार्य म० श्री के सदुपदेश से शा० भेरूमलजी आदि ने श्रीसिद्धाचलजी महातीर्थ की ९९ यात्रा कराने की प्रतिज्ञा की। ज्ञानपूजन एवं मंगल प्रवचन के पश्चात् प्रभावना हुई। उसी दिन शा० कपूरचन्द चमनाजी के घर पर भी पूज्य गुरुदेव चतुर्विध संघ सहित पधारे। वहां पर भी पूज्य श्रीजी के सदुपदेश से शा० कपूरचन्दजी ने संघ निकालने की प्रतिज्ञा की। ज्ञानपूजन एवं मंगल प्रवचन के बाद प्रभावना हुई। रथ-इन्द्रध्वज-हाथी-घोड़े बेन्डयुक्त च्यवन-कल्याणक का वरघोड़ा निकला। शा० रकबीचन्दजी खीमराजजी की ओर से प्रभावना सहित पूजा पढ़ाई गई तथा शा० कपूरचन्द हजारीमल चमनाजी की तरफ से नोकारसी हुई।

(९) महा सुद २ शनिवार दिनांक ४-२-८४ को जन्म कल्याणक विधान में छप्पन दिग्कुमारियों का महोत्सव, इन्द्र-सिंहासन कंपन तथा शक्रेन्द्र की स्तुति का कार्यक्रम हुआ। शा० भूरमलजी तलसाजी की तरफ से प्रभावना युक्त पूजा पढाई गई तथा शा० आईदानजी प्रतापचन्दजी की ओर से नोकारसी हुई।

(१०) महा सुद ३ रविवार दिनांक ५-२-८४ को मेरुपर्वत पर २५० अभिषेक, पुत्र-जन्म-वधामणी, नाम स्थापना तथा पाठशालादि का कार्यक्रम रहा। जन्मकल्याणक का वरघोड़ा निकला। शा० गुलाबचन्द फूलचन्द रुघनाथजी की ओर से प्रभावना सहित पूजा पढ़ाई गई। नोकारसी शा० हीराचन्दजी लखमाजी की तरफ से हुई।

(११) महा सुद ४ सोमवार दिनांक ६-२-८४ को लग्नोत्सव, राज्याभिषेक तथा नव लोकान्तिक देवों की विज्ञप्ति का कार्यक्रम रहा। दीक्षा-कल्याणक का भव्य वरघोड़ा निकला तथा दीक्षा कल्याणक का विधान हुआ। शा० जवानमलजी सूजाजी की ओर से प्रभावनना युक्त पूजा पढ़ाई गई तथा शा० देवीचन्द श्रीचन्दजी की तरफ से नोकारसी हुई।

(१२) महा सुद ५ (वसंतपंचमी) मंगलवार दिनांक ७-२-८४ को १८ अभिषेक, चैत्याभिषेक, दण्ड-कलशाभिषेक तथा २५ कुसुमांजलि आदि की विधि हुई। केवलज्ञान कल्याणक तथा निर्वाण कल्याणक का विधान हुआ। भव्य वरघोड़ा निकला। शत्रुंजय महाराजा का आदेश लेने वाले संघवी चुनीलाल वीसाजी के सुपुत्र सोहनराजजी के घर पर चतुर्विध संघ सहित गाजे-बाजे के साथ परमपूज्य आचार्य म० सा० पधारे। वहाँ ज्ञानपूजन तथा मंगल प्रवचन होने के बाद प्रभावना हुई। शा० भबूतमल सरदारमल जेठाजी की तरफ से प्रभावना युक्त पूजा पढ़ाई गई। नोकारसी शा० चुनीलाल वीसाजी की ओर से हुई।

(१३) महा सुद ६ बुधवार दिनांक ८-२-८४ को प्रातः शुभ लग्न मुहूर्त्त श्रीसंघ के अनन्य उत्साहपूर्वक श्रीसीमन्धरस्वामी आदि जिन बिम्बों की परमशासन प्रभावनापूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उसमें—

(१) श्रीसीमंधरस्वामी की मूर्त्ति मूलनायक तरीके संघवी श्रीदेवीचन्दजी श्रीचन्दजी ने विराजमान की।

(२) श्रीपुंडरीकस्वामी गणधर भगवान की मूर्त्ति शा० वनेचन्दजी फौजमलजी के परिवार की ओर से बिराजमान की गई।

(३) श्रीगौतमस्वामी गणधर भगवान की मूर्त्ति शा० गुलाबचन्द फूलचन्द रुघनाथजी ने विराजमान की।

(४) श्री ऋषभदेव भगवान का पट्ट शा० रतनचन्द आईदान जी कस्तूरजी ओसवाल ने स्थापित किया।

(५) श्री ऋषभदेव भगवान की चरणपादुका शा० जवानमल जी सोजाजी ने विराजमान की।

(६) श्री ऋषभदेव भगवान की मूर्त्ति शा० चत्रभाणजी भूताजी ने विराजमान की।

(७) श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान की मूर्त्ति शा० सांकलचन्द चुनीलालजी ने विराजमान की।

(८) श्री सीमन्धरस्वामी भगवान की अन्दर की देहरी पर दण्ड शा० सरदारमलजी गुलाबचन्दजी ने स्थापित किया। ध्वजा शा० मूलचन्दजी जुहारमलजी ने चढ़ाई तथा कलश का स्थापन शा० वत्सराजजी जवानमलजी ने किया।

(९) श्री पुंडरीकस्वामी की घुमटी पर कलश शा० सांकलचन्दजी जयरूपचन्दजी ने स्थापित किया।

(१०) श्री गौतमस्वामी की घुमटी पर कलश शा० फूलचन्दजी पुखराजजी ने स्थापित किया।

(११) श्रीसोमन्धरस्वामी की देहरी के ऊपर के भाग में घुमटी पर शा० कुन्दनमलजी प्रेमचन्दजी ने कलश स्थापित किया।

(१२) श्री ऋषभदेव भगवान की चरणपादुका की देहरी के ऊपर के भाग में शा० हीराचन्दजी लखमाजी ने कलश स्थापित किया।

इस प्रतिष्ठा के दिन बृहद्शान्तिस्नात्र शा० भेरूमल मूलचन्द जी की तरफ से विधिकारक शा० चम्पालालजी मांडवला वालों ने

तथा मैंने (शा० बाबूलाल मणिलाल भाभर वाले ने) पढ़ाया। इस दिन को नोकारसी शा० भेरूमल मूलचन्दजी की तरफ से हुई।

(१४) महा सुद ७ गुरुवार दिनांक ६-२-८४ को प्रातः द्वारोद्घाटन का कार्यक्रम रहा। दोपहर में प्रभावना युक्त पूजा शा० भूरमलजी पूनमचन्दजी की तरफ से पढ़ाई गई।

यह **श्रीअंजनशलाका-प्रतिष्ठा महोत्सव** परम शासन प्रभावना-पूर्वक निर्विघ्न सुसम्पन्न हुआ जो तखतगढ़ के इतिहास में सुवर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

॥ शुभं भवतु ॥

॥ ॐ ह्रीँ अर्हँ नमः ॥

श्री तखतगढ़ नगर में प्रवेश

(१)

श्रीवीर सं० २५११ विक्रम सं० २०४१ पौष (मागशर) वद १ रविवार दिनांक ६-१२-८४ को जैनधर्मदिवाकर-राजस्थान-दीपक-मरुधरदेशोद्धारक-शास्त्रविशारद-**परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयसुशीलसूरीश्वरजी म० सा०, पूज्य उपाध्याय श्रीविनोदविजय जी म० सा०, पूज्य मुनिराज श्रीप्रमोदविजयजी म० सा०, पूज्य मुनिराज श्री शालिभद्रविजयजी म० सा०, पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तमविजयजी म० सा०** एवं पूज्य मुनिराज श्रीअरिहन्तविजय जी म० सा० आदि ने तथा शासन प्रभावक पूज्य **आचार्य श्रीमद् विजयमंगलप्रभसूरीश्वरजी म० सा०** की आज्ञानुवर्त्तिनी पूज्य साध्वी **श्री सुशीलाश्रीजी म०** की शिष्या पूज्य साध्वी **श्रीभक्ति श्रीजी म०** की शिष्या पूज्य साध्वी **श्रीललितप्रभाश्रीजी** आदि ने भी श्री तखतगढ़ नगर में श्री उपधान तप के मंगल प्रसंग पर सुस्वागतपूर्वक

मंगल प्रवेश किया। पूज्य मुनिराज श्रीमणिप्रभविजयजी म० आदि का सम्मिलन हुआ।

चतुर्विध संघ के साथ दोनों जिनमन्दिरों के दर्शनादि करके उपधान कराने वाले शा० ओटरमलजी भूताजी संघवी के घर पर परमपूज्य आचार्य म० सा० पधारे। वहाँ ज्ञानपूजन एवं मंगल प्रवचन होने के पश्चात् संघवीजी की तरफ से एकेक रुपये की तथा गुड़ की दोनों प्रभावना हुई। बाद में पूज्य आ० म० सा० आदि श्री आदिनाथ जैन आराधना भवन में पधारे। जिनमन्दिर में प्रभावना युक्त पंचकल्याणक की पूजा भी संघवीजी ने पढ़ाई। प्रतिदिन प्रवचन-व्याख्यान आदि का कार्यक्रम चालू रहा।

❀ पौष (मागशर) वद ३ मंगलवार दिनांक ११-१२-८४ को संघवी श्री ओटरमलजी भूताजी की तरफ से उपधान करने वाले भाई-बहिनों के अक्षरवायणा हुए।

(२)

श्री उपधान तप में प्रवेश

पौष (मागशर) वद ४ बुधवार दिनांक १२-१२-८४ को पूज्यपाद आचार्य महाराज सा० की शुभ निश्रा में, नाण समक्ष श्री उपधान तप के प्रथम मुहूर्त्त में आराधक ६० भाई-बहिनों ने विधि-पूर्वक मंगल प्रवेश किया।

❀ पौष (मागशर) वद ६ शुक्रवार दिनांक १४-१२-८४ को श्री उपधान तप के दूसरे मुहूर्त्त में आराधक २१ भाई-बहिनों ने नाण समक्ष विधिपूर्वक मंगल प्रवेश किया। उपधान करने वालों की कुल संख्या ८१ रही। उपधान तप में भी अट्ठमादि की विविध तपश्चर्या चलती रही।

❀ पौष (मागशर) वद १३ गुरुवार दिनांक २०-१२-८४ को त्रिस्तुति वाले विद्वान्-प्रवक्ता पूज्य आचार्य श्री जयन्तसेनसूरिजी म० सा० आदि सुस्वागत पूर्वक तखतगढ़ में प्रवेश कर परमपूज्य आचार्यदेव गुरु महाराज सा० के पास पधारे। दोनों आचार्य म० आदि का सुभग सम्मिलन हुआ। त्रिस्तुति के उपाश्रय में भी दोनों आचार्य भगवन्त आदि सुस्वागत पूर्वक पधारे। वहाँ दोनों के मंगल प्रवचन के पश्चात् प्रभावना हुई। श्रीसंघ के आनन्द में अभिवृद्धि हुई।

❀ पौष सुद ५ गुरुवार दिनांक २७-१२-८४ को श्री आदीश्वर जिनमन्दिर में अठारह अभिषेक का कार्यक्रम रहा। श्री अन्तराय कर्म की पूजा श्रीसंघ की ओर से पढ़ाई गई।

(३)

दशाह्निका महोत्सव

महा सुद २ बुधवार दिनांक २३-१-८५ को श्री उपधान तप की माला के प्रसंग पर उपधान कराने वाले **संघवी श्री ओटरमलजी भूताजी** की तरफ से **पांच छोड़ का उद्यापन (उजमणां), श्री सिद्धचक्र महापूजन** तथा **श्रीऋषिमंडल महापूजन** युक्त श्री जिनेन्द्र भक्ति रूप दशाह्निका महोत्सव प्रारम्भ हुआ। प्रतिदिन व्याख्यान, पूजा-प्रभावना-आंगी तथा रात को भावना का कार्यक्रम चालू रहा।

❀ महा सुद ५ (वसंत पंचमी) शनिवार दिनांक २६-१-८५ को **'श्रीसिद्धचक्र महापूजन'** विधिपूर्वक पढ़ाया गया।

❀ महा सुद ८ मंगलवार दिनांक २९-१-८५ को **'श्रीऋषि-मंडल महापूजन'** विधिपूर्वक पढ़ाया गया।

❀ महा सुद १० गुरुवार दिनांक ३१–१–८५ को श्री उपधान तप की माला का तथा जलयात्रा का जुलूस-वरघोड़ा रथ-हाथी-घोड़े-मोटरों तथा बेन्ड सहित सुन्दर निकला ।

श्रीउपधानतप की मालारोपण

महा सुद ११ शुक्रवार दिनांक १-२-८५ को प्रातः परम शासन-प्रभावक पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म० सा० की पावन निश्रा में नाण समक्ष पहिला आदि उपधान करने वाले ४१ भाई-बहिनों को श्रीसंघ के अनेरे अनुपम उत्साह के साथ विधिपूर्वक माला पहिनाई ।

❀ **'श्रीसिद्धचक्र-नवपदस्वरूपदर्शन'** तथा **'सार्थ श्रीश्रमण-क्रियाना सूत्रो'** दोनों पुस्तकों का विमोचन भी हुआ ।

❀ श्रीसंघ की ओर से तथा श्रीउपधान करने वाले आराधकों की ओर से भी उपधान कराने वाले संघवी श्री ओटरमलजी भूताजी आदि का बहुमान हुआ तथा अभिनन्दन-पत्र दिया गया । उनकी ओर से आराधकों को विशेष प्रभावना दी गई । श्रीसंघ की नोकारसी भी की गई ।

संघवी श्री ओटरमलजी भूताजी की ओर से श्रीउपधान तप के मालारोपण प्रसंग के साथ दशाह्निका महोत्सव का कार्यक्रम पूर्ण हुआ ।

महा सुद १२ शनिवार दिनांक २–२–८५ को श्रीउपधान तप आराधना करने वालों का पारणा भी आनंद से हुआ । संघवी श्री ओटरमलजी भूताजी ने श्रीउपधान तप की आराधना उदार भावना से करवाकर अपनी लक्ष्मी का उत्तम सद्व्यय किया ।

महा सुद १४ सोमवार दिनांक ४-२-८५ को परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म० सा० के सदुपदेश से श्री तखतगढ़ से श्री कवलातीर्थ का पैदल छरी पालित संघ पूज्य गुरुदेव की पुण्य निश्रा में संघवी श्री ओटरमलजी भूताजी की ओर से निकलेगा।

महा सुद ११,
शुक्रवार,
दिनांक
१-२-८५
(श्री उपधान तप आराधना-
माला दिन)

लेखक—
विधिकारक, धार्मिक शिक्षक
बाबूभाई मणिलाल
भाभर वाले
तखतगढ़
(राजस्थान)

।। मेरी भावना ।।

जिसने राग द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया ।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया ।।
बुद्ध वीर जिन हरि हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो ।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो ।।१।।

विषयों की आशा नहीं जिनके, साम्यभाव धन रखते हैं ।
निज परके हित साधन में जो, निशदिन तत्पर रहते हैं ।।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं ।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत् के, दुख समूह को हरते हैं ।।२।।

रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे ।
उन ही जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे ।।
नहीं सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूं ।
परधन वनिता पर न लुभाऊं, संतोषामृत पिया करूं ।।३।।

अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूं ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या भाव धरूं ।।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूं ।।४।।

मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे ।
दीन दुःखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे ।।
दुर्जन क्रूर-कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे ।
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे ।।५।।

गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे ।।
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ।।६।

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊं, या मृत्यु आज ही आ जावे ।।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे ।
तो भी न्यायमार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे ।।७।।

होकर सुख में मग्न न फूलें, दुःख में कभी न घबरावें।
पर्वत नदी श्मशान भयानक, अटवी से नहीं भय खावें ।।
रहे अडोल अकम्प निरंतर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्टवियोग अनिष्टयोग में, सहनशीलता दिखलावे ।।८।।

सुखी रहे सब जीव जगत् के, कोई कभी न घबरावे।
बैर-पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे ।।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावें।
ज्ञान चरित्र उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें ।।९।।

ईति-भीति व्यापे नहीं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे ।।
रोग-मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शांति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत् में, फैल सर्व हित किया करे ।।१०।।

फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहीं, कोई मुख से कहा करे ।।
बन कर सब युग वीर हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें।
वस्तु-स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करें ।।११।।

हिन्दुस्तान प्रिण्टर्स, जोधपुर फोन : 25277